मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)

श्री हेमचन्द्राचार्य

अनुसन्धान - ६६

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य विषयक संपादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

संपादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि

2015

मोहंरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

अनुसन्धान

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

६६

सम्पादक :
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२०१५

अनुसन्धान ६६

आद्य सम्पादक : डॉ. हरिवल्लभ भायाणी

सम्पादक : विजयशीलचन्द्रसूरि

सम्पर्क : C/o. अतुल एच. कापडिया
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ, अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१
E-mail : s.samrat2005@gmail.com

प्रकाशक : कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम
जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि,
अहमदाबाद

प्राप्तिस्थान : (१) आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मन्दिर
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामृन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६६२२४६५

(२) सरस्वती पुस्तक भण्डार
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१
फोन : ०७९-२५३५६६९२

प्रति : २५०

मूल्य : ₹ 150-00

मुद्रक : क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

निवेदन

संशोधन एक विज्ञान छे; ज्ञानना क्षेत्रनी वैज्ञानिक पद्धति छे.

विज्ञान एटले नित्य-नूतन उन्मेष प्रगटावनारुं ज्ञान. ए कदी जूनुं न थाय. ए क्यारेय पूरुं पण, कदाच, न थाय. अने आमां ज एनी रोचकता छे, रोमांचकता पण.

साचो विज्ञानी संशोधनपरस्त होय छे, तेम साचो संशोधक विज्ञानपरस्त होय छे. तेना चित्तमां सतत प्रवर्त्या करतुं ज्ञान-कुतूहल अथवा जिज्ञासा, तेने सतत कांईक नवुं शोधवा प्रेर्या करे छे; एनुं संशोधन जूनामांथी नवुं खोळतुं रहे छे, अने जूनाने नवी-शोधक नजरथी जोतां शीखवतुं रहे छे. मजा ए ज छे के आम करवामां एने-एनी शोधक दृष्टिने व्यक्तिगत राग के द्वेषनां आवरणो नडतां नथी. एनी दृष्टि तत्त्व के पदार्थ उपर होय छे, तेनुं प्रतिपादन के प्रस्तुति करनार व्यक्ति उपर नहि. एने सत्यनी खोज होय छे, अन्यने जूठा ठरावनानी गणतरी नहि. प्रतिपादक व्यक्ति क्यारेक साची ठरे, तो घणीवार तेनुं प्रतिपादन जूठुं पण ठरे एवुं बने. परन्तु संशोधक वैयक्तिक राग-द्वेष थकी मुक्त होवाने कारणे, तेने तत्त्व पामवानो आनन्द ज अनुभवाय छे; कोईने खोटा ठराववानो नहि.

बने छे एवुं के कोई व्यक्तिनुं विधान, प्रतिपादन के प्रस्तुति, नवा चिन्तन के संशोधनने कारणे, गलत ठरी जाय, त्यारे ते व्यक्तिने माठुं लागी जतुं होय छे. ते एम मानी ले छे के आमणे मने ऊतारी पाडवा माटे अने खोटो देखाडवा माटे ज आम कर्युं छे.

आम बनवानुं मुख्य कारण, तेवी व्यक्तिमां प्रवर्तती राग-द्वेषनी अने मारा-तारानी ग्रन्थिओ होय छे, एम कही शकाय. आवी व्यक्तिनो आशय, कशुंक नवुं प्रतिपादन/संशोधन करवाने बदले, पोतानी आवडत अने अहमियतना प्रदर्शननो वधारे होय छे. स्वाभाविक रीते ज, आवा लोकोमां, 'मने आवडे एवुं कोईने आवडे नहि' एवी, अने 'मारी भूल कोई ज काढी शके नहि; काढे तो ते मारी वात समज्यो ज नथी एम मानवुं पडे' आवी ममत-ममत्वग्रन्थि प्रबळ होय एवुं जोवा मळे छे. आवा लोकोमां पाण्डित्य अवश्य हशे, पण शोधकोचित ताटस्थ्य नथी होतुं.

'अमे जे संशोधन करीए, के प्रतिपादन, ते उपर कोई सुधारो के संशोधन के नुक्तेचीनी पण करी न शके; करवी होय तो तेणे ते पहेलां अमने बताडवी-वंचाववी जोईए; अमे मंजूर राखीए तो ज ते जाहेर करवी जोईए' - आवी, विचित्र गणी शकाय तेवी, मान्यता के आग्रह धरावता लोको, हमणांहमणां, सुलभ बनी रह्या छे. बहिर्दृष्टिए खूब विकसित जणाता आवा मित्रो पण, पोतानी अहंमन्यताना शिकार बनीने, अन्तर्दृष्टिए सीमित केम रही जतां हशे ? ए हजी समजमां आवतुं नथी. जोके ए बधुं समजवानी जरूर पण नथी लागती.

आवा मित्रो, वैश्विक, भारतीय अने गुजराती साहित्यजगत्ना प्रवर्तमान प्रवाहो तथा परिस्थितिथी, महदंशे अनभिज्ञ होय छे. तेमनी आ अनभिज्ञतानुं कारण, आवा साहित्य साथे तेमनो सम्पर्क नथी होतो ए छे; अने आ असम्पर्कनुं कारण, तेमनी संकुचित साम्प्रदायिक मान्यताओ होय छे.

साम्प्रत साहित्यिक प्रवाहोनी वात करीए तो, आपणी-गुजराती-भाषामां 'प्रत्यक्ष', 'परब', 'शब्दसृष्टि' जेवां विविध साहित्यिक सामयिको प्रकाशित थाय छे. तेमां प्रख्यात, लोकप्रिय, विद्वान लेखको/साहित्यकारोना लेखो छपाय छे. उपरान्त, अनेक साहित्यिक प्रकारोनां पुस्तको पण प्रगट थाय छे. तेमांथी विविध लेखो के पुस्तको विषे समीक्षात्मक लेखो तथा चर्चापत्रो पण, आ सामयिकोमां छपातां रहे छे. ए समीक्षा के अवलोकनमां, समीक्ष्य पुस्तक के लेखमां जणाती विशेषताओने तो उजागर करवामां आवे ज, पण साथे तेमां रहेल विगतदोषो, प्रतिपादन-दोषो, निरूपणशैथिल्य, भाषादोषो, मुद्रणदोषो वगेरेनुं पण विस्तारथी, सदृष्टान्त निरूपण थतुं होय छे. एमां एवी भूलो नीकळे अने ते बदल ते लेखकने एवी कडक आलोचनाना विषय बनवुं पडे, के सामान्य वाचकने एम थाय के 'आवुं करातुं हशे ? अने हवे पेला लेखक आ समीक्षक साथे बाखडी ज पडवाना !'

पण ना, आवुं कांई थतुं नथी. केमके आ प्रवृत्तिमां कोईने व्यक्तिगत द्वेष, दुर्भाव के असूया, मोटा भागे, होतां नथी. लेखक आ समीक्षाने खेलदिलीथी स्वीकारे; ज्यां पोते सहमत न होय त्यां प्रतिवाद पण करे; ते प्रतिवाद पण ते ज सामयिकमां छपाय; अने छतां बन्ने वच्चे कटुता भाग्ये ज सर्जाय; बल्के बन्नेनी मित्रताने कोई घोबो न पडे.

आवा तन्दुरस्त विवाद के वाद-प्रतिवादने कारणे साहित्यजगत् ज रळियात थतुं होय छे ए पण एक लाभप्रद बाबत छे.

जो आवा प्रवाहोना सम्पर्कमां रहेवाय, तो आपणी वैचारिक उदारता के व्यापकता घणी वधे, अने संकुचित मनोवल्रणो अवश्य नबळां पडे. सवाल व्यापकता माटेनी रुचिनो छे, समजणनो छे.

सार ए के राग-द्वेषथी पर बनीने, शास्त्राध्यासपूर्वक, संशोधन करवानी मोज कंईक अनेरी ज होय छे. एमां, पूर्व सूरिओ प्रत्येनो आदर तथा बहुमान अकबंध राख्या पछीये, तेमना काममां कोई क्षति के खामी जणाय, तो ते देखाडी शकाय छे, अने तेम करवुं ते, ते पूर्वसूरिओ प्रत्येना अदकेरा आदरनुं द्योतक पण बनी रहे छे. वळी एमां, समकालीनो प्रत्येनो सद्भाव लेश पण ओछो कर्या विना, एमनी पण भूल काढी शकाय छे; अने तेमां तेमना प्रत्येनी असूया नहि, पण सद्भावना ज प्रगट थती होय छे. उत्तम काम करे तेनी भूल थाय; ए भूलने कारणे के भूल देखाडवाने लीधे, तेमना कामनी उत्तमता घवाती नथी, के एम करवामां तेमना कामने नकामुं के निम्न गणवानी मानसिकता नथी होती; परंतु आवा उत्तम काममां आवी के आटली पण क्षति न चाले - एवी सद्भावप्रेरित समज ज होय छे.

राग-द्वेष न होय तो ज आवुं थई शके. परन्तु कोई द्वारा थता संशोधनने, पोताना परना द्वेषरूप के प्रहाररूप मानी लेवानी, अने तेथी ते संशोधनकर्ता प्रत्ये दुर्भावयुक्त प्रतिवाद करवानी मनःस्थिति तथा पद्धति, ते तो एक तरफ आपणी अविकसित / सीमित दृष्टिने छती करी आपे छे, तो बीजी तरफ संशोधन-विज्ञानना क्षेत्र माटे आपणामां जरूरी के पूरती योग्यता न होवानुं पण सहेजे साबित करी आपे छे. अस्तु.

— शी.

श्रुतभक्ति

आ अङ्कना प्रकाशनमां श्रीमाटुंगा जैन श्वे. मू. पू. सङ्घ – वासुपूज्यस्वामी जैन देरासर, किंग्स सर्कल, माटुंगा, मुंबई अे पोताना ज्ञानखातामांथी सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग आपेल छे. श्रीसङ्घनी श्रुतभक्तिनी हार्दिक अनुमोदना.

अनुक्रमणिका

सम्पादन

अज्ञातकर्तृकं वैराग्यकुलकम्	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	१
प्राचीन पांच रचनाओ	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	५
द्रव्यपर्यायुक्तिः / स्याद्वादचर्चा	सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	१८
श्रीपार्श्वनाथसमसंस्कृतस्तवः	सं. मुनि धर्मकीर्तिविजयगणि	३६
शिवमण्डनगणिविरचितं वागडपद्रपुरमण्डन-आदिनाथस्तवनम्	सं. अमृत पटेल	३८
मानाङ्कनृपतिविरचितं पूर्णतल्लगच्छीय-श्रीशान्तिसूरिकृतटीकोपेतं वृन्दावनकाव्यम्	सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	४३
महोपाध्यायश्रीमेघविजयगणिकृत चतुर्विंशतिजिनस्तवः मगसीपार्श्वस्तवनं च	सं. सा. विनयसागर	६५
श्रीविजयसेनसूरिजी उपरना बे पत्र-लेखा	सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजय	६९
मेघकुमारना बारमासा	सं. अनिला दलाल	८३
अम्बिकाचउपई	सं. किरीट शाह	८९
सं. १९१२मां सूरतना एक श्रावके लीधेल १२ व्रतनी टीप	सं. विजयजगच्चन्द्रसूरि	९१

स्वाध्याय

अर्हत् पार्श्वनो असली समय	मधुसूदन ढांकी	११७
जैन दर्शन का नयसिद्धान्त	प्रो. सागरमल जैन	१२०
जैन दर्शन का निक्षेपसिद्धान्त	प्रो. सागरमल जैन	१३१
'कज्जमाणे कडे'मां नयसम्मति	मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	१३५

सिद्धहेमशब्दानुशासन – प्राकृत अध्यायगत
केटलांक उदाहरणोनां सम्पूर्ण पद्यो — मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय — १४४
विहंगावलोकन — उपा. भुवनचन्द्र — १५०
टूंकनोंध — मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय
१. 'मस्करिन्' परिव्राजक अंगे — १५६
२. 'दिट्ठाऽसि कसेरुमई०' गाथा विशे — १५९
३. 'चूलिकापैशाची' अंगे — १६१
४. 'साधुश्रीपृथ्वीधरकारित-जिनभुवनस्तवनम्' विशे — १६२
पूर्ति — १६४
शुं महत्त्वपूर्ण ? आपणुं मन्तव्य के शास्त्रनुं ऐदम्पर्य ? : एक चर्चा
विजयशीलचन्द्रसूरि — १६५

विनन्ति

अद्यावधि प्रगट थयेला विज्ञप्तिपत्रोना सूचीकरणनुं कार्य चालु छे. तो 'विज्ञप्तिलेखसङ्ग्रह'मां प्रकाशित विज्ञप्तिपत्रो सिवायना प्रकाशित विज्ञप्तिपत्रो अंगे जणाववा विनन्ति. तेनी साभार नोंध लेवाशे. स्तुतिरूप विज्ञप्तिओनो आमां समावेश नथी करवानो.

अज्ञातकर्तृकं
वैराग्यकुलकम् ॥

– सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

खम्भातना शान्तिनाथ ताडपत्रीय ग्रन्थभण्डारनी, विविध लघुकृतिओने समावती १३३मा क्रमाङ्कनी पोथीमां क्यारेक जोवा मळेली आ लघु रचना, ते वखते उतारी लीधेली. कोईक तीव्र वैराग्याभिलाषी व्यक्तिनुं मनोमन्थन आमां बळकट अने हृदयवेधी रीते रजू थयुं छे. एनो सार तारवतां आ रचना एक वैराग्यप्रधान रचना होवानुं कही शकाय. श्रीपुण्यविजयजीए '**वैराग्यकुलक**' ए नामे आने ओळखावी छे.

१-११ गाथाओमां वैरागी जीव पोताना चित्तमां जागता विविध धर्म-मनोरथोने वर्णवे छे. आ मनोरथोमां तेमना हृदयनी उच्च चारित्रपालननी तीव्र झङ्खना प्रतिबिम्बित थई छे, जे भारे प्रेरणात्मक छे. ११मी गाथामां कर्ता पोताने 'सत्त्व विनानो' गणावीने 'मात्र मनोरथ कर्या करनार, पण पापमां ज उद्यमी' एवो पोतानो अन्तरङ्ग परिचय आपे छे. चित्तशोधननी आ विरल प्रक्रिया लागे छे.

१२-१९ गाथाओमां कर्ता, बाल्य अवस्थामां ज, संसारनी जंजाळथी सर्वथा अजाण एवा जे जीवोए, संसार त्यज्यो छे, संयमपंथ अपनाव्यो छे, तेनी उत्कट अनुमोदना करे छे. २०-२७मां पोतानी निर्माल्यताने आकरी रीते वगोवे छे - वखोडे छे. तो २८-३४मां 'जो ते समये हुं पण चेती गयो होत, संसारथी विरमी गयो होत तो...' आ शब्दोमां पोते नष्ट करेली पोतानी ज सम्भवित सम्भावनाओने कर्ता कोसे छे. अने छेल्ले ३५-३९ गाथाओमां उपसंहाररूपे कर्ता लखे छे के 'जेओ मूढ छे अने बचपणमां श्रमणजीवन नथी अपनावता, ते लोको पोताना आ भवने वेडफे छे, अने परभवने बरबाद करतां संसारना कळणमां डूबी मरे छे.'

अत्यन्त चिन्तनप्रेरक अने वैराग्यपोषक कृति. १३मा सैकानी पोथीमां ते लखायेली छे. तेना कर्ता अज्ञात छे.

*

ता कइया तं सुदिणं सा सुतिही तं भवे सुनक्खत्तं ।
जम्मि सगुरुपरि(र)तंतो चरणभरधुरं धरिस्समहं ? ॥१॥
अज्जं चयामि कल्लं चयामि भवसयनिबंधणं रज्जं ।
गिन्हामि य परमपयक्कहेउ सव्वन्नुणो दिक्खं ॥२॥

कइया खणं विबुद्धो विरत्तसमयम्मि कायमणगुत्तो ।
चरणकरणाणुयोगं धम्मज्झयणे अणुगुणिस्सं ? ॥३॥
कइया उवसंतमणो कम्ममहासेलकढिणकुलिसत्थं? ।
वज्जं पि व अणवज्जं काहं गोसे पडिक्कमणं ? ॥४॥
कइया कयकायव्वो सुमणो सुत्तत्थपोरिसिं काउं ।
वेरग्गमग्गलग्गो धम्मज्झाणम्मि वट्टिस्सं? ॥५॥
कइया णु असंभंतो छट्ठट्ठमतवविसेससूसंतो ।
जुगमित्तनिहियदिट्ठी गोयरचरियं पवज्जिस्सं ? ॥६॥
कइया वि हसिज्जंतो निंदिज्जंतो य बालमूढेहिं ।
सममित्तसत्तुचित्तो भमिज्ज भिक्खं विसोहिंतो ? ॥७॥
कइया खणवीसंतो धम्मज्झयणे समुट्ठिओ गुणिउं ।
रागद्दोसविमुक्को भुंजे सुत्तोवएसेणं ? ॥८॥
कइया कयसुत्तत्थो संसारेगत्तभावणा काउं ।
सुन्नहरमसाणेसुं धम्मज्झाणम्मि ठाइस्सं ? ॥९॥
कइया णु कमेण पुणो फासुयएसम्मि कंदरे गिरिणो ।
आराहियचउखंधो देहच्चायं करीहामि? ॥१०॥
इय सत्तसाररहिओ चिंतेइ च्चिय मणोरहे नवरं ।
एस जिओ महपावो पावारंभेसु उज्जमइ ॥११॥
धन्ना हु बालमुणिणो बालत्तणयम्मि गहियसामन्ना ।
खण-रसियनिव्विसेसा जेहिं न दिट्ठो पियविओगो ॥१२॥
धन्ना हु बालमुणिणो अकयविवाहा अणायमयणरसा ।
अद्दिट्ठदइयसोक्खा पव्वज्जं जे समल्लीणा ॥१३॥
धन्ना हु बालमुणिणो अगणियपेम्मा अणायविसयसुहा ।
अवहत्थियजियलोया पव्वज्जं जे समल्लीणा ॥१४॥
धन्ना हु बालमुणिणो उज्जुयसीला अणायघरसोक्खा ।
विणयम्मि वट्टमाणा जिणवयणं जे समल्लीणा ॥१५॥
धन्ना हु बालमुणिणो कुडुंबभारेण जे य नोच्छइया ।
जिणसासणम्मि लग्गा दुक्खसयावत्तसंसारे ॥१६॥

धन्ना हु बालमुणिणो जाणं अंगम्मि निव्वुडो कामो ।
नवि नाओ पेम्मरसो सज्झाए वावडमणेहिं ॥१७॥
धन्ना हु बालमुणिणो जाय च्चिय जे जिणे समल्लीणा ।
न य ण(ज)न्ति कुसुइमग्गे पडिकूले मोक्खमग्गस्स ॥१८॥
इय ते मुणिणो धन्ना पावारंभेसु जे न वट्टंति ।
सूडिंति कम्मगहणं तवकड्डियतिक्खकरवाला ॥१९॥
अम्हे उण नीसत्ता सत्ता विसएसु जोव्वणुम्मत्ता ।
परिवियलियसत्तीया तवभारं कह वहीहामो? ॥२०॥
पेम्ममउम्मत्तमणा पणट्ठलज्जा जुयाणकालम्मि ।
संपइ वियरियसारा जिणवयणं कह करीहामो ? ॥२१॥
सारीरबलुम्मत्ता तइया अप्फोडणेक्कदुल्ललिया ।
न तवे लग्गा एन्हि तवभारं कह वहीहामो? ॥२२॥
अगणियकज्जाकज्जा रागद्दोसेहिं मोहिया तइया ।
जिणवयणम्मि न लग्गा एन्हि पुण किं करीहामो? ॥२३॥
जइया धीए व(ब?)लिं(लि)या कलिया सत्तीए दप्पिया हियए ।
तइया तवे न लग्गा भण एन्हि किं करीहामो ? ॥२४॥
जइया निट्ठुरदेहा सत्ता तवसंजमम्मि उज्जमिउं ।
न य तइया उज्जमिया एन्हि पुण किं करीहामो? ॥२५॥
जइया मेहाजुत्ता सत्ता सयलंपि आगमं गहियं(उं) ।
न य तइया पव्वइया एन्हि वड्डा य जड्डा य ॥२६॥
इय वियलियनवजोव्वण-सत्तिल्ला संजमम्मि असमत्था ।
पच्छायावपरद्धा पुरिसा झिज्जंति चिंतंता ॥२७॥
जइ तइया विरमंतो सम्मत्तमहादुमस्स पारोहे ।
अज्जदियहम्मि होंतो सत्थपरमत्थभंगिल्लो ॥२८॥
जइ तइया विरमंतो सुयनाणमहोअहिस्स तीरम्मि ।
उंच्चितो अज्जदिणं भव्वाइं सुसीसरयणाइं ॥२९॥
जइ तइया विरमंतो आरूढो जिणचरित्तपोयम्मि ।
संसारमहाजलहिं हेलाए चेव तीरंतो ॥३०॥

जइ तइया विरमंतो आरूढो जिणचरित्तपोयम्मि ।
अज्जदिणं रायाहं मुणीण होंतो न संदेहो ॥३१॥
जइ तइया विरमंतो वयरयणगुणेहिं वड्डियपयावो ।
रयणाहिवोत्ति पुरिसो हुतोहं(हुंतो) सव्वाण वि मुणीण ॥३२॥
जइ तइया विरमंतो रज्जमहापावसंचयविहीणो ।
झत्ति खविंतो पावं तवसंजमिओ अणंतं पि ॥३३॥
जइ तइया विरमंतो तवसंजमनाणसोहियाभरणो ।
नाणाण किंपि नाणं पाविंतो अय(इ)सयं एन्हि ॥३४॥
इय जे बालत्तणए मूढा न करिंति कहवि सामन्नं ।
सोयंति अणुदिणं ते जराय गहियाहमा पुरिसा ॥३५॥
एमेव महामोहेण मोहिया माणुसत्तणं लहिउं ।
परलोगहियं न कुणंति नेहपासेहिं पडिबद्धा ॥३६॥
बहले संसारवणे तिणग्गजलबिंदुचंचले जीए ।
बंधइ लोए नेहं न याणिमो केण कज्जेण? ॥३७॥
मायावारुणिमत्तो मोहमहाजालपासपडिबद्धो ।
मयणसरपूरियंगो डोल्लइ संसारकंतारे ॥३८॥
जह जह बंधइ नेहं पियपुत्तकलत्तमित्तबंधे(धू?)हिं ।
तह तह खुप्पइ बहले संसारे दुक्खघोरम्मि ॥३९॥

* * *

प्राचीन पांच रचनाओ

– सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

आदरणीय डॉ. मधुसूदन ढांकीए एक मुलाकातमां पोतानी पासे सचवाएलां ३ जेरोक्स पानां आप्यां. आशरे १४मा शतकमां लखायेलां जणातां ते पानांमां केटलीक अपभ्रंश तेमज भाषामय रचनाओ हती, ते बधी अहीं प्रस्तुत छे. कया भण्डारनी प्रतिनां पानां हशे तेनो तो तेमने पण हवे ख्याल नथी. घणा भागे पाटण-भण्डारनी होई शके.

१. प्रथम कृति 'श्रीनेमिनाथ विनति' छे. 'द्रुतविलम्बित'ना लयमां ११ कडीनी आ कृति छे. ११मी कडी इन्द्रवज्राना लयमां छे. गिरिनारना नेमिजिननी तेमां भावसभर स्तुति थई छे. क. १,६मां 'गिरिनार'नो, १, ३, ८, ११मां 'नेमिनाथ'नो, ११मां 'राजीमती'नो तथा 'माता शिवादेवी'नो क. ३मां गइंद-'गजेन्द्र(पद)कुण्ड'नो उल्लेख थयो छे. क. ५ प्रमाणे प्रभुनी प्रतिमा श्याम हती तेम जाणवा मळे छे. रचना भाषामय छे, पण तेमां अपभ्रंशनी छांट स्पष्ट वर्ताय छे.

कवि भगवानने कहे छे के "तारा जेवो चोर आ जगतमां कोई नथी थयो ! तें तो भाविकोनां मन चोरी लीधां !" (क. ६). तो क. ७मां कहे छे के "एक तो आ-गिरनारनो डुंगर रळियामणो छे, ने पाछो तुं - नेमिप्रभु पण सोहामणो ! जाणे अमृतनो कुण्ड !"

कर्तानो उल्लेख नथी, पण बीजा क्रमाङ्कनी रचना साथे आ रचनानी पदावलीनी समानता जोतां आ रचना जयानन्दसूरिजीकृत होय तेम सम्भवे छे.

२. बीजी कृति 'आरासणतीर्थस्तवन' छे. आरासण ते हालनुं कुम्भारिया-तीर्थ. तेनी तीर्थमाल के चैत्यपरिपाटी जेवुं आ स्तवन श्रीजयानन्दसूरिए रच्युं छे. आनी शब्दपद्धति तथा छन्दपद्धति जोतां, प्रथम 'नेमिनाथ विनति'नी रचना पण आ आचार्यनी ज होय एम मानी शकाय. अपभ्रंशनी छांटवाळी पण भाषामय आ कृति २१ कडी प्रमाण छे. तेमां २० भाषामां अने २१मो श्लोक संस्कृतमां छे.

१-११ क.मां तीर्थपति नेमिनाथनी स्तवना थई छे, क. १२मां 'आदीश्वरजी', १३मां 'लोडण पार्श्वनाथ', १६मां 'शान्तिनाथ', १७मां पुनः शेत्रुंजतीर्थने शोभावनार 'आदिनाथ', १८मां 'पार्श्वनाथ', १९मां 'वीरप्रभु' अने २०मां अम्बादेवीनी स्तवना-

स्मरण छे. आ बधां जिनालयो आजे पण त्यां विद्यमान छे.

जयानन्दसूरि तपगच्छना, १४ शतकना प्रसिद्ध विद्वान आचार्य छे.

३. त्रीजी रचना पण 'आरासणतीर्थस्तवन' ज छे. ते अपभ्रंशमां छे. 'जयतिहुअण' स्तोत्रना छन्दोलयमां छे. ११ पद्यो छे. आमां पण, भाषामय स्तवननी जेम ज, नेमिनाथ, ऋषभनाथ, लोडण पार्श्व (२-३), तथा शान्तिनाथ (८), आदिनाथ (९), पार्श्वनाथ अने वर्धमान (१०), तथा अम्बादेवी (११) - ए ज क्रमे जिनभवनोनो निर्देश थयो छे. 'आरासणतीर्थ' (१, ११) एवो उल्लेख ध्यानार्ह छे. कर्तानो नामोल्लेख नथी, परन्तु आ रचनानुं आन्तर-स्वरूप एम मानवा प्रेरे छे के आ पण जयानन्दसूरिनी ज रचना छे. कविनी रचना-क्षमतानो सुरेख परिचय, चोथा पद्यमां थयेला 'कटरे, अरिरे, अरि, बपुरे' ए द्विरुक्त प्रयोगो थकी सांपडे छे.

४. चोथी कृति अपभ्रंशबद्ध २५ पद्योमां विस्तरेली 'जीराउलिपार्श्वस्तव' नामनी छे. 'जीरापल्ली' ते हाल गुजरात-राजस्थाननी सरहद नजीक आवेल प्राचीन क्षेत्र छे. जीरापल्ली-जीरावल्ली-जीरावली-जीराउली - आम अपभ्रंश थयेल छे. आ क्षेत्रमां पुरातन पार्श्व-प्रतिमा, सैकाओ-पूर्वे प्रतिष्ठित छे. तेनी उत्पत्ति तथा आ क्षेत्रमां आगमन आदिनो वृत्तान्त चमत्कृतिसभर अने रोचक छे. आ प्रतिमा माटी/वेळुनी बनेली छे. जैन संघमां तेनुं माहात्म्य तथा आस्था अनन्य छे. सर्व भयो अने उपद्रवोने शमावनार आ प्रतिमा मनाई छे. तेनी स्तुति अनेक कविओए सतत करी छे. आ पण तेवी ज एक मधुर अने काव्यसर्गसम्पन्न रचना छे. आना रचयिता, २५मा पद्यमां नाम छे तदनुसार, श्रीदेवसुन्दरसूरि जणाय छे. तेमनो सत्तासमय १४मो शतक छे. तपगच्छना ते महाप्रभावक विद्वान आचार्य हता. जो के तत्कालीन स्तोत्रोमां सामान्य रीते रचयिता द्वारा कृतिना अन्ते पोतानो नामोल्लेख न करतां गुरुभगवन्तनो उल्लेख करवानी परिपाटी रही छे. तेथी आ स्तोत्र देवसुन्दरसूरिजीना शिष्य द्वारा पण रचित होई शके.

५. पांचमी कृति, त्रण ज पानां मळेल होवाथी, अपूर्ण ज रही जाय छे. ते प्रति जो मळे तो आखी कृति तो मळे ज, उपरांत तेमां लखायेल आवी अन्य अनेक रचनाओ पण मळे. हाल तो २६ पूर्ण अने अने २७मुं अपूर्ण - एटलां पद्यो अत्रे प्रस्तुत छे. आ रचना अपभ्रंशमां छे, अने ते 'वैराग्य'- बोधक कृति छे. १२ भावनाओ, तेमां संसारनुं, आश्रवनुं स्वरूप, मानवजन्मनी दुर्लभता, पूर्वना उत्तम आत्माओनां उदाहरण, तेमांथी बोध लेवानी प्रेरणा - आ बधो वैराग्योत्पादक विषय आमां सुपेरे वर्णवायो छे. आना कर्ता जाणी शकाता नथी. **'वैराग्यप्रेरणं' एवुं नाम**

कल्पित छे. आमां १-११, १-२०, तथा ते पछीनां पद्योमां भिन्न भिन्न छन्दो प्रयोजायां छे.

ढांकीसाहेबना मत प्रमाणे आ कृतिओ प्राय: अप्रगट छे. तेथी ते यथामति सम्पादित करीने अहीं प्रगट करवामां आवी छे. आ पानां आपवा बदल ढांकी साहेबनो खूब आभारी छुं.

*

(१)
नेमिनाथ-विनति ॥

हरिषु माइ नही हियडइ किमइ, मझ मनुं **गिरिनारि** घणउं रमइ ।
लडहलोचन **नेमि** नमस्करउं, जिम न चउगइ माहि चली फिरिउं ॥१॥
सहजि सोहगसुंदर सामलु, कुसुमबाणतणइ कुलि आमलउ ।
सु मइं दीठउ ठाकुर आपणउ, नहिअ कोइ मनि भउ छइ पापनउ ॥२॥
करिय कुंडि सनानु **गइंद**मइ, भरिय भावि भिंगारि सुवर्णमइ ।
न्हवणु **नेमि**जिणेसरनइ करइ, सिववधू हिव सयंवर मइं वरी (रइ) ॥३॥
सघण सूंकडि[१] कुंकुम केवडी, विकल(च?) चंपक बउलि वि मालती ।
कुसुममाल विसाल रमावली, करीअ पूज हुई मनि मुं रली ॥४॥
दर न लीलविलास सकइ कला, जिसइं सेव करउं **प्रभु सामला** ।
अलजयउ भवभंजन भावना, करिसु हउं नितु नेत्र सुहामणा ॥५॥
तुझ समउ जगि चोर न को हुयउ, भविकनां मन चोरिय नय रिहिउ ।
कहि किसिउ करिसिइ कुडि बापुडी, मझ मनउ **गिरिनारि** रहिउं चडी ॥६॥
इकु सु डूंगरडउ रलीआमणउ, अनय तूं जगदीस सुंहामणउ ।
अमृतमइ कुंड नेत्र निहालिय[इं], भवतणां सवि संकट टालियइं ॥७॥
गहगहइं गिरिं-कंदरि किंनरी, रहसि रासु रमइं सुरसुंदरी ।
सुर करइं नितु नाटक भावना, गुण थुणइं परमेश्वर **नेमिना** ॥८॥
नयंनु[२] चंदिन चंद निरइकरइ, मझ मनोहरु सुक्ख न संभरइ ।
इम किमइ मझ तइं तन मोहिउं, तुझ कन्हइ जिम निश्चल हुई रहिउं ॥९॥

---

१. सुखड । २. नयनरूप चन्द्र वडे चन्द्रने निराकृत-पराभूत करे ।

विषयशत्रु तणउ मद गयउ गली, जिसि वइं आवइं पासि न मूं वली(?) ।
मयणमल्लतणउ मझु भउ किसउ, जउ जिनेश्वरनइ मनि हउं वसिउ ॥१०॥
देवी सिवानंदन नेमिनाथ, राजीमतीवल्लभ विश्वनाथ ।
मागउं नही गरासु[3] न सिद्धिवासु, मूं देव! देजे नीयपायवासु ॥११॥

इति श्रीनेमिनाथवीनती समाप्ता ॥

*

(२)
अरासणतीर्थस्तवन ॥

रजत कांचन सीसक आगरा, जहिं मनोरम दीसइं डूंगरा ।
नवनवी जहिं खाणि वखाणियइं, जिहिं तणा जगि बिंब प्रमाणियइं ॥१॥
जहिं मनोहर दीसइं देहरां, सुकृतना छइं जाणो सेहरां ।
सु जि **आरासणु** तीर्थु वखाणिसिउं, अनइ जीभडली-फल माणिसिउं ॥२॥
जिणि **सुजादव**वंसु सुमंडिउ, सबल काम महाभडु खंडिउ ।
परिहरी जिणि **राजमती**सती, सिद्धि वीसी[4] जिह भूइं[5] मनि शास्वती ॥३॥
सु ज **नेमीश्वरु** सहजि सुहामणउ, सुभग सुंदर विश्वविमोहणउ ।
विमल नीलमणि च्छवि **सामलु**, कुण तणइ न वसइ मनि निर्मलउ ॥४॥
सु जि जिनेश्वरु नयनि निरीखियइ, अवसितउ[6] शुभकम्मु परीखियइं ।
सु जि जिनोत्तमु इम **नि(ने?)मिउं** नमिउं, भवतणउ भउ तेहिं सहू गमिउ ॥५॥
न्हवण निर्मल नीरिहिं जे करइं, भवतणां सवि कश्मल ते हरइं ।
जिहिं विलेपनु अंगि विलेपीयइं, दुरित-दाहु सहू तिहिं लोपियइं ॥६॥
विकच चंपक केतक मालती, कमलमाल विशाल बहक्कती ।
जि तइं लेविणु [पू]जइं सामीआ, सिववधू वरमाल तिं पामिया ॥७॥
नवि नवि स्तवनि जे जिननइं तवइं, विकट संकट दूरि ते पाठवइं ।
जि पुण गीतिविनोद तिहां रमइं, ति भवँरानि[7] जिनेस्वर नो भमइं ॥८॥
नयन ते जिम नाथ प्रसंसियइं, ज(जं) पइं पेखिवि पापि नसियइं ।
वचन ते अमृतपूर घणउ धरऊं(इं), जि गुण-संस्तव सामितणउ करइं ॥९॥

---

३. गरास, राज्यादि । ४. वेश्या । ५. भोंय (?) । ६. बचेलुं । ७. भवरूप रान-जंगलमां ।

हीयडलउं मझ हरखिहिं गहगहिउं, प्रभु तणउं जहिं नामु सदा रहिउं ।
परघरे करकर्म्म न ते करइं, जि पइं पेखिवि पुणु समुद्धरइं ॥१०॥
भवह माहि भमी भमि हउं रुलिउ, सुकृतसंचइ तूं प्रभु मुं मिलिउ ।
तिम किमइ हिव पूरि नमुं रुली, जिम न देव भमउं भवि हउं वली ॥११॥
हिव **युगादिजिनेश्वर** भेटिवउ, भव-पराभवु लीलइं खेटिवउ[८] ।
तसु निरूप सुरूपु निरूपियइं, दुखि न दालिदि देव! विगूपीयइं ॥१२॥
हिव सु **लोडण पासु** नमस्करउं, भवतणा सवि पातक संहरउं ।
जिणि तुहागलि लाडिंहिं लाडियइ, तिणि कुकर्म महातरु मोडीयइ ॥१३॥
जगतमंडपमाहि फिरीफिरी, सकल बिंब सुभावि नमस्करी ।
भवतणउं फलु आजु जि पामिउं, चपलु चित्तु अनइ पुण दामिउं ॥१४॥
नवल ए जिहिं बिंब कराविआ, सुकृत तेहिं भंडार भराविआ ।
वर कपूर तणी परि निर्मला, किमइ नैव हुइं मनि मेल्हणां ॥१५॥
भवण शांति तणइं हिव जाइसिउं, नमवि पूजिवि सामिउ मागिसिउं ।
जिम सु राखिउ देव पारेवडउ, तिम मइं राखि न सेवक आपणउ ॥१६॥
हिव सु **आदिलु देवु** निहालिसिउं, भवणि जाइवि पाप पखालिसिउं ।
जिण सु **सेत्रुजु तीर्थु** विभूसिइं, अनइ कर्मरिपूपरि रूसिसिउं ॥१७॥
हिव नमु **प्रभु पार्श्वु** मनि स्मरी, जिम भवार्णवु जाउं ऊतरी ।
जसु प्रतापि विघ्न सर्वे टलइं, जिम ति जंबू[९] मेहजलइं गलइं ॥१८॥
हिव सु **वीरु** विशेषिहिं वांदियइं, जिम घणउं जग भीतरि नोंदियइं[१०] ।
अबुझ जेण घणा प्रतिबूझिव्या, समेल[११] जीवडला सवि सूझिव्या[१२] ॥१९॥
इह **अंबा**वि अछइ वरदेवता, सकल विघ्न हरइं जिनु सेवतां ।
विषम कार्यि विशेषिहिं जो स्मरइ, तसु तणां संकट सवि संहरइं ॥२०॥

इति श्री अरासणतीर्थस्तव ॥

इति **अरासणतीर्थ**वरस्तवं, भणति यः शुभभावयुतो नवम् ।
भ्रमति नैव जनः स घनं भवं, कतिपयैस्तु भवैर्लभते शिवम् ॥२१॥

इति श्रीजयानन्दसूरिरचितं आरासणस्तवनम् ॥

---

८. अटकावे । ९. जांबूफल । १०. 'न आवे' के 'न आदरे' के 'न वधे' (?) । ११. मलिन । १२. शोध्या-शुद्ध कर्या ।

(३)

अरासणतीर्थस्तवन ॥

विलसिर किन्नर महुरगीय जगगुरु गुण मणहर
गीइ पडिज्झणि रणझणिर कंदरि वरडुंगर ।
हिमगिरि सेहर धवलतुंग जिणमंदर सुंदर
सिरि **आरासण** नमह **तित्थ** वर-भत्ति निरंतर ॥१॥

निम्मलकंचण-रयण-र(रु)प्प-सीसगपमुहाणं
जं जगि सोहइ सयलसारखाणीण निहाणं ।
तहिं हरिसिण वियसंतनयण भवियण संपत्ता
पणमह **नेमि**जिणिंदपाय जइ सिवसुहरत्ता ॥२॥

अह पुण पणमिउ **रिसह**नाह तिहुअण आणंदणु
सिरिसित्तुंजयतित्थराउ मरुदेविहु नंदणु ।
जाइवि **लोडणपास**भवणि पणमिज्जइ **पासो**
जसु पयवंदणि होइ सिद्धिसुहलच्छिविलासो ॥३॥

कटरे कटरे नयण चंग नीलुप्पलसुविपुल
अरिरे अरिरे भाल रयणीव[इ]मंजुल ।
अरि अरि नलिणीनालसरल कोमल भुअजामल
बपुरे बपुरे कयलिगब्भ सुकुमाल सुपत्तल ॥४॥

जिणवररूव सुवन्नवन्न लावन्नमहन्नवु
जं नवि वन्निउ संतु (सत्तु) कोवि सुरवरनरदाणवु ।
तंपि रे कविणु हरिसपूररोमंचिअकाया
नव नव रंगि नमह थुणह पूअह पहुपाया ॥५॥

अज्ज हुअं सुविहाणु अज्ज अमिइणं घणु वुट्ठउ
पुन्निंहिं जग्गिउ अज्ज अज्ज भवदहभर नट्ठउ ।
अज्ज मणोरह फलिअ अज्ज कुलदेवय तुट्ठा
तिहुयण सुरतरु पासपाय नियनयनिंहिं दिट्ठा ॥६॥

विचि(च)किल-पाडल-बउल-जाइ-नवमालइ-दमणग-
केतकिदल-मचकुंद-कुंद-सयवत्तग-चंपग ।
बहुविह गन्हि कुसुममाल गुरुभत्तिवसागय
पूअह भविअण पास जेण विलसह सिवसंगय ॥७॥
चंदकलामलसयलबिंब जग तिहिं वरमंडवि
भवभयभंजण भत्तिसारमह पणमवि पणमवि ।
नयणाणंदणि **संतिभवणि** जाइवि जगसामिअ
वंदिउ पूइअ मुक्खसुक्ख तुम्हि मग्गह धम्मिअ! ॥८॥
आदि[जि]णेसर पय नमामि जाइउ तसु भवणे
जो पढमो जणि सत्थवाहु सिवपुरपहगमणे ।
जसु आरोहणि जंति झत्ति भवदुहभरमुत्ता
भविअण निव्वुइनयरि ठाणि केवलिसिरिजुत्ता ॥९॥
पासजिणिंदह चलणजुअल पणमिसु अह भाविण
झत्ति पसिज्झहिं सयल चित्तचिंतिअ जसु नामिण ।
तिहुअण-वंछिअ-कप्परुक्ख भुयणत्तयसामियु
पणमिउ मइं हिव **वद्धमाण** नरभवफल पामिउ ॥१०॥
बहिं अच्छइ **अंबाविदेवि** जिणभत्तिपवित्ता
जा पालइ जिणभत्तलोअ नियमहिमिण चित्ता ।
इण **आरासणतित्थ** थुत्तु समरहिं पढिऊणं
जे ते परमप्पउ लहंति भवुदहि तरिऊणं ॥११॥
इति श्रीआरासणमहातीर्थस्तवनम् ॥

(४)

जीरापल्ली-पार्श्वनाथस्तवन ॥

जय सिरिपासजिणिंदचंद सिवपयसुहसंगय
जय धरणिंदसुरिंदचंदनरविंदनमिअपय ।
जय कल्लाणविलासगेह तिहुअणजणतारग
जय **जीराउलिपुरि** पइट्ठ भुवणिट्ठपसाहग ॥१॥

कदलीकोमल-चरणकमल-विल(लु)ठंतनरामर
विदलिअकलिमलबल तमालदलसामलतणुकर ।
तिहुयणनयणाणंदकंदकंदलणपउहर
जय जय जिणवर पासनाह मणवंछिअसुहकर ॥२॥
निज्जियदुज्जयपंचबाणमद माणअगंजिअ
तज्जिअगज्जिरकोहजोह मइमोहविवज्जिअ ।
जियतिहुअणसुजणजाय जय भवभयभंजण
जीरापल्लीपुरिपइट्ठ सिरिपास निरंजण ॥३॥
हरिहरबंभपुरंदरिंदुदिणयरखंदाइअ
जे तुह गुणअवियाणएहि देवत्तिण मन्निअ ।
तेवि हु वि(ति?)हुअण-नयणचंद भवदुहपरितंता
ताव झायंति [तु]ह चरणजुअल सिवसुह कामंता ॥४॥
सेवंतह धरणराउ मणवंछिअ साहइ
जस सा[स]णभत्ती(त्ति)रसेण दुरियारि निरोहइ ।
सो सरणागयकप्परक्खु(रुक्ख) मह सरण पवन्नह
मद्दउ रिउबल दय करेवि पयकमल विलग्गह ॥५॥
पइं तुट्ठइ किवि सिद्धविज्ज [किवि] निरज ज सिद्धा
किवि किवि लद्धविसुद्धबुद्धि किवि रिद्धसमिद्धा ।
किवि [वि]लसंति लसंतचित्त रिउवग्ग विघाइण
पास पसीयसु ता ममावि मणवंछिअदाणिण ॥६॥
डाइणि साइणि खित्तवाल करवाल कराला
भूआ पेय पिसाय जक्ख रक्खस वेयाला ।
विज्जासिद्धि सुमंततंतदेवयगहतारा
सव्वे तेसि पसन्न पास पइं जे कयसारा ॥७॥
तुह नामिण जि दुट्ठकुट्ठखयरोगभगंदर
सूलजलोयरकाससासअइसारविव(वि)हजर ।
इय नासइ सयलाहिवाहिदेवयकयपमुहा
तह उवसग्ग समग्ग हुंति भविअहं लहु विमुहा ॥८॥

ताव करंत कणिट्ठकट्ठदप्पिट्ठ सुदुलहु
रिउगण नट्ठा रिट्ठ तुट्ठ तुहं जा न जगप्पहु ।
घुट्ठं हिट्ठमणेण जेण नियसिर तुह चलणे
सो लक्खिज्जइ सयलसुक्खलक्खिउ तह भुवणे ॥९॥
दूरि करिजलनलवेरिवाहिसिवसिवसहर(?)तक्कर
दुज्जणदुट्ठनरिंदविंदरण तेसि न भयकर ।
दुक्खविणिग्गहपरममंतु **जीराउलिमंडणु**
जे समरंतिह तुहभिहाणु दुरिउक्करखंडणु ॥१०॥
पिक्खवि दुक्ख सुतिक्ख नाह संसार असारउ
तुह पणमवि चरणकमल जाणामि असारउ ।
ता करुणाकर हणवि दुक्ख भवसयभमसंभवु
आसिवदाणं कुणसु सुक्ख जंतुहं दुहिं बंधवु ॥११॥
लग्गा सग्गपवग्गमग्गि(ग्गि?) दुग्गइदलणे
पालिहि पालिहि इअ वयंतह तुह पयकमले ।
ते सव्वे वि जिणेस पास पइं सुहसय पामिअ
ता मइं केण पयग्गलग्ग अवहीरसि सामिअ ॥१२॥
सामिअ जइवि न जुग्गओ मि तहवि हु विलवंतह
मह अवी(वधी?)रणु नेव जुत्तु तुह पयणुसरंतह ।
जंतुहं बद्धपइन्नओ सि सरणागयरक्खणु
अह गुरुआण पइन्नभंगसम नऽन्नोहावणु ॥१३॥
पत्ततिलोयपहुत्त सत्तु तुहं तिहुअणरक्खणि
पास पसीयसु देसु सुक्ख मह वंछिअभक्खणि ।
जुज्जइ तुह जमनन्नताणु नियभिच्च उव(वि)क्खिउ
एहोहावणु सामिआण जं सेवगु दुक्खिउ ॥१४॥
हउं सरणुज्झिउ हउं अनाणु हेउं वेरिविणिज्जिउ
हउं भवदुहभरतत्तगत्तु हउं नाहिण वज्जिउ ।
अह किं बहु वइएण पास पभणेमि उ तत्तं
मज्झ समं भुवणम्मि नत्थि करुणारसुघत्तं ॥१५॥

तुहं असरण जिअ सरणु देउ तुहं ताणु अताणह
तुहं रिपुघायगु तुहं दुहंतु तुहं नाह अणाहह ।
जइ मइं दीणु तुमेगसरणु विलवंतऽवहीरसि
ता करुणाकर पास दुहिअपालग कं पालसि ॥१६॥
सीसु न नामिउ कस्स कस्स को को व न [प]त्थिउ
कह कह लविउ न दीणु वयणु को को व न अच्चिउ ।
को को न य पडिवन्नु सरणु मइ मोहदुहत्तिण
किंपि न पाविउ तहवि ताणु मइं पइं परिमुत्तिण ॥१७॥
ता[य] तुहं गुरु तुहं मइ तुमेव मह गइ तुहं बंधवु
तुहं चकुर(?चक्खु?) तुहं माय ताउ तुहं देउ दयन्नवु ।
अनु अपासिउ सरणजुगु जगि दुहभरपीडिउ
तुह चेव हु सरणं पवन्नु मइं पालिहि सामिउ ॥१८॥
मणु मह चवलसहावु देउ तुह झाणि नि(न) लीणं
वयणु विसंठुलु न तव कित्तिकरणिक्कधुरीणं ।
बहुल पमाइण तणु वि नेव तव पूयणि सिअरसु(?)
जइ केवलकरुणारसेण तारसि तं तारसु ॥१९॥
जइवि न जुग्गउ हउं जिणिंद पुन्निहिं परिचत्तउ
बहु अविणउ गर — अवरि चत्तु निग्गुण दहतत्तउ(?) ।
तहवि दयागर सरण पत्तु दीणउ पालिहि मइं
जं जुग्गत्तणमवि भवेइ पइं चेव पसन्नइ ॥२०॥
तुह सम जुग्गाज(जु)ग्ग अहव दुहितहेन जोअहिं (?)
जे केवलकरुणारसेण तिहुअण विधिहु पालिहिं ।
जो जुन्हामय रयणि कन्नु वरिसंतु निवारिइ
भुवणह तावु स उच्चनीउ किमु ठाणु वियारइ ॥२१॥
पइ संतेवि तिलोयताय सरणीकयनाहो
जं पिक्खेमि सुतिक्खदुक्खलक्खे हमसाहो ।
तिहुअणरक्खणदिक्खिअस्स तव जुत्तमिणं तो
जइ चंदुज्जलकित्तिसारु तुह नाहु हवेंतो ॥२२॥

ता सेवगजणकप्परुक्ख! तक्खणि मह वंछिउ
देहि सुहं सव्वाहिवाहिरिउवग्ग निवारिउ ।
तउं हवे णं लज्ज पाव दायगु किर पामइ
जं अप्पत्तमणत्थिअत्थु जायगु चिर विलवइ ॥२३॥
अविहलपत्थण! विन्नविउ इअ भत्तिरसागइ
सेवगजणपच्चक्ख! पास! संतुट्ठ तुहं जइ ।
नमिउ बल दुविह जिणिउ फुरिआमलकेवलु
जह त(तु)ह तुल्ल भवामि सिग्घ तह करि मइ निम्मलु ॥२४॥
इअ नीलुप्पल-नीलकायकर[पसर?] निरंतर
फणिपतिफणमणिकिरणभार[अ]च्छरिअदिअंतर ।
जे तइं नाह थुणंति **पास जीराउलि** संठिउ
आसिव सुहसिरि ते भजंति अचिरेणुक्कंठिउ ॥
तुह थ(थु)इकर नर सुसिरि **देवसुंदर** सुह भंजिउ
सिवलच्छीमवि भजहिं पास अचिरेणुक्कंठिउ ॥२५॥

इति श्रीजीरापल्लीपार्श्वनाथस्तवः ॥

*

(५)
वैराग्यप्रेरणम्

नमो जिनागमाय ॥

पणमवि गुणसायर भुवणदिवायर जिण चउव(वी)स वि इक्कमणि ।
अप्पुं पडिबोहइ मोह निरोहइ काइ भवभेदणवसण ॥१॥
रे जीव! निसुणि चंचलसहाव, मिल्हेविणु सयल वि बज्झभाव ।
नवभेदिय परिग्गहु विविहजालु, संसारि अत्थि इंदिआलु ॥२॥
पयि पुत्त मित्त घरघरणि जाय, इहलोइय सव्वि वि सुहसहाय ।
न बिइ अत्थि कोइ तुह सरणु मुक्ख!, इक्कुन्ह सहिसि तिरिनरयदुक्ख ॥३॥
अच्छउ ता दूरिण पवरगेहु, नियदेहु वि न हु अप्पणउं एहु ।
इणि कारणि मन करि मूढ! पाव(वु), ससि निवडिम होसिइ पच्छयावु(?) ॥४॥

मन रच्चि रमणि रमणीय-देहि, वस-मंस-रुहिर-मल-मुत्तगेहि ।
दढदेविरत्त मालवनरिंदु, गयरज्जपाणु हुअ पुहविचंदु ॥५॥
इक्केण वि आसवि पुरिस मत्तु, अह पडइ झत्ति सिढिलेवि गत्तु ।
पंचासवि सत्तउ जुज्झि होइ, तसु का गइ त्ति न मुणउं लोइ ॥६॥
पंचिंदिय विसय पसंगरेसि, मणु वयणु कायु नवि संवरेसि ।
तं वाहसि कत्तिय गलपएसि, जं अट्ठ कम्म नवि निज्जरेसु(सि) ॥७॥
अह सत्त नरय तिरि मेरु पंच, अस्संखदीवसायरपवंच ।
बारह नव सग्ग पणुत्तराणि, इहलोयह वित्थरु निउणु जाणि ॥८॥
चउविह कसायविसहरण मंतु, जिणवयणु सुणइ जे पुन्नवंतु ।
घण पुलइअंगि मणि सद्दहंति, सिवलच्छिवच्छि ते हारु हुंति ॥९॥
वर हरि करि रह भड सज्जरज्जु, पाविज्जइ भवि भवि भूरिभज्जु ।
नवि लब्भइ दुल्लह पुण पवित्तु, अरिहंत देव गुरु साहु तत्तु ॥१०॥
इय **बारसभावण** सवण सुहावण भणवि एव जीवहं सरिसु (?) ।
दुलहुउ मणुयत्तणु धम्मपवत्तणु, दस दिट्ठंतिहिं बज्जरिसु ॥११॥
इह अणाय(इ)म्मि संसारि तमणाइओ, आसि गोलेसु कम्मेहिं मुच्छाइओ ।
तो अणंताउ कालाउ पावड्ढिओ, तं निगोयाउ भवियव्वयाकड्ढिओ ॥१२॥
पुढविकायाइछक्कायकायट्ठिओ, णंतकालं च पुण मरवि तत्थ ट्ठिओ ।
तो अकामेण निज्जरियकम्मंसओ, तंसि कहकहवि उ[प्प]न्नु माणुस्सओ ॥१३॥
चुल्लगाईहिं दिट्ठंतदसदुल्लहे, जीव! संपत्ति मणुयत्तणे वल्लहे ।
जं जि जिणधम्म सामग्गि मुक्खंकरी, सज्जि तुह जाइ सग्गोवरे मंजरी ॥१४॥
पुणवि रे जीव! सामग्गि एवंविहा, अन्नजम्मम्मि मन्नामि तुह दुल्लहा ।
ता पमाएण सा कीस विहलिज्जए, मणुयभवतरुह धम्मप्फलं लिज्जए ॥१५॥
दहइ गोसीसुसिरिखंड छारंकए, छगलगहणट्ठमेरावणं विक्कए ।
कप्पतरु तोडि एरंड सो वावए, जुज्जि विसएहिं मणुयत्तणं हारए ॥१६॥
सुमिणपत्तम्मि रज्जम्मि सो मुच्छए, सलिलसंकंतु ससि गिन्हिउं वंछए ।
अधिय(?)खित्तेसु धन्नाइं सो कंखए, जुज्जि धम्मेण विणु सुक्खमाविक्खए ॥१७॥
किं तुमंधो सि? किंवा वि धत्तूरिओ?, अहव किं सन्निवाएण आऊरिओ ?।
अमयसम धम्मु जं विस व अवमन्नसे, विसयविस[मेव] अमयं व बहु मन्नसे ॥१८॥

तिज्जि तुह नाणविन्नाणगुणडंबरा, जलणजालासु निवडंतु जिय! निब्भरा ।
पयइवामेसु कामेसु जं रज्झसे, जेहिं पुण पुणवि नंधानले(?) पच्चि(च्च)से ॥१९॥
असुरसुररमणिभोगेहिं जु न तुट्ठओ, मणुयविसएहिं किं होसि जिय! पुट्ठओ ?।
इत्थ इत्थंमि जिणभणियसिद्धंतओ, सुणसु इंगालदाहस्स दिट्ठंतओ ॥२०॥
जिम तुहं मणुरिद्धिहिं विसयसम(मि)द्धिहिं तिम जइ धम्मम्मि होइ जीय ।
ता सिवु उक्कंठिओ करयलि सिं(सं)ठिओ सुरनरसुह अणुसंगि दुअ ॥२१॥
सो धन्नओ धन्नओ सालिभद्दु कयवन्नउ अन्नवि थूलभद्दु ।
ते सरह सरह सगराइराय, खयरिंदनरिंदिहिं नमियपाय ॥२२॥
अप्पेणवि कारणि झत्ति जेहिं, वेरग्गाऊरियमाणसेहिं ।
छंडेविणु घरपुररमणिसत्थु, वउ गिन्हवि साहियपरमअत्थु ॥२३॥
तं पुण पियपरिभवताडिओ वि, दालिद्दरोगसयपीडिओ वि ।
नो वग्गिसि घट्टिलकुकु(क्कु)रुव्व, अच्छसि गजसूयरव्व? ॥२४॥
किं लोहइ घडिउं हिउं तुज्झ जं मुणियइं न तुह वि तणउं (?चित्त तणउं?) गुज्ज ।
जं पत्तइंपि इय मरणाइं दुक्खि, नो फुट्टइ नवि लक्खेइ मुक्खि ॥२५॥
पंचासवि अजिय पइं जि दुक्ख, अणुहवसि ताइं तं चेव तिक्ख ।
जिणि जीवकरंबउ खद्ध एव, स हिंसइ सविलंबउ सययमेव ॥२६॥
जं अन्नजम्मि कलुणं रुयंत, पइं मारिउ निग्घिण जंतु हंत ।
तं रागरोस जर वि हर देहि --------------- ॥

(एतावन्मात्रमेव प्राप्तमिदम् ।)

द्रव्यपर्याययुक्तिः / स्याद्वादचर्चा

– सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

द्रव्य-पर्यायोने सम्बन्धित अनेक चर्चाने प्रस्तुत करती आ रचना सम्भवतः महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी गणिकृत छे. कृतिनो ऐँकारथी थतो प्रारम्भ, विषयवस्तुनी पसंदगी, तर्कोनुं स्तर – आ बधुं 'आ रचना उपाध्यायजीनी छे' ओ वातनी पुष्टि करे छे. तो ग्रन्थगत अशुद्धिओ, नबळी रजूआत, शैलीनी शिथिलता – आ बधा उपरोक्त वातनी विरुद्धमां जता मुद्दाओ छे. ग्रन्थने समग्रपणे अवलोकतां उपाध्यायजीनी छाप उपसती जणाती नथी, पण वास्तविक निर्णय तो तज्ज्ञो ज करी शके.

आ कृतिनी मूळ हस्तप्रत कर्तानो निर्णय करवामां सहायक बनी शके, पण अमने तो तेनी प्रतिलिपि ज मळी छे. प्रतिलिपि जूना फूलस्केप कागळ पर करवामां आवी छे. तेना पर आ मुजबनुं लखाण छे : "श्रीपानसरथी मुनि श्रीभद्रंकरविजयजीने श्रावक भोगीलाल हालाभाई मारफते मोकलावेल प्रेस कोपी, पोष वदि ८ सोमवारे". आमां आ प्रतिलिपिने 'प्रेसकोपी' तरीके ओळखावी छे, परन्तु वास्तवमां ते अत्यन्त अशुद्ध प्रतिलिपिमात्र छे. अत्रे तेने यथामति शुद्ध करीने सम्पादित-प्रकाशित करवानो प्रयत्न कर्यो छे. शुद्धीकरण लगभग मूळ वाचनामां ज करी लीधुं छे. बहु थोडाक स्थाने कौंसचिह्नो प्रयोज्यां छे.

ग्रन्थकर्ता विद्वान् मुनिराज आगमो तथा जैन शास्त्रोना प्रकाण्ड अभ्यासी हशे ते ग्रन्थमां उद्धृत अनेकानेक शास्त्रपाठो परथी सुस्पष्ट छे. उद्धरणोनी सङ्ख्या अने कद बन्ने ओटलुं वधारे छे के मूळग्रन्थ ओनी आगळ जाणे नानो लागे. कदाच कर्ताने आगमिक-शास्त्रीय पाठोना तात्पर्यनुं स्पष्टीकरण ज इष्ट छे. उद्धरणोनां स्थान घणी जग्याओ प्रतिलिपिमां सूचवायां छे. ते ग्रन्थकर्ताओ पोते सूचव्यां छे के अन्य कोई विद्वज्जने ते नक्की करवुं अघरुं छे. खास तो आवां स्थानोओ पत्रक्रमाङ्क अपाया छे, ते कई प्रतना ते शोधवानुं बाकी रहे छे.

उद्धरणोमां पाठ यथावत् उद्धृत नथी थया, पण तेमांनो भाव साचवीने जरूर मुजबना शब्दो लेवामां आव्या छे. अत्रे मूळ सन्दर्भो तपासीने तेमने यथाशक्य शुद्ध करवानो प्रयत्न कर्यो छे, तेमज उपलब्ध थयां ओटलां मूळ स्थान पण नोंध्यां छे. मूळ प्रतमां केटलाक स्थाने टिप्पणी हशे तथा प्रतना अन्ते टिप्पण्यात्मक उद्धरणो हशे, ते प्रतिलिपि मुजब अत्रे पण अपायां छे.

कृतिमां अेना नामाभिधान प्रमाणे द्रव्य अने तेना पर्यायोने सम्बन्धित घणी तार्किक चर्चाओ छे. स्याद्वादमां पण स्याद्वाद लागु पडे के नहि, द्रव्य-पर्यायनुं स्वरूप, सिद्धोमां उत्पादव्ययध्रौव्य अंगे विभिन्न मत, जीव अने कर्मनो सम्बन्ध, द्रव्योना स्व-पर पर्यायो आ बधा विशेनी चर्चाओ रसप्रद छे.

अन्ते, आवी अेक दुर्लभ रचना प्रकाशमां आवी अने आपणा सुधी पहोंची अेनो खरो यश पूज्य मुनिवर्य श्रीधुरन्धरविजयजीने घटे छे. आनी प्रतिलिपि अत्यार सुधी तेओअे ज साचवी हती अने तेना प्रकाशन माटे अनुसन्धानने तेओअे ज आपी छे. अने ते माटे आपणे सौ तेमना आभारी छीअे.

ग्रन्थना अन्ते पुष्पिकामां आनुं नाम 'स्याद्वादचर्चा' जणावायुं छे, ज्यारे प्रतिलिपिना मथाळे 'द्रव्यपर्याययुक्ति' आवुं शीर्षक छे. तेथी अत्रे ते बन्ने नामथी कृतिनो उल्लेख कर्यो छे.

*

ऐन्दवीयकलागौरं[१], वीरं स्याद्वाददेशकम् ।
नत्वा प्रकाश्यते तत्त्वं, द्रव्यपर्याय[२]यौक्तिकम् ॥

इह हि तावज्जैनानां स्याद्वादप्ररूपणाऽवश्यंकर्तव्या, स्याद्वादमन्तरेण वस्तुस्वरूपस्याऽनुर्पलक्ष्यत्वात् । अन्यवादिन एकान्तप्ररूपणां कृत्वाऽपि चित्ररूपं(प)प्रामाण्यं वदन्तो वस्तुतोऽनेकधर्मप्रतिपाद्ययुक्तिवृन्दप्रामाण्यमवतीर्य प्रमाणयन्ति । उक्तम् -

"स्याद्वाद एव सर्वत्र, युक्तः स्याद्वादवादिनाम् ।
तेषामेकान्तवादस्तु, मिथ्यात्वमिति गीयते ॥४०॥२॥

पडिकमणासूत्रवृत्तौ १६ पत्रे

इति प्रायिकं वचनं, न चेत् सर्वत्राऽपि स्याद्वादस्याऽभीष्टत्वाद् भवतां, पुण्यकर्तव्यत्वेऽवश्यकृत्ये स्याद्वादस्याऽवश्यं युक्तिकदम्बस्याऽङ्गीकार्यत्वाद् भवतां पापकरणमपि स्याद्वादान्तर्गतं माननीयं स्यात् । पापकरणं तु जैनानां सर्वथा निषेध्यते । न [हि?] 'स्याद्वादस्याऽपि स्याद्वाद' इति युक्तिः प्रत्य[वति]ष्ठते, तर्हि अनवस्थादोषः प्रसज्यते । उक्तं तत्रैव -

"स्याद्वादोऽपि न निर्दिष्टः, पापकृत्ये कृतात्मभिः ।
स्याद्वादस्याऽपि नैकान्त-वादः स्याद्वादिनां मतः ॥" ४०॥३॥

---

१. शुद्धम् । २. अवहारे ।

एतेन किमुक्तम् ? स्याद्वादस्य यत्र योग्यता नाऽस्ति, तत्रैकान्तवादोऽपि न दूषणाय । यदुक्तं भग. श. १ उ. ३ –

"अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्तं(त्ते) परिणमइ ॥"

व्या० - अस्तित्वमङ्गुल्यादेरङ्गुल्यादिभावेन सत्त्वम् । उक्तम् -

"सर्वमस्तित्व(स्व)रूपेण, पररूपेण नाऽस्ति च ।
अन्यथा सर्वभावाना-मेकत्वं सम्प्रसज्यते ॥"

यथा मृद्द्रव्यस्य पिण्डप्रकारेण सत्ता ।

नत्थित्तं- नास्तित्वं[3] पर्यायान्तरेणाऽस्तित्वरूपे परिणमति । नास्तित्व-मत्यन्ताभावरूप[म्][4] । अत्यन्तमसतः सत्त्वं न खरविषाणवत् । उक्तम् -

"नाऽसतो जायते भावो, नाऽभावो जायते सतः ।
असतस्तु कुतः सिद्धि-रन्तरिक्षारविन्दवत् ॥"

पर्यायः पर्यायान्तरतां याति, तदपि १ प्रयोगसा-जीवोद्यमेन २ विस्रसा-अभ्रेन्द्रधनुर्वत् सहजात् ३ स्वभावजीवोद्यमाभ्यां बद्धः पटः जीर्णः स्याद्, बन्धनमुद्यमः(मात्) जीर्णीभ[व]नं सहजात् । वृत्तौ प० ३८, पन्नवणा ५ पदे वृत्तौ [द्रव्यास्तिकनयमतेन] परिणामो ह्यर्थान्तरगमनं, न च सर्वथा विनाशः परिणामः । पर्यायास्तिकनयमतेन पुनः परिणमनं पूर्वसत्पर्यायेण नाशः, प्रादुर्भावोऽसता पर्यायेण पर्यायास्तिकनयत इति । वस्तुतस्तु वस्तुपरिच्छित्त्यै द्रव्यादिरूपेणाऽस्ति, पररूपेण नाऽस्तीति सदसद्विकल्पजालजल्पनेन स्याद्वादः भाषाव्यवहारपथमवतारयितुं सर्वत्राऽबाध्ययुक्तिकानां जैनानामिष्ट एव । यत्र योग्यता नाऽस्ति सङ्गतिमङ्गति तत्र स्याद्वादो न स्याद्(दिति) युक्तियुक्तं स्याद्वादस्याऽपि स्याद्वादत्वम् ।

अथ का योग्यता ? इत्याह - षण्णां द्रव्याणां परिणामपर्यायेणोपचारतः स्याद्वादः । उक्तम् -

"अन्नोन्नं पविसंता, दिंता ओगाह अन्नमन्नस्स ।
मेलंता वि अणिच्चं, सगसगभावं न विजहंति ॥" [ ]

---

३. अन्योन्याभावेन । ४. तादात्म्यात्यन्ताभावेन वन्ध्यापुत्रो नाऽस्ति शुद्धनिश्चयात् । ५. व्यवहारनये । (अन्त्यं टिप्पणं कुत्र सम्बध्यते तद् न ज्ञायते ।)

तल्लक्षणं - १. एकस्मिन् वस्तुनि विरुद्धधर्मद्वयसमावेशः स्याद्वादः २. विरुद्धधर्मद्वयप्रतिपादनपरः वक्तुरभिप्रायविशेषः स्याद्वादः ३. वस्तुस्वरूपप्रतिपादनपरः श्रुतविकल्पः स्याद्वादः ४. **अनुयोग०** एकैकस्मिन् वस्तुनि सप्रतिपक्षानेकधर्मस्वरूपप्रतिपादनपरः स्याद्वादः । अस्यार्थः - एकस्मिन् जीवाजीवादौ विरुद्धं यद्धर्मद्वयं नित्यानित्या-ऽस्तित्वनास्तित्वोपादेयानुपादेया-ऽभिलाप्यानभिलाप्यादिलक्षणं तत्प्रतिपादने- कथने प्रत्यलः श्रुतविकल्पः । **स्याद्वादरत्नाकरे** अत्राऽष्टादश दोषा उद्धर्तव्याः ।

विशेषावश्यके द्रव्यलक्षणमाह - द्रुः सत्ता, तस्या एवाऽवयवो विकारो वा द्रव्यमवान्तरसत्तारूपाणि द्रव्याणि । गुणा रूपरसादयः, तेषां समुदायो घटादिरूपो द्रव्यम् । यत् पर्याययोग्यं तदपि द्रव्यं राजपर्यायार्हकुमारवत् । स्वकीयान् गुणान् पर्यायान् व्याप्नोति तद् द्रव्यम् अथवा गुणपर्यायवद् द्रव्यम् । [1]**राजप्रश्निकवृत्तौ** [सूत्र १९९] द्रव्यस्य नित्यत्वात् सकलकालभावित्वादेकरूपम् ।

अथ पर्यायलक्षणान्याह - पर्येति- उत्पत्तिं विपत्तिं च प्राप्नोति स पर्यायः । उक्तम् -

"अनादिनिधने द्रव्ये, स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति, जलकल्लोलवज्जले ॥" [ ]

पर्यायो द्विधा - १. क्रमभावी २. सहभावी वा । सहभावी गुणः, क्रमभावी पर्यायः । यथाऽऽत्मनः सहभाविनः पर्याया विज्ञानशक्त्यादयः, क्रमभाविनः सुखदुःखहर्षशोकादयः पर्यायाः ।

तस्माद् द्रव्य-पर्याययोः स्वरूप[स्य] भिन्नत्वाद् व्यवहारनये भिन्नावेव द्रव्यपर्यायौ राहोः शिरोवत् कथञ्चिद्भेदाभेदरूपौ । निश्चयनये तु गुणगुणिनोरभेदादुपचाराभावात् स्वतःस्वरूपस्य नित्यत्वाद् द्रव्यपर्यायावभिन्नावेव । यदुक्तम् -

"आत्मैव दर्शनज्ञान-चारित्राण्यथवा यतेः ।
यत् तदात्मक एवैष, शरीरमधितिष्ठति ॥"

अथ संसारिजीवानां उत्पादव्ययध्रौव्यरूपं गुरुलघु अगुरुलघु षट्स्थान-

---

१. राज्ञः प्रश्ना राजप्रश्नाः, ते सन्ति यस्मिन् शास्त्रे तद् राजप्रश्नी[य]नामकम् ।

पतितहानिवृद्धिरूपपर्यायापेक्षया प्रतिसमयं सम्भवति तत् सूत्रालापकेन समर्थयति (भग. श. २ उ. १ खंदाधिकारे) -

"जीवे णं भंते! सअंते जीवे अणंते जीवे ? खंदया! दव्वओ णं एगे जीवे सअंते । खित्तओ णं जीवे असंखिज्जपएसे असंखिज्जपएसोगाढे, अत्थि पुण से अंते । कालओ णं जीवे न कदाइ [न] आसी न कयाइ [न] भविस्सइ जाव धुवे णंतप (निअए?) सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे, णत्थि पुण से अंते । भावओ णं जीवे अणंता णाणपज्जवा अणंता दंसणपज्जवा अणंता चारित्तपज्जवा अणंता गुरुलहुपज्जवा अणंता अगुरुलहुपज्जवा, नत्थि पुण से अंते ।"

तद्वृत्तिः - 'अणंता' इत्यारभ्य 'इति वृत्ता'वित्यन्तोंऽशः लोकपर्याय-सम्बन्धी। अणंता वण्णपज्जव त्ति वर्णपर्यायाः वर्णविशेषाः एकगुणकालत्वादयः। गुरुलघुपर्यवाः[१] तद्विशेषाः बादरस्कन्धानाम् । अगुरुलघुपर्यवाः अणूनां सूक्ष्म-स्कन्धानाममूर्तानां वा इति वृत्तौ । ध्रुव अचलत्वात् । नियत एकरूपत्वात्। कादाचित्कोऽपि स्यादत आह - शाश्वतः प्रतिक्षणसद्भावात् । स च नियतकाला-पेक्षयाऽपि स्यादत आह - अक्खए त्ति अक्षयः अविनाशित्वात् । अयं च बहुतरप्रदेशापेक्षयाऽपि स्यादत आह- अव्ययस्तत्प्रदेशानामव्य[य]त्वात् । अयं च द्रव्यतयाऽपि स्यादत आह - अवट्ठिए त्ति अवस्थितः पर्यायाणामनन्ततयाऽ-वस्थितत्वात् । किमुक्तं भवति ? नित्य इति । अणंता णाण त्ति ज्ञानपर्याया ज्ञानविशेषा बुद्धिकृता वाऽविभागपरिच्छेदाः । अनन्ता गुरुलघुपर्याया औदारिका-दिशरीराण्याश्रित्य । इतरे तु कार्मणानि(दि)द्रव्याणि जीवस्वरूपं चाऽऽश्रित्येति।

गुरुलघुपर्यवाः कियन्तः ? घनोदधि १ घनवात २ तनवात ३ अन्यवात ४ [५(?)] आकाशप्रतिष्ठिता पृथ्वी ६ सागर ७ वैक्रिय-तैजसशरीर ८-९ पुद्गलद्रव्य १० द्रव्यकृष्णलेश्या ११ द्रव्यशुक्ललेश्या १२ औदारिकशरीर १३ आहारकशरीर १४ काययोग(गा) १५ एते ।

के अगुरुलघवः पर्यायाः ? आकाश १ कार्मणशरीर २ धर्मास्तिकाय

---

१. गुरुलघुपर्यायोपेतं गुरुलघु, अगुरुलघुपर्यायोपेतमगुरुलघु इति तैजसद्रव्यासन्नं गुरुलघु, भावद्रव्यासन्नं त्वगुरुलघु इति विशेषावश्यकेऽवधिप्रस्तावे पत्र १३ ।

३ अधर्मास्तिकाय ४ काल ५ पुद्गल ६ जीव ७ समय ८ कर्म ९ भाव[कृष्ण]लेश्या १० भावशुक्ललेश्या ११ दृष्टि १२ ज्ञान १३ अज्ञान १४ संज्ञा १५ कार्मणकाययोग १६ मनोयोग १७ वचनयोग १८ साकारोपयोग १९ भ्रमणचित्त २० अनाकारोपयोग २१ परमाणु २२ अतीताद्धा अनागताद्धा २३ **राजप्रश्निकवृत्तौ** सिद्धक्षेत्र २४ ज्योतिष्कविमानादीनि एतेऽगुरुलघवः । भग० श० १.उ० ९ ।

ततः संसारिजीवानां निश्चयेनोत्पादव्यय[वत्]त्वं द्रव्य-पर्यायाभ्यां सिद्धम्। सिद्धानां व्यवहारेण तूपचारेणैव सिद्धम् । द्रव्यभावकर्मवर्मनिर्वर्मितानां सर्वथा मुक्तात्मनामुत्पादव्यय[व]त्त्वं न, गुरुलघुपर्यायाणामभावादिति चेद् ? न, तेषामपि तत्पर्यायाणां सद्भाव आगमप्रामाण्यात् । भग० शत० १(२) उद्दे ०९(१) सिद्धसूत्रम् -

"जे वि य णं खंदया! [दव्वओ] एगे सिद्धे सअंते, खित्तओ णं सिद्धे असंखिज्जपएसे असंखिज्जपएसोगाढे अत्थि पुण से अंते, कालओ णं सिद्धे सादिए अपज्जवसिए निच्चे नत्थि पुण से अंते, भावओ णं सिद्धे अणंता णाणपज्जवा[1] अणंता दंसणपज्जवा जाव अणंता अगुरुलहुपज्जवा नत्थि पुण से अंते ।"

इति सूत्रप्रामाण्यात् सिद्धानामुत्पादव्यय[वत्]त्वमिति चेद् ? न, सिद्धान्तापरिज्ञानात् । किमुच्यते ? औदारिकादयो गुरुलघुपर्यायाः वृत्तावुक्तास्ते सम्भवन्ति न सिद्धे, तदा जीवशब्देन किं (कस्य) ग्रहणम् तद् वदन्तु भवन्तः । कार्मणादिका गुरुलघवः । ते हि तादात्म्यावभासिपरमाह्लादाखण्डबोधरूपे परमात्मनि न सम्भवन्ति । उच्यते सिद्धस्वरूपम् -

"केवलनाणोवउत्ता, जाणंता सव्वभावगुणभावे ।
पासंति सव्वओ खलु, केवलदिट्ठीहिऽणंताहिं ॥" [१६०]

केवलज्ञानोपयुक्ता जानन्ति- अवगच्छन्ति सर्वभावगुणभावान्- सर्वपदार्थ-गुणपर्यायान् । प्रथमो भावशब्दः पदार्थवाची द्वितीयः पर्यायवाची । सहभाविनो गुणाः क्रमभाविनः पर्यायाः । तथा पश्यन्ति सर्वप्रकारैः, खलुरवधारणे, केवल-

१. सिद्धमाश्रित्यैतत्पाठस्याऽकृतान्यार्थत्वात् तदेवार्थेऽनुमीयते । तद्वृत्तिपाठः - ज्ञानपर्याया- [ज्ञानविशेषा] बुद्धिकृता वाऽविभागपरिच्छेदाः ।

दृष्टिभिरनन्ताभिः केवलदर्शनैरिति **पन्नवणा** २[१] पदे [सूत्र ६४] ।

तथा अनन्तकेवलज्ञानमनन्तपर्यायपरिच्छेदात्मकं ज्ञेयानामानं स्यात् (मानन्त्यात्) । अनन्तज्ञेयपश्यत्तारूपं दर्शनम् । अनन्तपर्यायानीछा(निच्छा?)रूपं चारित्रम् । अनन्तगुरुलघुपर्यायाणां ज्ञातृत्वेनाऽनन्ता गुरुलघुपर्यायाः उपचारात् कार्ये अनन्ताऽगुरुलघुपर्यायानां(णां) ज्ञेयत्वेनाऽनन्ताः "जाणंता सव्वभावगुणभावे" इति सूत्रात् ।

तथा चाऽष्टकर्मसमूलोन्मूलनेनाऽष्टौ गुणाः, तदावरणान्यष्ट कर्माणि, तदावरणक्षये सम्पूर्णगुणभासः, दीपः कुण्डकाच्छादितस्तन्मात्रां भुवं प्रकाशयति, गृहगस्तन्मात्रमिति तत्प्रमाणम् ।

"अक्खरस्साणंतो भागो निच्चुग्घाडिओ चिट्ठइ" त्ति ज्ञानस्याऽनन्ततमो भागः(गो) नित्योद्घाटितः, अन्येंऽशा दर्शनचारित्रागुरुलघुरूपवीर्याणां तदावृत्यावृताः । ज्ञानस्योपलक्षणं चारित्रादीनाम् ।

सकलज्ञानावरणक्षयात् सकलवस्त्ववभासि ज्ञानं(न)गुणः १ दर्शनावरण-क्षयाद् युगपद् दर्शनगुणः २ वेदनीयक्षयादव्याबाधगुणः ३ मोहनीयक्षयात् क्षायिक-सम्यक्त्वचारित्रगुणः ४ आयुःक्षयादक्षयस्थितिगुणः ५ नामकर्मक्षयादौदारिकादि-शरीरोपाङ्गगुरुलघुपर्यायक्षयादरूपिगुणः ६ गोत्रक्षयादगुरुलघुगुणः, गुरुरुच्चैर्गोत्रं लघुर्नीचैर्गोत्रं तदत्यन्ताभावगुणः ७ अन्तरायक्षयात् समग्रवीर्यस्फुरणम् ८ । उक्तम् -

"इह नाण[२]दंस[३]णावरण-वेअमोहाउनामगोआणि ।
विग्घं कम्मट्ठक्ख(ख)ए, अट्ठ गुणा हुंति सिद्धाणं ॥

१. अनन्तं केवलज्ञानं, ज्ञानावरणसंक्षयात् ।
अनन्तं दर्शनं चाऽपि, दर्शनावरणक्षयात् ॥
क्षायिके शुद्धसम्यक्त्वे, चारित्रमोहनिग्रहात् ।
(शुद्धसम्यक्त्वचारित्रे, क्षायिके मोहनिग्रहात् - गुणस्थानक्रमारोहः)
अनन्तसुखवीर्ये च, वेद्यविघ्नक्षयात् क्रमात् ॥
आयुषः क्षीणभावत्वात्, सिद्धानामक्षया स्थितिः ।
नामगोत्रक्षयात्(देवाऽ)मूर्तानन्तावगाहना ॥ इति सेनप्रश्ने ८८ ॥

२.३. नाऽज्ञातं श्रद्धीयते नाऽश्रुतं सम्यगनुष्ठीयते इति क्रमः तत्रैव (ठाणां॰ वृ॰) पत्रे १६ ।

नाणं च दंसणं चेव, अव्वाबाहं तहेव सम्मत्तं ।
अक्खयट्ठिइ अरूवी, अगुरुलघुवीरिअं हवइ ॥"

इत्यनुयोगद्वारे बहु वक्तव्यम् १९ पत्रे ।

क्षायिकत्वान्नित्याश्रयित्वान्नित्या गुणाः । गुणगुणिनोरभेदत्वं निश्चयतः अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपत्वं(रूपं) नित्यत्वं त्रिकालेऽप्येकरूपं वा; तर्हि नित्यानामेषां पर्यायत्वं [न] सम्भवन्ति(ति) । ते हि क्रमभाविनः परिणामिनश्च । सत्यं, सर्वसंसार(रि)पर्यायेभ्यः पश्चात्क्रमेणोद्भूताः(ता) ज्ञानादिपर्यायाः परिणामिनः(न) आत्मन्यभेदरूपाः(पा) नित्याः, ज्ञेयतापश्यता(त्ता)दिगुणानां नित्यत्वात् ।

अपरं सिद्धानां ज्ञानं सर्वदा सर्वगुणपर्यायवत्परिच्छेदरूपं नित्यानित्यं भिन्नाभिन्नं बुद्धिकृतं(तम्), आकाशबद्धस्तु गत्या (आकाशवद् वस्तुगत्या?) ऽनित्यमेव २(?) । तथा सर्ववस्तुयुगपत्परिच्छेदरूपं नित्यं २ (?) । आत्मस्थिरतारूपं सर्वव्यापारानी(नि)च्छारूपं चारित्रं क्षायिकं नित्यम् ३ । अनन्तानां गुरुलघुपर्यायाणां तन्मयपरिणमनाभावेन प्रतिभूत्वग्राहकशक्तिरूपपर्यायाविकलकलाप्रकटनोद्भूतपरमाह्लादरूपं निरञ्जनमरूपित्वं सिद्धम् ४ । अगुरुलघु(गुरुलघु?)-पर्यायाणामभावादगुरुलघुत्वं नित्यम् ५ । विघ्नाभावेनाऽविकलवीर्योल्लासः नित्यः ६ ।

निश्चयतोऽनाद्यपर्यवसितत्वमेषां सिद्धानां निश्चयतः स्याद्वादस्य योग्यताया अभावादुत्पादव्यय[वत्]त्वं दुर्घटमेव । तेषां स्याद्वादे मन्यमाने मुक्ताऽमुक्ताः (मुक्ता अमुक्ता) दोषमुक्ता दोषयुक्ता ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चेति प्रतिबन्दीयुक्त्या साङ्ख्यमतवत्(द्) मुक्तोऽमुक्तश्चाऽऽत्मा स्याद् भवतां जैनानामपीति सप्रतिपक्षानेकधर्मसमाश्रयः स्याद्वादः पूर्वप्रपञ्चित एव । तत उपचारात् सांसारिकपर्यायानां(णां) ज्ञेयत्वलक्षणपरिणमनेन नवपुराणादिकर्ता कालः तत्पर्यायसमयक्षणलवमुहूर्तवदनित्य इतिवत् सिद्धं सिद्धानामुत्पादव्यय[वत्]त्वम् ।

अथ **केचन** सिद्धजीवस्य स्यादुत्पादव्यय[वत्]त्वं यथा पुद्गलस्य "एगगुणकालए दुगुणकालए संखिज्जगुणकालए एवं हीणे वि" इति सिद्धान्तमतमङ्गीकृत्य मन्यन्ते, तत् सिद्धान्ताभिप्रायापरिज्ञानात् । तावत् पुद्गलस्य शब्दार्थो विचारणीयः । पूरणगलनधर्मः पुद्गलः । यतः पूरणगलनस्वभावयोग्यता पुद्गले एव, 'अणंता वण्णपज्जवा जाव गंधरसफाससंठाणपज्जवा', वर्णा एकगुणका[ल]-

त्वादयः । जीवस्तु "अवण्णे अगंधे अरसे अफासे" इति **प्रज्ञापनायां** व्यक्तमेव ।

यथा - धर्मास्तिकायस्य चलनगुणः १ अधर्मास्तिकायस्य स्थितिगुणः २ आकाशस्याऽवकाशगुणः ३ कालस्य वर्तनागुणः ४ जीवस्योपयोगगुणः ५ पुद्गलस्य ग्रहणगुणः ६ । ग्रहणं परस्परेण बन्धनं जीवेनै(वस्यौ)दारिकादिभिरिति वृत्तौ भग० शत० २ उद्दे० १ । ग्रहणसाहचर्यान्मोचनमपि । तेन पूरणगलनधर्मा पुद्गलः सिद्धः । तथा च पुद्गलस्यैकगुणकालत्वादयः सादयोऽपर्यवसाना भवन्ति । द्रव्यार्थिकनये सिद्धगुणपर्यायास्तादात्म्यरूपाः स्वस्वरूपा एव । यथा कतकक्षोदेन समलजलस्य मलस्याऽधोभावेन स्वाभाविकी स्वच्छता । असत उत्पादाभावाद् व्योमारविन्दवत् । ततः स्वरूपतः सिद्धानामुत्पादव्यय[वत्]त्वं दु_ त्वमेव ।

अथ जीवकर्मणोरनादिसम्बन्धाद् जीवस्य स्वभावशक्ति-विभावशक्ति-द्वयैः(शक्ती) सदैव[1] सर्वत्र[2] सहचारिण्यौ भवत इति मन्यन्ते **केऽपि** । तदयुक्तं सिद्धान्ताभिप्रायापरिज्ञानात् । नित्यसहजानन्दैकाखण्डामृतरसमय आत्मा स्वभाव-स्थः । अशुद्धपरिणामो हि मोहनीयादि[3]कर्मपरमाणुसंयोगजन्यो विभावः स्पष्ट एव । ततो विरोधव्याघातशङ्कुगणावकाश एव । तदुक्तं **परमात्मप्रकाशवृत्तौ** -

"आत्मा शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धोऽपि सन् अनादिसन्तानागतज्ञाना-वरणीयादिकर्मबन्धप्रच्छादितत्वाद् वीतरागनिर्विकल्पसहजानन्दैकसुखास्वादमलभमानो व्यवहारनयेन त्रसो वा स्थावरो वा भवति, तेन जगत्कर्ता भण्यते । नाऽन्यः कोऽपि परकल्पितः परमात्मेति अयमेव शुद्धात्मोपादेयः ॥" - ४० गाथा

"द्रव्यार्थिकनयेन भावाभावरहितो वीतरागनिर्विकल्पसदानन्दैकस्वभाव-समाधिना जिनवरैर्देहेऽपि दृष्टः ॥" - ४४(४३)गाथा

"निश्चयनयेन कर्मैव बन्धं च मोक्षं च करोति, न त्वात्मा किमपि, नित्यत्वात्, नित्यस्याऽकिञ्चित्करत्वात् । यद्यप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्य-बन्धमशुद्धनिश्चयेन भावबन्धं मोक्षं च करोति, तथापि न शुद्धपारिणामिक-परमभावग्राहकेन(ण) शुद्धनिश्चयेन करोति ॥" - ६५ गाथा

"व्यवहारेण जीवस्य बन्धमोक्षौ स्तः, निश्चयेन मोक्षो नाऽस्तीति चेत्

---

१ सर्वकालम् । २. मुक्तावस्थादौ । ३. अनादिसंयोगान्मोहादेः ।

तदर्थमनुष्ठानं वृथा । तत्रोत्तरं - मोक्षो हि बन्धपूर्वकः । स शुद्धनिश्चये नाऽस्त्यतो मोक्षोऽप्यात्मनो नाऽस्ति । यदा शुद्धनिश्चयेन बन्धः, तदा सर्वदैव बन्ध एव ॥" - ६९(६८) गाथा ।

"छद्मस्थानां सत्तावलोकनदर्शनपूर्वकं ज्ञानं भवति तत्र दर्शनचतुष्टयमध्ये द्वितीयं यदचक्षुर्दर्शनं मानसरूपं निर्विकल्पं भव्यस्यैव मोहस्य चारित्रस्य क्षये क्षयोपशमोपशमलाभे सति शुद्धात्मानुभूतिरूपं वीतरागसम्यक्त्वं शुद्धात्मानुभूति-ध्यानेन सहकारिकारणं भवति भव्यस्यैव, न त्वभव्यस्य, निश्चयसम्यक्त्वचारित्रा भावात् ॥" - ६१(?) गाथा

"चित्ते बद्धे बद्धो, मुक्के मुक्को त्ति नत्थि संदेहो ।
अप्पा विमलसहावो, मयलिज्जइ मयलए चित्ते ॥" - ६५(?) गाथा

अथ **केचन** वदन्ति - यदात्माऽशुद्धत्वेन परिणमतीत्युल्लेखेन कथं नाऽऽत्मनोऽशुद्धपरिणामोऽप्यात्मस्वभाव इति । तन्न, स्वभावस्य पर्यायः परिणामो न भवति । यदुक्तं **भगवत्यां** १२ शते उद्दे० २ - "भवसिद्धियत्तणं भंते! जीवाणं किं सभावओ परिणामओ ? जयंती! सभावओ न परिणामओ ॥" एतद्वृत्तिः - "सभावओ त्ति स्वभावतः पुद्गलानां मूर्तत्ववत् । परिणामओ त्ति परिणामेनाऽभूतस्य भवनेन पुरुषस्य तारुण्यवत् ।" इति । एतेन स्वभावः जीवसहचारिअ(र्य)विष्वग्भावसम्बन्धेन सर्वदाऽनुत्थानरूपः, परिणामस्तु परमाणुसंयोग-जन्योत्थानरूपः ।

पन्नवणायां ५ (१३) पदे परिणामो ह्यर्थान्तरगमनम्[१] । तच्च संयोगविशेषः संयोगजन्योपाधिः । यथा नीरोपरि बुद्बुदः नीरपरिणामः कथं शुद्धपरिणामः(?) स शुद्धस्वभाव इति स तु कथनमात्रं यथा जीवस्य भव्यत्वं[२] स्वभावतः, न परिणामत इत्यलं प्रसङ्गेन । [सिद्धं] सिद्धानां स्वतो नोत्पादव्यय [इति]।

ततो जातं जीवकर्मणोरनादिसंयोगजन्यपरिणामोपाधित्वम् । यदुक्तं **ठाणांगवृत्तौ** - 'एगबंधे'त्ति बन्धनं बन्धः सकषायत्वाद्, द्रव्यतो बन्धो निगडादिः, भावतः कर्मणा ।'

---

१. प्रापणम् । २. भव्यत्वं सिद्धिगमनकारणं, न त्वन्यत् किञ्चित् । तत्र सत्यपि भव्यत्वे सिद्धिगमनकारणे कियता कालेन निर्लेप ? इति भगवतीवृत्तौ शते १२ उ० २ । अत्र युक्तिर्भव्याभावोऽभव्यः स्वभावनिषेधः । [स्पष्टत्वार्थं जिज्ञासुभिर्वृत्तिरेव द्रष्टव्या ।]

ननु बन्धो जीवकर्मणोः संयोगा(गोऽ)भिप्रेतः । स खल्वादिमानादिरहितो वा स्यादिति कल्पनाद्वयम् । तत्र यद्यादिमानिति पक्षस्तदा किं पूर्वमात्मा पश्चात् कर्म १ अथ पूर्वं कर्म पश्चादात्मा २ उत युगपत् कर्मात्मानौ संप्रसूयेता ३ मिति त्रयो विकल्पाः । तत्र न तावत् पूर्वमात्मसम्भूतिः सम्भाव्यते निर्हेतुकत्वात्, खरविषाणवत् । अकारणप्रसूतस्य वाऽकारणत एवोपरमः स्यात् । अथाऽनादिरेवाऽऽत्मा तथाऽप्यकारणत्वान्नाऽस्य कर्मणा योग उपपद्यते नभोवत् । अथाऽकारणेऽपि कर्मणा योगः स्यात् तर्हि स मुक्तस्याऽपि स्यादिति । अथाऽसावात्मा नित्यमुक्त एव तर्हि किं मोक्षजिज्ञासया, बन्धाभावे च मुक्तव्यपदेशाभाव एवाऽऽकाशवदिति ।

नाऽपि कर्मणः प्राक् प्रसूतिरिति द्वितीयो विकल्पः संगच्छते, कर्तुरभावात् । न चाऽक्रियमाणस्य कर्मव्यपदेशोऽभिमतः । अकारणप्रसूतेश्चाऽकारणत एवोपरमः स्यादिति ।

युगपदुत्पत्तिलक्षणः तृतीयः पक्षोऽपि न क्षमः, अकारणत्वादेव । न च युगपदुत्पत्तौ सत्या'मयं कर्ता, कर्मेद'मिति व्यपदेशो युक्तः, सव्येतरगोविषाणवत् ।

अथाऽऽदिरहितो जीवकर्मयोग इति पक्षः । ततश्चाऽनादित्वादेव नाऽऽत्मकर्मवियोगः स्यात् ।

यच्चाऽऽदिरहितजीवकर्मयोगेऽभिधीयमानेऽनादित्वान्नाऽऽत्मकर्मवियोग इति, तदयुक्तमनादित्वेऽपि संयोगस्य विप्रयोगोपलब्धेः ।

जह कांचणोवलसंजोगोऽणादिसंतइगया(ओ) वि ।
वोच्छिज्जइ सोवायं तह जोगो जीवकम्माणं ॥

तथाऽनादेः सन्तान[स्य] विनाशो दृष्टः, जीवा(बीजा)ङ्कुरसन्तानवत् ।

अन्नयरमणिव्वत्तिय कज्झ बीयंकुराण जं विहियं ।
तच्छ(त्थ)हओ(?) संतानो(णो) कुक्कुडिअंडाइयाणं च(व) ॥

अनादिबन्धसद्भावेऽपि मोक्षो भवतीति ११ पत्रे **स्थानाङ्गवृत्तौ** ॥

केचिद् वदन्ति - जीवस्य द्वौ स्वभावौ शुद्धाशुद्धरूपौ । शुद्धेन मोक्षः, अशुद्धेन संसारः इत्यपि न, तयोरन्योन्यं विरोधात्, शीतातपयोरिव, जीवे न

घट(टे?)ते । यथा चेतनाचेतनस्वभावौ स्वरूपत एकस्थानेऽघटमानवत् । संसारस्य नरनारकादिपर्यायः स्वभावः, जीवस्य च शुद्धचैतन्यस्वभावः, तयोरेकत्राऽवस्थानं दुर्घटम् ।

यथा शुद्धहेम्नः द्वित्र्याद्यशुद्धभागजोटकयुक्ते हीनहीनतरादिमूल्यं सम्भवति । यथा [यथा] शुद्धं तथा तथा मूल्यमधिकादि स्यात् । सीसकसंशोधितस्याऽशुद्धभागपृथग्भावेन शुद्धस्वभावं सत् शुद्धमेव हेम भवति । तथा जीवोऽप्यशुद्धसंयोगजन्योपाधिपरिणामपरिणतोऽप्यशुद्धनिश्चयेन नरनारकादिपर्यायपरिणतोऽशुद्ध एव । यदा तु ज्ञानक्रियासीसकप्रायसंशोधितो जीवोऽनादिसंयोगदूरीकरणे मूलस्वभाव एव । यथा द्वयोरङ्गुल्योः संयोगे नष्टेऽङ्गुली तिष्ठतीति(त इति) ।

दशवैकालिकश्रीहारिभद्रीवृत्तौ २२(६२) पत्रे - परिणामप्रपञ्चः(?) नित्यानित्यैकान्तपक्षव्यवच्छेदेनाऽऽत्मानं परिणामिनमभिधित्सुराह -

एवं सतो जीवस्स वि, दव्वादी संकमं पडुच्चा ओ ।
परिणामो साहिज्जति पच्चक्खेणं परोक्खे वि ॥

पूर्वार्धं पूर्ववत् । पश्चार्द्धभावना पुनरियम् - न ह्येकान्तदृष्टाऽपि द्रव्यादिसङ्क्रान्तिर्देवदत्तस्य युज्यते इत्यतस्तद्भावान्यथानुपपत्त्यैव परिणामसिद्धिः । उक्तं च -

"नाऽर्थान्तरगमो यस्मात् सर्वथैव नचाऽऽगमः ।
परिणामः प्रमासिद्ध ई(इ)ष्टश्च खलु पण्डितैः ॥

"घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥

"पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम् ॥"

नित्य आत्माऽनादिपरिणामभावादिति स्वभावतोऽनाज्झ(द्य)मूर्तपरिणामित्वात् ई(इ)ति गाथार्थः ।

"एस णं भंते! जीवे तीतमणंतं सासयं [समयं दुक्खी समयं अदुक्खी] समयं दुक्खी वा अदुक्खी वा पुव्विं च णं करणेणं अणेगभावं अणेगभूतं परिणामं परिणमति । अह से वेदणिज्जे(ण्णे) निज्जिणे भवति । तओ पच्छा

एगभावे एगभूते सिया ? हंता गो० ! एस णं जीवे जाव एगभूए सिया, एवं पडुप्पन्नं सासयं समयं, एवं अणागयमणंतं सासयं समयं ॥'' - भग० श० १४ उ० ४ ।

वृत्तौ जीवस्वरूपं निरूपयन्नाह - ''एस णं भंते! जीवे त्ति। एष प्रत्यक्षो जीवोऽतीतेऽनन्ते शाश्वते समये समयमेकं दुःखी दुःखहेतुयोगात् समयं चाऽदुःखी सुखी(ख)हेतुयोगाद् बभूव, समयमेव [च] दुःखी वाऽदुःखी वा, वा-शब्दयोः समुच्चयार्थत्वाद् दुःखी च सुखी च तद्धेतुयोगात् । न पुनरेकदा सुख-दुःखवेदनमस्त्येकोपयोगत्वाज्जीवस्येति । एवंरूपश्च सन्नसौ स्वहेतुतः किमनेकभावं परिणामं परिणमति पुनश्चैकभावपरिणामः स्यात् ? इति पृच्छन्नाह - पुव्विं च णं करणेणं इत्यादि । पूर्वं च एकभावपरिणामात् प्रागेव करणेन कालः(ल)स्वभावादितिका(दिका)रणसंच(व)लितस(त)या शुभाशुभकर्मबन्धहेतु-भूतया क्रिययाऽनेको भावः पर्यायो दुःखितत्वादि(खित्वादि)रूपो यस्मिन् स तथा । तमनेकभावं परिणाममिति योगः । अणेगभूयं ति अनेकभावत्वादेवाऽनेकरूपं परिणामं- स्वभावं परिणमइ त्ति अतीतकालविषयत्वादस्य परिणतवान्- प्राप्तवानी(नि)ति ।

''अह से त्ति । अथ त[द्] दुःखितत्वाज्ञ(द्य)नेकभावहेतुभूतं वेयणिज्ज त्ति वेदनीयं कर्म उपलक्षणत्वाच्चाऽस्य ज्ञानावरणीयादि वा(च) निर्जीर्णं- क्षीणं भवति । ततः पश्चात् एगभावे त्ति एको भावः सांसारिकसुखविपर्ययात् स्वाभाविकसुखरूपो यस्याऽसावेकभावोऽत एव एकभूत- एकत्वं प्राप्तः सिय त्ति बभूव कर्मकृतधर्मान्तरविरहादी(दि)ति प्रश्नः । इहोत्तरमेतदेव । एवं प्रत्युत्पन्नानागतसूत्रेऽपी (त्रे अपी)ति ।''

पन्नवणायां विशेषपदे ५मे पर्यायाधिकारः - ''जीवपज्जवा य अजीव-पज्जवा य । जीवपज्जवा णं भंते! किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ? गो०! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता । से केणट्ठेणं भंते । अणंता ? गो०! असंखिज्जा णेरइया असुरा नागा पुढविआउतेउवाउकाईया अणंता वणस्सईकाइया असंखा बितिचउरिंदिया मणुस्सा वंतरा जोइसिआ वेमाणिआ अणंता सिद्धा स(से) तेणट्ठेणं गो०! अणंता पज्जवा [सूत्र १०३] ॥''

वृत्तिः - ''तत्र पर्याया गुणा विशेषा धर्मा इत्यनर्थान्तरम् । औदयि-

कादयश्च जीवाश्रयास्ततो जीवपर्याया एव गम्यते(न्ते) । औदयिको भावः पुद्गलवृत्तिरपि । सम्बन्धपरिमाण(णा)वगमाय पृच्छति - 'जीवपज्जवा णं भंते! किं संखेज्जा ?' इत्यादि । वनस्पतिसिद्धवर्जा नैरयिकादयोऽसङ्ख्येयाः, मनुष्येत्व(ष्व)सङ्ख्येयत्वं संमूर्च्छिमापेक्षया, वनस्पतयः सिद्धाश्चाऽनन्तास्ततः पर्यायिणामनन्तत्वात् पर्याया अनन्ताः ।''

''नेरईं(इ)याणं भंते! केवइ(इ)या पज्जवा ? गो०! अणंता । से केणट्ठेणं भंते!, गो०! नेरइयाए नेरईं(इ)यस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए तुल्ले उग्गाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए ठिइए सिय हीणे सिय तुल्ले सियमब्भहीण(अब्भहिए) [सूत्र १०४] ।

एतद्वृत्तिः - ''केनाऽभिप्रायेण भगवतैवं निर्वचनमवाचि - नैरयिका(को) नैरयिकस्य द्रव्यार्थतया तुल्य इति ? उच्यते - एकमपि द्रव्यमनन्तपर्याय-मेतन्न्यायप्रदर्शनार्थम् । नारकजीवद्रव्यमेकसङ्ख्याकं नैरयिकस्य द्रव्यार्थतया तुल्यः । पएसट्ठिए त्ति नारकजीवद्रव्यं लोकाकाशप्रदेशप्रमाणप्रदेशमिति नारको नारकस्य तुल्यप्रदेश एवाऽर्थः । द्विविधं द्रव्यं - प्रदेशवदप्रदेशवच्च । तत्र परमाणुरप्रदेशः, द्विप्रदेशादिकं प्रदेशवत् । एतद्द्वयं पुद्गलास्तिकाये एव । शेषाणि धर्मास्ति-कायादीनि द्रव्याणि नियमास्स(त्स)प्रदेशानि ।

'उग्गाहणयाए त्ति सिय हीणे' इत्यादि । नैरयिकोऽसङ्ख्यातप्रदेशो-ऽपरस्य नैरयिकस्य तुल्यप्रदेशस्य अवगाहनं- शरीरोच्छ्रयः स एवाऽर्थः । तथा सिय हीणे त्ति स्याच्छब्दः प्रशंसाऽस्तित्वविवादविचारणाऽनेकान्तसंशयप्रश्नादि-ष्वर्थेषु । अत्राऽनेकान्तज्झोति(द्योत)कस्य ग्रहणम् । स्याद्धीनोऽनेकान्तेन हीन इत्यर्थः । स्यात्तुल्योऽनेकान्तेन तुल्यः । स्यादभ्यधिकोऽनेकान्तेनाऽभ्यधिकः । कथमिति चेदुच्यते - यस्माद् वक्ष्यति - रत्नप्रभायां नैरयिकाणां भवधारणीय-शरीरस्य जघन्येनाऽवगाहनाया अङ्गुलस्याऽसङ्ख्येयो भाग उत्कृष्टतः ७ धनूंषि ३ हस्ता ६ अङ्गुलानि । उत्तरोत्तरासु पृथ्वीषु द्विगुणद्विगुणं यावत् सप्तमपृथ्वी-नैरयिकाणां जघन्यतोऽवगाहनाऽङ्गुलस्याऽसङ्ख्य(ख्येयो) भागः, उत्कृष्टतः ५०० धनुःशतानि । तत्र जइ हीणेति चतुःस्थानपतितं ज्ञेयम् । ठिइ(ई)ए सिय हीणे सिय तुल्ले सियमब्भहिए त्ति । एवमेकनारकस्याऽपरनारको(का)पेक्षया द्रव्यतो द्रव्यार्थतया प्रदेशार्थतया च तुल्यत्वमुक्तम् । क्षेत्रतोऽवगाहनं प्रति हीनाधिकत्वेन

चतुःस्थानपतितत्वम् । कालतोऽपि स्थितितो हीनाधिकत्वेन चतुःस्थानपतितत्वम् ।''

''केवलनाणी मणूसे केवलनाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पदेसट्ठयाए तुल्ले उग्गाहणट्ठाए चउठाणवडिए ठिईए तिठा(ट्ठा)णवडिए वण(न्न)रसगंधफास-पज्जवेहिं छठा(ट्ठा)णवडिए केवलनाणपज्जवेहिं केवलदंसणपज्जवेहि य तुल्ले ॥'' [सूत्र - ११६]

वृत्तिः - ''केवलज्ञानसूत्रे तु ओगाहणट्ठाए त्ति केवली(लि)समुद्घातं प्रतीत्य । केवलिसमुद्घातगतः केवली शेषकेवली(लि)भ्योऽसङ्ख्येयगुणा-[धिका]वगाहनः, तदपेक्षया शेषाः केवली(लि)नोऽसङ्ख्येयगुणहीनावगाहनाः, स्वस्थाने तु शेषाः केवलिनस्त्रिस्थानपतिता इति । स्थित्या त्रिस्थानपतितत्वं सङ्ख्येयवर्षायुष्कत्वात् ।

[इतः परं पन्नवणा - ५पदगत मतिज्ञानादेः परमाणुपुद्गलस्य च पर्यायपरिमाणसम्बन्धिसूत्राणि सवृत्तिकानि यथावदुद्धृतानि सन्ति । तान्यत्र न मुद्रितानि - सं०]

तथा मतिज्ञानमभव्यानां नाऽस्ति ।

गइ १ इंदिय २ काए ३ जोए ४ वेए ५ कसाय ६ लेसासु ७ ।
सम्मत्त ८ नाण ९ दंसण १० संजय ११ उवओग १२ आहारे १३ ॥
भासग १४ परित्त १५ पज्जत्त १६
सुहुम १७ सन्नी १८ अ होइ भव १९ चरिमे २० ।
आभिणिबोहियनाणं मग्गिज्जई एसु ठाणेसु ॥

मतिज्ञानं चतुर्गतौ प्राप्यते १ । पञ्चिन्द्रियेष्वेव प्राप्यते । द्वीन्द्रियादयोऽसम्यक्त्वा, मत्यज्ञानमेव लभ्यते २ । त्रसकायेष्वेव मतिज्ञानम्, एकेन्द्रियत्वेन मिथ्यात्विन उत्पद्यन्ते ३ । मनोवचनकायत्रिकयोगेष्वेव मतिज्ञानं प्राप्यते, एक-द्विकयोगयोगे तु मत्यज्ञानमेव ४ । वेदत्रयेऽपि मतिज्ञानम् ५ । द्वादशकषायेऽनन्तानु-बन्धि ४ वर्जिते मतिज्ञानं प्राप्यते ६ । पद्मतेजःशुक्ललेश्यासु मतिज्ञानं प्राप्यते ७ । सम्यक्त्ववतो मतिज्ञानम् ८ । मतिश्रुतावधिमनःपर्यवेषु मतिज्ञानं, नतु केवलज्ञाने व्युच्छिन्नं मतिज्ञानम् ९ । चक्षुर्दर्शनादि ४ विषये(?) मतिज्ञानम् १० । चारित्रिणो निश्चयेन मतिज्ञानम् ११ । साकारेऽनाकारे मतिज्ञानम् १२ । यस्मिन्

समये आहारं करोति तत्राऽऽहारकः, भवान्तरे वक्रगत्यादौ अनाहारकः, तत्राऽऽहारकिनो मतिज्ञानं प्राप्यते, अनाहारकिनो मतिज्ञानं न लभ्यते १३ । भाषकस्य मतिज्ञानं लभ्यते १४ । प्रत्येकशरीरिणो मतिज्ञानं प्राप्यते, सूक्ष्माणां तु न १५ । पर्याप्तानां मतिज्ञानं, न त्वपर्याप्तानाम् १६ । [बादराणां मतिज्ञानं, न तु सूक्ष्माणाम् १७ ।] संज्ञिनां मतिज्ञानं, न त्वसंज्ञिनाम् १८ । भव्यानामेव मतिज्ञानं प्राप्यते, न त्वभव्यानाम् १९ । अनन्तेऽपि काले यो मोक्षं यास्यति स चरमशरीरी, तस्य मतिज्ञानम्, अन्ये भव्यत्वेऽपि सामग्य्रप्रापणदोषेण मोक्षं न यास्यन्ति तेऽचरमास्तेषां मतिज्ञानं न प्राप्यते । उक्तम् -

"सामग्गीअभावाओ ववहाररासीअप्पे(प्प)वेसाओ ।
भव्वा वि ते अणंता जे सिद्धिसुहं न पावेंति ॥"

२० द्वारैर्मतिज्ञानस्य सत्पदप्ररूपणा कृता **आवश्यकपीठिकायाम्** ।

"मइणाणपज्जवा सुअनाणपज्जवा ओहिणाणपज्जवा मणपज्जयणाण-पज्जवा केवलनाणपज्जवा ।" [भग० श० ८ उ० २]

तद्वृत्तिः - "पर्यायद्वारे केवइया [इत्यादि] । मतिज्ञानस्य पर्या(र्य)वा-विशेषा(ष)धर्मा-अभिनिबोधिकज्ञानपर्यवः(वाः) । ते च द्विविधा(ः) स्वपरपर्याय-भेदात् । तत्र येऽवग्रहादयो मतिविशेषाः क्षयोपशमै(म)वैचित्र्यात् ते स्वपरपर्यायाः (स्वपर्यायाः), ते चाऽनन्ताः । कथम् ? एकस्मादवग्रहादेरन्योऽवग्रहादिरनन्त-भागवृद्ध्या विशुद्धोऽन्यस्त्वसङ्ख्येयभागवृद्ध्याऽपरः *सङ्ख्येयगुणवृद्ध्या । सङ्ख्यातस्य सङ्ख्यातभेदत्वादनन्ता विशेषाः तज्ज्ञेयस्याऽनन्तत्वात् प्रतिज्ञेयमथवा मतिज्ञानमविभागपलिच्छेदैर्बुद्ध्या छिद्यमानमनन्तं खण्डं भवतीत्येवमनन्तास्त-त्पर्यायाः । ये पदार्थान्तरपर्यायास्ते तस्य परपर्यायाः, ते च स्वपर्यायेभ्योऽन-न्तगुणाः, परेषामनन्तगुणत्वात् ।

ननु यदि ते परपर्यायास्तदा तस्येति व्यपदेष्टुं न युक्तं, परसम्बन्धित्वात् । अथ ते तस्य, तदा न [पर]पर्यायास्ते व्यपदेष्टव्याः, स्वसम्बन्धित्वात् । अत्रोच्यते - यस्मात् तत्राऽसम्बद्धास्ते तस्मात् तेषां परपर्यायव्यपदेशः, यस्माच्च ते परित्यज्य-मानत्वेन तथा स्वपर्यायाणां 'स्वपर्याया एते' इत्येवं विशेषणहेतुत्वेन

---

* इत आरभ्याऽस्मिन्नुद्धरणे बह्वी पाठच्युतिः । अभ्यासार्थिना वृत्तिर्द्रष्टव्या - सं. ।

च तस्मि-न्नुपयुज्यन्ते तस्मात् तस्य पर्यवा इति व्यपदिश्यन्ते । यथाऽसम्बद्धमपि धनं स्वधनमुपयुज्यमानत्वादिति ।

अनन्ताः श्रुतज्ञानपर्यायाः स्वपरभेदाद् द्वेधा । तत्र स्वपर्या[या] ये श्रुतज्ञानस्य स्वगता अक्षरश्रुतादयो भेदास्ते चाऽनन्ताः, क्षयोपशमवैचित्र्यविषयानन्ता (न्त्या)भ्यां श्रुतानुसारिणां बोद्धा(धा)नामनन्तत्वात् । [पर]पर्यायास्त्वनन्ताः सर्वभावानां प्रति[ती]ताः ।

ये मनःपर्ययज्ञानस्य केवलज्ञानस्य [च] स्वपर्याया ये स्वाम्यादिभेदेन स्वगता विशेषास्ते चाऽनन्ता अनन्तद्रव्यपर्यायपरिच्छेदापेक्षयाऽविभाग-पलिच्छेदापेक्षया चेति ।

अल्पबहुत्वे मतिश्रुतावधिमनःकेवलानां केवलज्ञानपर्याया अनन्तगुणाः, सर्वद्रव्यपर्यायविषयत्वात् तस्येति भगवतीशतके ८ उद्देशः ३(२) आत्मा ८ अधिकारः (?) । भगवतीशतके १२ उद्देश १० ॥

इति श्रीस्याद्वादचर्चाप्रमाणं समाप्तम् । ग्रन्थाग्रं ३६० ॥

★

टिप्पणात्मकान्युद्धरणानि

पत्र-१

* प्रवचनोड्डाहरक्षणार्थं गुरुलाघवपर्यालोचनेन मृषा भाषमाणः साधुराराधक एव । "सच्चमेयं भासजायं बीयं मोसं तईयं सच्चामोसं चउत्थं असच्चामोसं । इच्चाइ चत्तारि भासज्जायाइं आउत्तं भासमाणे आराहए णो विराहए ।" (प्रज्ञा० भाषा पद ११)
* पर्याया गुणा धर्मा विशेषा इत्यनर्थान्तरम् । औदयिकक्षायोपशमिक-क्षायिकौपशमिका जीवपर्यायाः । औदयिकभावः पुद्गलवृत्तिः । पन्नवणा ५ पदे ।

पत्र-४

* "जीवे णं भंते! इंदिआइं पडुच्च [किं पोग्गली] पोग्गले ? गो०! जीवे

पोग्गली वि पोग्गले वि । नेरइए पोग्गली वि पोग्गले वि । सिद्धे णो पोग्गली त्ति ।" (भग० श० ८ उ० १०) वृत्तिः – "पुद्गलाः श्रोत्रादिरूपा विद्यन्ते यस्याऽसौ पुद्गली । पुग्गल त्ति पुद्गल इति संज्ञा जीवस्य ततस्तद्योगात् पुद्गल इति ॥"

* चरमाः चरमभववन्तो भव्यविशेषा ये सेत्स्यन्ति ते चरमा तद्विपरीता अचरमा अभव्याः सिद्धाश्च । कायस्थितिसूत्रे चरमोऽनादिसपर्यवसितः । अचरमो द्विधा - अना०....

—x—

श्रीपार्श्वनाथसमसंस्कृतस्तवः

– सं. मुनि धर्मकीर्तिविजय गणि

आ पदना रचयिता खरतरगच्छपति **श्रीजिनचन्द्रसूरि**जीना शिष्य **श्रीसमयराजमुनि** छे. आ स्तवननी प्रत सं. १६३५मां लखायेली होवाने लीधे तेनी रचना सं. १६३५नी सालमां अथवा ते पूर्वे थई हशे.

झुलणा छन्दमां के प्रभातियाना ढाळमां रचायेली आ गेय कृतिमां जुदां जुदां विशेषणो द्वारा पार्श्वनाथप्रभुना गुणोनुं वर्णन करवामां आवेल छे. छेल्ली गाथा 'हरिगीत'मां छे. सत्तरमा शतकमां ज लखायेली ४ पानानी प्रतमां चोथा पत्रमां आ रचना लखायेली छे. आ प्रतनी जेरोक्स नकल पू. मुनि श्रीधुरन्धरविजयजी म. तरफथी प्राप्त थई छे.

*

विमलकुलकमलरविकिरणनरपुंगवं
देवदेवं सुसेवामि वामाभवं ।
नीरकणहीरहरहारमहिमारवं
मलयमंदरमहासारधीरं नवं ॥१॥

भिन्नसंसारसंसरणबहुकारणं
छिन्नछलबंधभवभोगजलतारणं ।
भीमभयभूमिरुहमत्तवरवारणं
कलहकलिकालभावारिगणवारणं ॥२॥

कमलकोमलमहाकायगुणपरिमलं
मोहहरमिंदुदलभालनिस्समबलं ।
मंगमंगलमहावल्लिसुंदरजलं
मूलमायारसादारदारुणहलं ॥३॥

सिद्धिरमणीवरं सिद्धनरकुंजरं
नीरमणरोगसंभोगगुणसुंदरं ।
जीवसंदेहसंदोहदवसंवरं
नंदिकरनीलमणितालदलसंचरं ॥४॥

चारुवंदारुवासवसुरासुरनरं
गरिमगंभीरसागरनिरामयगरं ।
मारिघोरारिचोरावलीभयहरं
नीरमणिरंगबहुभंगमायावरं ॥५॥
भंदवरवारिरुहखरकिरणबंधुरं
रागहिंसामहातरुतरुणसिंधुरं ।
कुनयकरिकेसरिणमिंदिरामंदिरं
बुद्धिसुसमिद्धमंचामि दमिचंदिरं ॥६॥
इति भावसुंदर नतपुरंदर! पार्श्वजिन! तव वर्णना
समसंस्कृताचलवचनरचनैर्व्यरचि रुचिराकर्णना ।
गणधारिश्री**जिनचंद्र**सूरीश्वरपदाम्बुजसेविना
मुनिसमयराजविनेयकेनाऽऽनन्ददा बहुभाविना ॥९॥

इति श्रीपार्श्वनाथसमसंस्कृतस्तवः समाप्तः ॥

संवत् १६३५ वर्षे अश्वयुग्मासे विजयदशम्यामलेखि पं० नयकमलगणि-वाचनार्थम् ॥श्रीः॥

—x—

शिवमण्डनगणिविरचितम्

वागडपद्रपुरमण्डन-आदिनाथस्तवनम्

– सं. अमृत पटेल

[नोंध : श्रीसोमसुन्दरसूरिजीना प्रशिष्य रत्नशेखरसूरिना शिष्य शिवमण्डनगणि द्वारा आ २४ पद्यनुं वागडपद्रपुरमां बिराजमान श्रीआदिनाथ प्रभुनुं स्तवन रचायुं छे. कर्ताअे अन्ते करेला उल्लेखना आधारे तेमने पोताना गुरुभगवन्त तथा लक्ष्मीसागरसूरि-सोमदेवसूरिजी पर ऊंडो आदरभाव हशे ते देखाई आवे छे. ते सिवाय कर्ता अंगे कोई विशेष हकीकत उपलब्ध थती नथी. 'वागडपद्रपुर' अे पाटण पासे आवेलुं 'वागडोद' होई शके ? त्यां गोपाल सङ्घपतिअे पोताना छ भाईओ साथे आदीश्वरनी प्रतिमा पधरावी हती तेवी श्लोक १३मां नोंध छे.

कृतिनां प्रथम २३ पद्यो भुजङ्गप्रयातवृत्तमां अने अन्तिम श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्दमां छे. कृतिना प्रत्येक पद्यमां कर्तानी विद्वत्ता, कवित्वशक्ति अने भगवद्भक्ति झळके छे. प्रासानुप्रासने लीधे काव्य रमणीय बन्युं छे.

लालभाई दलपतभाई ज्ञानमन्दिरना हस्तप्रतसङ्ग्रहगत ला.द.भे.सू. ३२८४ क्रमाङ्कनी सं. १५२०मां प्रायः कर्ताना शिष्यना हाथे लखायेली २ पानानी प्रतना आधारे कृतिनुं सम्पादन थयुं छे.

प्रस्तुत कृतिनी पं. श्रीअमृत पटेले स्वहस्ते लखेली प्रतिलिपिना आधारे यथामति संशोधनपूर्वक अत्रे आ कृति प्रकाशित थई छे. मूळ प्रत मळे तो हजु वधारे शुद्धीकरणने अवकाश छे. –त्रै.]

*

जयश्रीनिवासैकगेहं स्तुवेऽहं,
जगत्पूरितेहं सुवर्णाभदेहम् ।
युगादीशदेवं श्रियां वासुदेवं
सुपर्वात्तसेवं स्मरे वामदेवम् ॥१॥
गुणाम्भोनिधे! वक्तुमीशो गुणानां,
सुधीः कः कलौ सम्भवेत् तावकानाम् ।

तथाऽप्यद्भुतस्वीयभक्तिप्रयुक्तः,
स्तुवे त्वां विभो! मुग्धभावाभियुक्तः ॥२॥
भवाब्धि तरीतुं तरीशल्प(?)कल्पां,
तवाऽऽज्ञां बरीभर्त्ति यो निर्विकल्पाम् ।
वरीवर्त्ति तं स्वीकृतेवाऽत्र लक्ष्मीः,
सरीसर्त्ति तस्य स्फुटं कीर्त्तिलक्ष्मीः ॥३॥
महामोहयोगेन पूर्वं गरिष्ठं,
न लब्धं क्रमाब्जं विभो! ते वरिष्ठम् ।
अतः क्रोध-कन्दर्प-लोभादियोधाः,
प्रभो! ही निमज्जन्ति मां ध्वस्तरोधाः ॥४॥
स्फुरद्भक्तिरागेन यस्तोष्टुवीति,
तथा कोऽपि कोपात् पराबोभवीति ।
इयं ते नुतिस्तत्र चेतःप्रवृत्तिः,
समाशोभते पापपङ्क्तेर्निवृत्तिः ॥५॥
भृशं सेविता मुक्तये जीवलोके,
हराद्याः समर्था मया नाऽवलोके(?) ।
अलं याचिता देवरत्नस्य बुद्ध्या,
सुखं दातुमेते स्तवः किं त्रिशुद्ध्या(?) ॥६॥
स्मृतिर्यस्य जन्मौघकोट्यर्जितानि,
छिनत्ति क्षणादप्यहोऽघानि तानि ।
विभो नाऽर्चि नाऽनावि नाऽध्यायि स त्वं,
मुधा हारितं तेन ही मानुषत्वम् ॥७॥
युगादौ युगादीश! सन्मार्गरीति-
स्त्वया स्थापिता लुम्पिता कर्मभीतिः ।
अतस्त्वां प्रभुं देवदेवेशभावं,
प्रपन्नोऽस्म्हं त्यक्तरागादिभावम् ॥८॥
प्रगे यश्चरीकर्त्ति तेऽर्चां विशुद्धां,
जरीहर्त्यसौ कश्मलालीमशुद्धाम् ।

त्वदग्रे नरीनर्त्ति देव! स्वभक्त्या,
वरीवर्त्ति सौख्येन्दिरा तं स्वशक्त्या ॥९॥
न याचे विना त्वां स्फुरद्देवतर्द्धिं,
तथा स्वर्णरूप्यादिनिश्शेषसिद्धिम् ।
परं प्रार्थयेऽहं प्रभो! बोधिलाभं,
शिवश्रीपरीरम्भसँल्लग्नकामम् ॥१०॥
विभो! दुःख-दौर्गत्य-दौर्भाग्यहर्त्ता,
ध्रुवं जीवलोके मनोऽभीष्टकर्ता ।
तथा स्पष्टदुष्टाष्टकर्मौघभेत्ता,
जय त्वं युगादिवि(प्र)भो! विश्ववेत्ता ॥११॥
मया त्वत् परः प्रापि नो कः कृपालुः,
प्रभो! त्वं नुतो नाऽस्म्यतः संशयालुः ।
अशंसीतिभावे भवेत् स्वामिभक्ति-
स्ततो मुक्तिसार्द्धं न मे का विभक्तिः? ॥१२॥
कथा श्रीमतां स्वप्रशंसानिवासः,
स **गोपालसङ्घाधिपः** श्रीविलासः ।
सषट्बन्धुनाऽस्थापि येनाऽ**ऽदिमूर्त्ति**-
र्न किन्तु स्फुरन्मूर्त्तिमत्सौवकीर्त्तिः ॥१३॥
सुधानिर्मितेवाऽस्ति मूर्त्तिस्त्वदीया,
प्रभो! मन्यते शुद्धबुद्धिर्मदीया ।
न चेज्जन्मकोट्यर्जितः पापतापः,
कथं क्षीयते दर्शनात् सप्रतापः ॥१४॥
निवासं हृदि त्वं यदा मे विधास्ये (विधत्से?),
तदाऽहं प्रभो! निर्मलत्वं प्रयास्ये ।
कथं जीवलोके स्थिरं स्थातुमीष्टे,
तमश्चक्रवालं सहस्रांशुदृष्टे ॥१५॥
सदा धीवरैः सेवितत्वात् समुद्र-
स्त्वमेवाऽस्यहो मौक्तिकश्रीद्धभद्रः ।

अपापः* परं वर्त्तसे कौतुकं तत्,
ततोऽप्याश्रितस्तार्यते चित्रमेतत् ॥१६॥
मदक्रोधकन्दर्परोगाद्यनर्था-
स्त्रिलोकीतले वैरिणो ये समर्थाः ।
तव ध्यानमात्रेण ते यान्ति नाशं,
मृगाः सिंहनादाद् यथा निःप्रकाशम् ॥१७॥
मयाऽद्य प्रभो! चिन्तितार्थप्रदायी,
समासादि चिन्तामणिः सातिशायी ।
अतः संश्रयन्ते विभो! मे समग्राः,
पराः सम्पदः सर्वभावादुदग्राः ॥१८॥
पदाम्भोरुहे संश्रिते संसृतौ ते,
निमज्जन्ति किं भव्यमर्त्त्याः समे ते ।
महासागरे यानपात्रोपयुक्ताः,
कथं पोतवाहाः पतन्त्यर्थयुक्ताः ॥१९॥
स्वभक्त्या प्रभुं त्वां बुधा ये स्तुवन्ते,
दुरापं शिवश्रीसुखं ते लभन्ते ।
न किं प्रार्थितः पारिजातोऽर्थिजातं,
कृतार्थं विधत्ते कदा निःस्वतार्त्तम् ॥२०॥
जगत्यां जगत्सृष्टितो विश्वकर्त्ता,
तथाऽजत्त्व(जोऽस्य)तस्त्वं प्रभो लक्ष्मिभर्त्ता ।
विभो! शङ्करः संस्कृतेर्विद्यसे त्वं,
समग्रार्थसार्थोक्तितः सर्ववित् त्वम् ॥२१॥
मम त्वं गुरुस्त्वं सुहृत् त्वं च माता,
मतिस्त्वं गतिस्त्वं धृतिस्त्वं च नेता ।
यशस्त्वं रतिस्त्वं धनं त्वं जनेता,
प्रपन्नोऽस्म्यहं त्वामतो मुग्धचेताः ॥२२॥

---

* अपगता आपो यस्मात् स अपापः, समुद्रोऽप्यपाप इति विरोधः, अ-पाप इति तत्समाधानम् । - सं०

सृतं मे धनैर्भूरिभिः कीर्त्तिवृद्ध्या,

सुतस्त्र्यादिभावैस्तथा राज्यऋध्या ।

परं तिष्ठतु स्वामिभावेन मे त्वं,

हृदि प्रार्थये त्वामिदं नाथ! तत्त्वम् ॥२३॥

स्तुत्वैवं गुरु**रत्नशेखर**विभाविद्योतिताङ्घ्रद्युते!,

लक्ष्मीसागर-सोमदेवजगतीसम्बोधक्षित्युद्युते! ।

श्रीमद्**वागडपद्र**भूमिरमणीभालस्थलीभूषण!,

त्वां याचे **शिवमण्डना**ऽख्यपदवीं श्रीआदिनाथप्रभो! ॥२४॥

—x—

मानाङ्कनृपतिविरचितं पूर्णतल्लगच्छीय-श्रीशान्तिसूरिकृतटीकोपेतं वृन्दावनकाव्यम्

– सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

संस्कृत काव्यसाहित्यनो अेक प्रकार 'खण्डकाव्य' छे. खण्डकाव्यमां महाकाव्यनी जेम व्यक्तिना समग्र जीवनकाळनुं के लांबा समय सुधी चालती घटनानुं वर्णन होतुं नथी. तेमां तो फक्त एकाद नानकडा प्रसङ्गनुं के वस्तुनुं बयान ज होय छे. तेथी ते काव्यनो एक टुकडो ज गणाय छे. खण्डकाव्यनुं लक्षण पण्डित विश्वनाथ आवुं जणावे छे : "खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैक-देशानुसारि यत्" (साहित्यदर्पण - ६.३०९) अर्थात् खण्डकाव्यमां महाकाव्यना एकदेश-एकाद घटना के वस्तुनुं ज विशेष वर्णन होय छे.

प्रस्तुत वृन्दावनकाव्य पण एक खण्डकाव्य ज गणाय छे. जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास - खण्ड २, प्रकरण ३५मां (ले. - हीरालाल र. कापडिया, प्र. - मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, १९६८) जणाव्या मुजब जे ८ अजैन खण्डकाव्यो पर जैन मुनिओअे टीकाओ रची छे, तेमां आनो समावेश थाय छे.

कुल ५२ श्लोको धरावता आ काव्यनुं विषयवस्तु आ प्रमाणे छे : श्लोक १-३. विष्णुस्तुति ४-६. बलदेवस्तुति ७-११. कविना पिता उग्रसेन राजानुं गुणवर्णन १२. काव्यनो उपन्यास १३-१४. कृष्ण-बलदेवनुं वृन्दावनगमन १५-२८. वर्षावर्णन २९-३३ कृष्णशोभावर्णन ३४-३६. बलदेवशोभावर्णन ३७-५१. बलदेवे कृष्णने उद्देशीने करेलुं उद्बोधन ५२. उपसंहार.

आ समग्र काव्य यमकमय छे. श्लोक १-३१, ३४-३७, ४०-५२ मां प्रथम अने द्वितीय चरणना तेमज तृतीय अने चतुर्थ चरणना अन्तिम ४-५ वर्ण सरखा छे, ज्यारे श्लोक ३२-३३, ३८-३९ अन्य प्रकारनो यमक धरावे छे.

समग्र काव्य अवलोकतां कर्ताना वैदुष्य, शब्दशास्त्र पर प्रभुत्व, कल्पनाशक्ति व. प्रत्ये अहोभाव जन्मे तेम छे.

काव्यना कर्ता उग्रसेननृपतिना पुत्र छे. तेमनुं मूळ नाम तो अज्ञात छे, पण

साहित्यक्षेत्रे तेओ '**मानाङ्क**' नामथी ओळखाय छे. '**मेघाभ्युदय**' नामनुं यमकमय खण्डकाव्य पण तेमनी ज रचना गणाय छे. गीतगोविन्दकाव्य पर तेओअे टिप्पण पण लख्युं छे. (Jayadeva's Gitagovinda with king Mananka's commentary प्र. - ला.द. विद्यामन्दिर, १९६५). मालतीमाधव पर तेमणे टीका रची होवानुं पण मनाय छे. ई.स. नी १२मीथी १४मी सदी वच्चे तेमनो सत्ताकाळ गणाय छे. पण टीकाकार शान्तिसूरिनो सत्तासमय ई.स.नी ११मी सदी ध्यानमां लेतां मानाङ्कनो सत्तासमय ते पूर्वे होवो जोईअे.

वृन्दावनकाव्य पर अन्य टिप्पणो लखायां हशे अने प्रसिद्ध पण थयां हशे, ते विशे झाझो ख्याल नथी. पण जैनमुनिओअे रचेलां त्रण विवरणो विशे जै.सं.सा.इ.-प्रकरण ३५मां उल्लेख छे. १. पूर्णतल्लगच्छीय वर्धमानसूरिशिष्य शान्तिसूरि विरचित २. वृद्धगच्छना रत्नप्रभसूरिना शिष्य लक्ष्मीनिवासे वि.सं. १४९६मां रचेली मुग्धावबोध टीका ३. जिनरत्नकोश - विभाग १, पृ. ३६५मां उल्लिखित रामर्षिनी वृत्ति. आ त्रणे टीका अद्यावधि अप्रकाशित होवानुं जाणवामां छे. तेमांथी श्रीशान्तिसूरिविरचित टीका अत्रे प्रकाशित थई रही छे.

प्रखर नैयायिक, दार्शनिक अने न्यायावतारवार्तिकवृत्तिना कर्ता तेमज महाकवि धनपालनी तिलकमञ्जरी पर टिप्पण लखनारा शान्तिसूरि ज आ काव्य पर टीका रचनार शान्तिसूरि छे. तेमणे वृन्दावनकाव्यनी वृत्तिना प्रारम्भमां ज मन्दबुद्धि जीवोना बोध माटे वृन्दावन वगेरे पांच यमकमय दुर्गम काव्यो पर टीका रचवानी प्रतिज्ञा करी छे. आ पांच काव्योनां नाम त्यां जणावायां नथी. पं. लालचन्द्र भगवानदास गान्धीए 'जेसलमेरभाण्डागारीयग्रन्थानां सूची'मां आ काव्योनां नाम **वृन्दावन, घटखर्पर, मेघाभ्युदय, शिवभद्र** अने **चन्द्रदूत** जणाव्यां छे. ज्यारे प्रो.हीरालाल कापडियाअे जै.सं.सा.इ.मां चन्द्रदूतनी जग्याए **राक्षसकाव्य** गणाव्युं छे. वास्तवमां शान्तिसूरिजी महाराजने वृन्दावनादि ५मां 'चन्द्रदूत' अभिप्रेत हशे के 'राक्षस' ते आपणे नथी जाणता. पण तेमणे उपरोक्त छअे खण्डकाव्यो पर टीका रची छे ते हकीकत छे. जै.सं.सा.इ.मां जम्बूनाग कविना २३ श्लोकप्रमाण 'चन्द्रदूत' नामना यमकमय खण्डकाव्यनो परिचय नथी अपायो, तेथी त्यां ५ ज काव्योनो उल्लेख मळे छे.

आ शान्तिसूरि न्यायावतारवार्त्तिककार शान्तिसूरिथी अभिन्न छे अने तेमनो सत्तासमय वि.सं. १०५०-११७५ वच्चे छे अे वात पं. श्रीदलसुख मालवणियाअे न्यायावतारवार्तिकवृत्तिनी प्रस्तावनामां (प्र. सरस्वती पुस्तक भण्डार, अमदावाद, २००२) प्रमाणभूत रीते साबित करी आपी छे.

वृन्दावनकाव्यनी श्रीशान्तिसूरिविरचित वृत्तिनी वि.सं. १५१६मां लखायेली अेक हस्तप्रतनो उल्लेख जै.सं.सा.इ. - भाग-२, प्रकरण ३५मां छे. पण ते प्रत उपलब्ध न थतां, हंसविजयजी जैन शास्त्रसंग्रह-वडोदरा, डा.१, प्र.नं. १०, पृ. ८ - ए हस्तप्रत परथी प्रस्तुत सम्पादन करवामां आव्युं छे. प्रत अनुमानतः २०मा सैकामां लखायेली छे. प्रतमां अशुद्धिओ घणी छे, पण अर्थसङ्गतिने आधारे यथामति शुद्ध करीने अत्रे सम्पादन कर्युं छे. ज्यां सहेज पण संशय लाग्यो त्यां ज कौंसमां शुद्ध पाठ सूचव्या छे, ते सिवाय सीधा मूळ वाचनामां ज सुधारा कर्या छे.

कैलाससागरसूरि-ज्ञानमन्दिर-कोबामां तपास करतां श्रीशान्तिसूरिरचित ६ काव्योनी टीकामांथी वृन्दावनकाव्य सिवायनी टीकाओ प्रगट जणाई छे.

संस्कृतसाहित्यरसिकोने आ काव्य अने तेनी सुगम टीका आह्लाद आपशे तेवी खातरी सह...

*

वृन्दावनकाव्यम् - सटीकम्

वर्धमानं सुधामानं देवेन्द्रैः कृतसत्क्रियम् ।
वर्धमानं महामानं नत्वा देशितसत्क्रियम् ॥१॥

वृन्दावनादिकाव्यानां यमकैरतिदुर्विदाम् ।
वक्ष्ये मन्दप्रबोधाय पञ्चानां वृत्तिमुत्तमाम् ॥२॥

आदौ तावत् काव्यकरणे प्रवर्तमान **उग्रसेनतनयो मानाङ्को** मङ्गल-प्रतिपादनाय शिष्टसमाचारपरिपालनार्थं चेष्टदेवतायै विष्णवे नमस्कारमाह -

वरदाय नमो हरये पतति जनो यं स्मरन्नपि न मोहरये ।
बहुशश्चक्रन्द हता मनसि दितिर्येन दैत्यचक्रं दहता ॥१॥

तस्मै **हरये**- विष्णवे **नमो**ऽस्तु- नमस्कारो भवतु । कीदृशाय ? **वरदाय** । वरं- वाञ्छितार्थं सेवकाय ददातीति वरदस्तस्मै । **यं** हरिं **जनो**-लोको **न पतति**- न गच्छति । क्व ? **मोहरये** । अज्ञानवेगे मूढो न भवती-त्यर्थः । किं कुर्वन् ? **स्मरन्नपि**- ध्यायन्नपि, तिष्ठतु पूजादिकम् ।

येन हरिणा **हता**- दुःखिता सती **मनसि**- चित्ते **चक्रन्द**-आक्रन्दितवती । **कथम्** ? **बहुशो**ऽतिशयेन । **दितिर्दा**नवमाता । किं कुर्वता ? **दहता**- भस्मसात्

कुर्वता । किं तत् ? **दैत्यचक्रं**- दैत्यवृन्दम् । अवश्यमेव हि पुत्रविनाशे मातुर्दुःखाद् रोदनं भवतीति ॥१॥

स्वमिव भुजङ्गवि शेषं व्युपधाय स्वपिति यो भुजङ्गविशेषम् ।
नवपल्लवसमकरया श्रियोर्मिपङ्क्त्या च सेवितः समकरया ॥२॥

तथा **यो** हरिः **स्वपिति**- शेते । क्व ? **गवि**- समुद्रजले । किं कृत्वा ? **व्युपधाय**- गण्डोपधानीकृत्य । कम् ? **भुजङ्गविशेषं**- सर्पराजम् । किंनामानम् ? **शेषं**- शेषाभिधानम् । कमिव ? **भुजमिव**- बाहुमिव । स्थूलत्वाद् दीर्घत्वाच्च । किम्भूतम् ? **स्वमात्मीयम्** । कथम्भूतो हरिः ? **सेवित**- आश्रितः । कया ? **श्रिया**- लक्ष्म्या । कीदृश्या ? **नवपल्लवसमकरया** । नवपल्लवैः समौ करौ यस्याः सा नवपल्लवसमकरा, तया । रक्तत्वेन कोमलत्वेन च नूतनकिसलयतुल्यहस्तया । न केवलं श्रिया सेवितः, **ऊर्मिपङ्क्त्या च**- कल्लोलमालया च । कीदृश्या ? **समकरया** । सह मकरैर्जलचरजन्तुविशेषैर्वर्तते या सा समकरा, तया समकरया ॥२॥

येन च बलिरसुरोऽधः क्षितेरवस्थापितः सुरैरसुरोधः ।
पृथुकः सन्निभवदनः चिक्षेप च यः सरोजसन्निभवदनः ॥३॥

तथा **येन च** हरिणा **क्षितेर्भूमेरधोऽ**धस्ताद**वस्थापितो**- निहितः । कोऽसौ ? **असुरो**- दानवः । किंनामा ? **बलिः** । कीदृशः ? **सुरैर्देवैः** शक्रादिभि**रसुरोधो** न सुखेन रुध्यते- ध्रियते निवार्यते वाऽतिबलत्वादित्यसुरोधः ।

तथा **यो हरिश्चिक्षेप च**- प्रेरितवान् । किं तत् ? **अनः**- शकटम् । क इव ? **इभवत्**- करीव । यथा करी शकटं क्षिपति, तथा शकटरूपमसुरं क्षिप्तवानित्यर्थः । किम्भूतः सन् ? **पृथुको**- बालः **सन्** । तथा **सरोजसन्निभवदनः**- पद्मतुल्यमुखः ।

चकारः सर्वत्र समुच्चये । श्लोकत्रयेणाऽऽदिकुलकम् ॥३॥

साम्प्रतं हरिभ्रातृत्वेन पूज्यत्वादत्र काव्ये वर्णनीयत्वाच्च बलभद्रस्य स्तुतिमाह -

स्तौमि च लाङ्गलवन्तं देवं यः संयुगे चलाङ्गलवं तम् ।
कपिमकरोदसुरहितं द्विविदं दृढमुष्टिताडनादसुरहितम् ॥४॥

तं देवं- सुरं **स्तौमि**- वन्दे । किमभिधानम् ? **लाङ्गलवन्तम्** । लाङ्गलं- हलं विद्यते यस्याऽसौ लाङ्गलवान्, तं बलभद्रम् । **यो हली संयुगे**- सङ्ग्रामे**ऽकरोत्**- चकार । कम् ? **कपिं**- वानररूपं दानवम् । किमभिधानम् ? **द्विविदं**- द्विविदनामानम् । कथम्भूतमकरोत् ? **असुरहितम्** । असुभिः- प्राणै रहितं- त्यक्तं, निर्जीवमित्यर्थः । कीदृशम् ? **असुरहितम्** । असुरेभ्यो - दानवेभ्यो हितोऽनुकूलोऽसुरहितस्तम् । तथा **चलाङ्गलवम्** । चलाश्चञ्चलाः सव्यापारा युद्धक्षमा वा अङ्गलवा- हस्तपादादयो यस्य स चलाङ्गलवस्तम् । कस्मादसुरहितमकरोत् ? **दृढमुष्टिताडनाद्**- निबिडमुष्टिप्रहाराद् हेतोः ॥४॥

आपानपरम्परया भेजे यं रेवती जितपरं परया ।
बिभ्रतमालानाभौ बाहू मग्नकुसुमाश्च माला नाभौ ॥५॥

तथा **यं** बलभद्रं **रेवती** बलभद्रभार्या **भेजे**- सिषेवे । कया ? **आपानपरम्परया**- मधुपानसन्तत्या । कीदृश्या ? **परया**- उत्कृष्टया । कीदृशं बलम् ? **जितपरम्** । जिता- अभिभूताः परे- शत्रवो महाबलत्वाद् येन स यथोक्तस्तम् । किं कुर्वन्तम् ? **बिभ्रतं**- धारयन्तम् । कौ ? **बाहू**- भुजौ । कीदृशौ ? **आलानाभौ** । आलानस्येवाऽऽभा- छाया-शोभा ययोस्तौ तथोक्तौ । हस्तिबन्धनस्तम्भतुल्यौ प्रलम्बत्वात् स्थूलत्वाच्च । तथा **मालाश्च**- स्रजश्च बिभ्रन्तम् । कीदृशीः ? **मग्नकुसुमाः**- प्रविष्टपुष्पाः । क्व? **नाभौ** ॥५॥

यो रूढमदारुणया तन्वा प्रणतं प्रति द्विषमदारुणया ।
कर्षितदानवकुलया विबभौ गन्धविजितेभदानबकुलया ॥६॥

यश्च बलो **विबभौ**- विशेषेण शुशुभे । कया ? **तन्वा**- शरीरेण । कीदृश्या ? **रूढमदारुणया** । रूढमदेन- पुरातनमद्येनाऽऽरुणा- रक्ता निरन्तरं पानात् सा तथोक्ता तया । तथा**ऽदारुणया**- अरौद्रया । कं प्रति ? **द्विषं प्रति**- शत्रुं लक्ष्यीकृत्य । कीदृशम् ? **प्रणतं** - प्रणामपरम् । तथा **कर्षितदानवकुलया** । कर्षितं- विनाशितं दानवकुलमसुरवृन्दं यया सा तथोक्ता तया । तथा **गन्धविजितेभदानबकुलया** । इभदानं च करिमदो बकुलानि च बकुलपुष्पाणि । गन्धेन- आमोदेन विजितान्यभिभूतानि इभदानबकुलानि यया सा तथोक्ता तया । मदगन्धवासितत्वात् स्वभावसुगन्धित्वाच्च ॥६॥

अधुना पितृभक्त्या स्वकीयपितृगुणवर्णनमाह -

ग्रहपतिरिव हिमहीनः कान्त्याऽभूदुग्रसेन इति हि महीनः ।
प्रकृतिभिररिहेतीह स्वयंवृतः संहताभिररिहेतीहः ॥७॥

इह- जगति **महीनो**- राजाऽ**भूद्**- बभूव । किंनामा ? **उग्रसेन** इत्युग्रसेनाभिधानो **हिर्व्यक्तम्** । कीदृश इव ? **ग्रहपतिरिव**- चन्द्रतुल्यः । कया ? **कान्त्या**- कान्तत्वेन । कीदृशो ग्रहपतिः ? **हिमहीनः**- तुषाररहितः ।

कथम्भूत उग्रसेनः ? [इह] **स्वयंवृत**- आत्मनैव परिवारितो बहुगुणत्वात् । काभिः ? **प्रकृतिभि**रमात्यादिभिः । कीदृशीभिः ? **संहताभिः**- परस्परसम्बद्धाभिः । कुतः स्वयंवृतः ? **अरिहेति** । अरीन्- शत्रून् हन्तीत्यरिहेति हेतोः । तथा **अरिहेतीहः** । अरानि(णि) विद्यन्तेऽस्याऽरि- चक्रं, तद् हेति- प्रहरणं यस्य सोऽरिहेतिर्हरिस्तस्यैवेहा- चेष्टा यस्य स तथोक्तो विष्णुसमव्यापार इत्यर्थः । यद्वाऽरीणि च तानि हेतयश्च अरिहेतयस्तैरीहते- चेष्टते इति अरिहेतीहश्चक्र-प्रहरणव्यापारः ॥७॥

बलभिदरीभागानां जेता विन्ध्यर्क्षवद्दरीभागानाम् ।
शौक्ल्यादाशार्हस्य प्रभवो यशसः समश्च दाशार्हस्य ॥८॥

कीदृशो यो ? **बलभिद्** । बलं- सामर्थ्यं भिनत्ति- विदारयतीति बलभित्- शक्तिनाशकः । केषाम् ? **अरीभागानाम्** । अरीभाः- शत्रुगजास्त एवाऽगाः- पर्वता महत्त्वाद् दुर्जेयत्वाच्चाऽरीभागास्तेषाम् । तथा **जेता**- पराभविता । केषाम् ? **विन्ध्यर्क्षवद्दरीभागानाम्** । विन्ध्यश्च ऋक्षवांश्च विन्ध्यर्क्षवन्तौ गिरिविशेषौ । तयोर्दरीभागाः- कन्दरप्रदेशा विषमत्वाद् दुर्जेयास्तेषां तत्रस्थारिलोकानाम् ।

तथा **प्रभवो**- जनकः । कस्य ? **यशसः**- कीर्तेः । कीदृशस्य ? **आशार्हस्य** । आशा- दिशोऽर्हति- पूजयति मण्डयति वाऽऽशार्हः तस्य । कुतः ? **शौक्ल्यात्**- शुभ्रत्वात् ।

तथा **समश्च**- तुल्यश्च । कस्य ? **दाशार्हस्य**- विष्णोः ॥८॥

यो भोक्तेव सुधाया वर्णकविः शासिता च यो वसुधायाः ।
यस्य परामुदधीनां तटेषु कीर्तिं प्रचक्षते मुदधीनाम् ॥९॥

यश्चोग्रसेनः **शासिता**- रक्षकः । कस्या? **वसुधायाः**- पृथिव्याः । क

इव ? **भोक्तेव** । कस्याः ? **सुधायाः** । अमृतस्य देव इत्यर्थः ।

तथा **वर्णकवि**रचुन्दिता(निन्दिता?)र्थकर्ता **यस्य चोग्रसेनस्य कीर्ति**-यशः **प्रचक्षते** । कीर्तिवादनंवा(कीर्तिर्वा दानम्?) । कीदृशीम् ? **परां**-प्रकृष्टाम्। केषु ? **तटेषु**- रोधःसु । केषाम् ? **उदधीनां**- समुद्राणाम् । किम्भूताना(ताम्) ? **मुदधीनाम्** । मुदो- हर्षस्याऽऽधीना- आयत्ता मुदधीना तां, हर्षयुक्तामित्यर्थः । समुद्रपर्यन्ता यस्य दानं कीर्तिर्वेत्यर्थः ॥९॥

भरत इव विभावसवः सर्वेषां प्राणिनामथ विभावसवः ।
यस्मिन् वसुधामवति स्थिरा बभूवुः समाश्च वसुधामवति ॥१०॥

तथा **यस्मिन्नुग्रसेने वसुधां**- पृथिवीम**वति**- रक्षति सति । कीदृशे ? **विभौ**- प्रभौ । **विभावसवो**- अग्नयः **स्थिरा**- अचला **बभूवु**र्नित्यज्वलिता इत्यर्थः । **अथा**ऽनन्तर**मसवः**- प्राणाश्च स्थिरा बभूवुः । अकाले न मृत्युरित्यर्थः । तथा **समाश्च**- वर्षाणि च स्थिरा बभूवुः- परिपूर्णाः सञ्जाताः । न दिनापातादूना इत्यर्थः । यदि वा असवः कीदृशाः ? **समाः** । सह माभिर्लक्ष्मीभिर्वर्तन्ते इति समाः । अयमर्थः- असवो लक्ष्म्यश्च स्थिरा- अचञ्चलाः सञ्जाताः । केषाम् ? **सर्वेषां प्राणिनाम्**- सकलजन्तूनाम् । यागादिधर्मकरणशीलत्वात् । कस्मिन्निव ? **भरत इव** । यथा भरतचक्रवर्तिनि प्रभावग्न्यादयः सर्वे सर्वजन्तूनां स्थिरा बभूवुरित्यर्थः । कीदृशे भरते उग्रसेने च ? **वसुधामवति** । वसूनि च रत्नानि धाम- तेजश्च वसुधामानि । तानि विद्यन्ते यस्य स तथोक्तस्तस्मिन्निति ॥१०॥

अनुकृत्य रघो राज्ञः प्रत्याख्यातासनः प्रभुरघोराज्ञः ।
योगिभिरित्यस्तमितः केशवमाप्नोमि नाथमित्यस्तमितः ॥११॥

यश्चोग्रसेनो**ऽस्तमितः**- विनष्टो मृत इत्यर्थः । कस्माद्धेतोः ? **तं केशवं नाथं**- हरिस्वामिन**माप्नोमी**ति हेतोः । यः केशव **इत्यः**- ज्ञेयः । कैः ? **योगिभि**र्ध्यानारूढैः । किम्भूतः सन्नुग्रसेन ? **इतो**- गतः, संसारादिति गम्यते। **इतो**ऽस्मात् स्थानाद् वा । कीदृशः ? **प्रत्याख्यातासनः**- त्यक्तभोजनः । **तथाऽघोराज्ञो**- अरौद्रशासनः । तथा **प्रभुः**- स्वामी । किं कृत्वाऽस्तमितः ? **अनुकृत्य**- अनुकारं कृत्वा, प्रजापालनादिभिः सदृशो भूत्वा । कस्य ? **राज्ञो**-**नृपस्य** । किंनाम्नः ? **रघोः**- दिलीपसूनोः ॥११॥

तस्येयमकार्येभ्यश्च्युतेन तनयेन रचितयमकाऽऽर्येभ्यः ।
दत्ता वाक् स्वा कृतिना मानाङ्केन हरिसंश्रया स्वाकृतिना ॥१२॥

तस्योग्रसेनस्य राज्ञस्**तनयेन**- पुत्रेण **दत्ता**- समर्पिता । काऽसौ ? **वाक्**- काव्यरूपा वाणी । किम्भूता ? **स्वा**- आत्मीया । तथे**यं** प्रत्यक्षा । तथा **हरिसंश्रया**- हरिनायकाधारा । कीदृशेन तनयेन ? **कृतिना**- पण्डितेन। तथा **मानाङ्केन**- मानचिह्नेन । तथा **स्वाकृतिना**- शोभनाकारेण । सुरूपेणेत्यर्थः । तथा **च्युतेन**- नष्टेन । केभ्यः ? **अकार्येभ्यः** । परद्रोहाद्यकार्यरहितेनेत्यर्थः । केभ्यो दत्ता ? **आर्येभ्यः**- शिष्टेभ्यः । वाक् कीदृशी ? **रचितयमका**- कृतसदृशाक्षरन्यासा ॥१२॥

अथ जग्मतुरुरु मत्तौ वयसा वृन्दावनान्तरं रुरुमत् तौ ।
हरिराहितकुमुदसितः स्निग्धतराङ्गस्तथा हली कुमुदसितः ॥१३॥

अथाऽनन्तरं **तौ**- हरिबलौ **वृन्दावनान्तरं**- वृन्दावनाभिधानवनमध्यं **जग्मतुः**- गतवन्तौ । कीदृशम् ? **उरु**- विस्तीर्णम् । तथा **रुरुमत्** । रुरवो-मृगविशेषा विद्यन्ते यस्मिन् तत् तथोक्तम् । तौ कीदृशौ **मत्तौ**- मदयुक्तौ । केन ? **वयसा**- तारुण्यावस्थया । कीदृशो हरिः ? कीदृशश्च बलः ? **हरिः**- विष्णु**राहितकुमुत्** । आहिसात्कृता कोः- पृथिव्या मुत्- हर्षो येन स तथोक्तः । तथाऽ**सितः**- कृष्णः । तथा **स्निग्धतराङ्गः** । स्निग्धतरमतिशयस्निग्धं दीप्तिमदङ्ग-शरीरं यस्य स तथोक्तः । तथा **हली**- बलः **कुमुदसितः**- कैरवशुभ्रः ॥१३॥

उदधिपयोनिर्घोषं तत्र निवेश्याऽच्युतोऽपयोनिर्घोषम् ।
अवि(व)चिन्तितकंसबलश्चचार भेजे च यामुनं कं सबलः ॥१४॥

अच्युतो- हरिश्**चचार**- बभ्राम । क्व ? **तत्र**- वृन्दावनमध्ये । न केवलं चचार, **भेजे च**- सिषेवे च । किं तत् ? **कं**- जलम् । किम्भूतम् ? **यामुनं**- कालिन्दीसत्कम् । कथम्भूतोऽच्युतः? **अवि(व)चिन्तितकंसबलः** । अवि(व)चिन्तितमगणितं कंसस्याऽसुरस्य बलं- सैन्यं सामर्थ्यं वा येन स तथोक्तः । तथा **सबलो**- बलभद्रसहितः । तथा **अपयोनिः** । अपगता योनिः- कारणं यस्य स तथोक्तः । किं कृत्वा चचार ? **निवेश्य**- स्थापयित्वा । कम् ? **घोषं**- गोकुलम् । कीदृशम् । **उदधिपयोनिर्घोषम्** । उदधिपयस इव समुद्रजलस्येव निर्घोषः- शब्दो मथ्यमानदध्यादेर्यस्मिन् तत् तथोक्तम् ॥१४॥

प्रियसुहृदामोदरयोर्ललतोरथ रौहिणेयदामोदरयोः ।
कृतपशुवृन्दावनयोर्घर्मः क्षयमाप दयितवृन्दावनयोः ॥१५॥

अथ- अनन्तरं **घर्मो**- ग्रीष्मः **क्षयं**- विनाश**माप**- लेभे । कयोः ? **रौहिणेय-दामोदरयोः**- बलभद्र-कृष्णयोः । कीदृशयोः ? **प्रियसुहृदामोदरयोः**। प्रियसुहृदां- वल्लभमित्राणामामोदं- समन्तो (समन्ततो) हर्षं रातौ दत्तस्तौ तथोक्तौ तयोः । किं कुर्वतोः ? **ललतोः**- क्रीडतोः । तथा **कृतपशुवृन्दावनयोः** । कृतं पशुवृन्दस्य- गोसङ्घातस्याऽवनं- रक्षणं यकाभ्यां तौ तथोक्तौ तयोः । तथा **दयितवृन्दावनयोः** । दयितं- प्रियं वृन्दावनं- वनविशेषो ययोस्तौ तथोक्तौ तयोः ॥१५॥

क्षोभमगादभ्राणां स्तनितैर्विद्युत्वतामगादभ्राणाम् ।
मुनिरपि नीरागमनाः सरितश्चाऽऽसन् प्रवृत्तनीरागमनाः ॥१६॥

मुनिरपि- यतिरप्यास्तां सरागमनाः । **क्षोभं**- चलन**मगात्**- जगाम । सकामो बभूवेत्यर्थः । कीदृशः ? **नीरागमनाः** । नीरागं- गतरागं मनः- चित्तं यस्य स तथोक्तः । कैः ? **स्तनितैः**- गर्जितैः । केषाम् ? **अभ्राणां**- मेघानाम् । कीदृशानाम् ? **विद्युत्वतां**- सतडिताम् । तथा **अगादभ्राणाम्**, अगा इव- गिरय इवाऽदभ्रा- महान्तोऽगादभ्रास्तेषाम् । न केवलं मुनिः क्षोभमगात्, **सरितश्च**- नद्यश्चाऽऽ**सन्**- बभूवुः । कीदृश्यः ? **प्रवृत्तनीरागमनाः**- प्रसृतजलप्रवाहाः ॥१६॥

ऐन्द्रं कं दर्पस्य प्रथमोहेतुर्बभूव कन्दर्पस्य ।
स्त्रीहृदयान्यभिनदतः स शरैः प्राप्य सुहृदो घनानभिनदतः ॥१७॥

बभूव- आसीत् । किं तत् ? **कं**- जलम् । [कीदृशम् ? **ऐन्द्रम्**- इन्द्रसम्बन्धि ।] किम्भूतम् ? **हेतुः**- कारणम् । कस्य ? **दर्पस्य**- मदस्य । कस्य ? **कन्दर्पस्य**- कामस्य । कीदृशो हेतुः ? **प्रथम**- आद्यः । **अतो**- अस्माद्धेतोः । तथाऽ**भिनदत्**- विदारितवान् । कः ? **स**- कन्दर्पः । कानि? **स्त्रीहृदयानि**- वनितानां मनांसि । **शरैः**- बाणैः । किं कृत्वा ? **प्राप्य**- आसाद्य । कान् ? **मेघान्**- घनान् । कीदृशः ? **सुहृदो**- मित्राण्युपकारित्वात् । किं कुर्वतः ? **अभिनदतो**- ध्वनतः ॥१७॥

विद्युद् गौरी हावानकृतेव घनेष्वभूच्च गौरीहावान् ।
सुलभबलाकायेषु ग्लपितचिरप्रोषिताबलाकायेषु ॥१८॥

विद्युत्- तडित् । **गौरी**- सुवर्णवर्णा । **हावान्**- मुखविकारान् विलासान् वा । **अकृतेव**- चकारेव । केषु ? **घनेषु**- मेघेषु । न केवलं विद्युद् हावान् चकार, **गौश्च** जातित्वाद् वृषभ इत्यर्थः, **ईहावान्**- चेष्टावानभूद्- बभूव। कीदृशेषु मेघेषु ? **सुलभबलाकायेषु** । सुलभः- सुप्रापो बलाकानां- पक्षिविशेषाणा**माय**- आगमो लाभो वा येषु ते तथोक्तास्तेषु । तथा **ग्लपित-चिरप्रोषितबलाकायेषु** । ग्लपिताः- खेदिताश्चिरं प्रोषिताबलानां- गतभर्तृस्त्रीणां कायाः- शरीराणि यैस्ते तथोक्तास्तेषु ॥१८॥

जात्या सज्जालकया यूथिकया चाऽऽप्तयुवतिसज्जालकया ।
कमलानि ससर्जाऽऽभ्यां भ्रमरः कृष्टो बलादिति ससर्जाभ्याम् ॥१९॥

भ्रमरः- अलिः **ससर्ज**- त्यक्तवान् । कानि ? **कमलानि**- पद्मानि । किम्भूतः ? **कृष्ट**- आकृष्टः सन् । कथम् ? **बलाद्**- वेगात् । काभ्याम् ? **आभ्यां**- जातियूथिकाभ्याम् । कीदृशीभ्याम् ? **ससर्जाभ्यां**- सर्जवृक्षसहिताभ्याम् । कस्मादिति हेतोः । यतो **जात्या**, कीदृश्या ? **सज्जालकया** । सन्ति- शोभनानि जालकानि- गुच्छानि यस्याः सा तथोक्ता [तया] । तथा **यूथिकया च** कीदृश्या ? **आप्तयुवतिसज्जालकया** । आप्ताः- प्राप्ता युवतीनां- स्त्रीणां सज्जाः- प्रगुणा अलकाः- कुटिलकेशा यया सा तथोक्ता तया ॥१९॥

व्याप्य दिशो दश निभृतः क्षणमपि तस्थौ न शासनादशनिभृतः ।
संशमितागबलस्य ध्वनन् घनौघः समप्रभो गवलस्य ॥२०॥

क्षणमपि- स्तोककालमपि **घनौघो**- मेघसङ्घातो **न तस्थौ**- न स्थितः । किं कुर्वन् ? **ध्वनन्**- गर्जन् । किम्भूतो न तस्थौ ? **निभृतो**- निःशब्दः । कस्मात् ? **शासनात्**- आदेशात् । कस्य ? **अशनिभृतः**- इन्द्रस्य । किं कृत्वा ? **ध्वनन् व्याप्य**- आच्छाद्य । का? **दिशः**- ककुभः । कियतीः ? **दश** । यद्वा **निभृतो**- नितरां जलपूर्णः । कीदृशोऽशनिभृतः ? **संशमितागबलस्य** । सम्यक् शमितम्- अपनीतमगानां- गिरीणां बलं- सामर्थ्यं पक्षच्छेदाद् येन स तथोक्तस्तस्य । कीदृशो घनौघः ? **समप्रभः**- तुल्यवर्णः । कस्य ? **गवलस्य**- महिषशृङ्गस्य, कृष्ण इत्यर्थः ॥२०॥

भ्रमरी दश कदम्बरजस्त्वमितीव वदन(न्) स्वनादशकदम्बरजः ।
हन्तुं विभ्रमरहितां नलिनीं पथिकाङ्गनां च विभ्रमरहिताम् ॥२१॥

अम्बरजो- मेघोऽ**शकत्**- समर्थोऽभूत् । किं कर्तुम् ? **हन्तुं** विनाशयितुम्। काम् ? **नलिनीं**- पद्मिनीम् । कीदृशीम् ? **विभ्रमरहिताम्** । वयश्च पक्षिणो हंसादयो भ्रमराश्च भृङ्गास्तेभ्यो हितामनुकूलां, छायामधुदानादिना। तथा **पथिकाङ्गनां** च- गतभर्तृकां च, हन्तुमशक्यत्वात् । कीदृशीम् ? **विभ्रमरहितां**- विलासहीनाम् । किं कुर्वन्निव ? **धुव(वद)न्निव** । कस्माद् ? **स्वनात्**- शब्दात् । किं वदन् ? **इति**- एतत् - हे **भ्रमर**!- भृङ्ग!, त्वं **दश**- भक्षस्व । किं तत् ? **कदम्बरजः**- कदम्बपुष्परागम् ॥२१॥

ज्योत्स्नाऽलं घनमलिना न बभौ क्रियते स्म कुटजलङ्घनमलिना ।
बलवानवपू रोहन् हृद्यास नदीतटांश्च नवपूरोऽहन् ॥२२॥

ज्योत्स्ना- चन्द्रकान्तिर्**घनमलिना**- मेघकृष्णा सती **अलमत्यर्थं न बभौ**- न शुशुभे । तथा **क्रियते स्म**- कृतम् । किं तत् ? **कुटजलङ्घनम्**। कुटजपुष्पाणां लङ्घनमतिक्रमणं गमनं वा । केन ? **अलिना**- भ्रमरेण ।

तथा **अवपुः**- अनङ्ग **आस**- बभूव । क्व ? **हृदि**- मनसि । किं कुर्वन् ? **रोहन्**- प्रादुर्भवन् च तन्वा । कीदृशः ? **बलवान्**- शक्तिमान् ।

तथा **नवपूरो**- नवजलप्रवाहोऽ**हन्**- हतवान्- पातितवान् । कान् ? **नदीतटान्**- सरिद्रोधांसि । **चः** समुच्चये ॥२२॥

शिखिषु समुत्सु कमनसो गतिहरमुज्झति च खे समुत्सुकमनसः ।
व्यमुचन्नपवनजवना वापीर्हंसाः स्थिताश्च न पवनजवनाः ॥२३॥

व्यमुचन्- त्यक्तवन्तः । के ? **हंसाः**- चक्राङ्गाः । का ? **वापीः**- सरसीः । कीदृशीः ? **अपवनजवनाः** । वने- जले जातानि वनजानि- पद्मानि, तेषां वनं- खण्डो वनजवनम् । अपगतं- भ्रष्टं वनजवनं- पद्मखण्डो यासु तास्तथोक्तास्ताः । न केवलं व्यमुचन्, [न] **स्थिताश्च**- न स्थितिं कृतवन्तः । कीदृशाः ? **पवनजवना**- वायुसमवेगाः । केषु सत्सु ? **शिखिषु**- मयूरेषु । कीदृशेषु ? **समुत्सु**- सहर्षेषु । तथा **खे**- आकाशे सति । किं कुर्वति ? **उज्झति**- मुञ्चति । किं तत् ? **कं**- जलम् । कीदृशम् ? **गतिहरं**- गमनविनाशि।

कस्य ? **अनसः**- शकटस्य । हंसाः कथम्भूताः ? **समुत्सुकमनसः**- उत्कण्ठितचित्ताः ॥२३॥

शब्दोऽनादेयानां कलुषतया नो शशाम नादेयानाम् ।
फेनो वा नीराणामाकृष्टोभयतटान्तवानीराणाम् ॥२४॥

नो शशाम- नोपशमं जगाम । कोऽसौ ? **शब्दो**- नादः । तथा **फेनो वा**- डिण्डीरश्च । केषाम् ? **नीराणां**- जलानाम् । कीदृशानाम् ? **नादेयानाम्**। नद्यां भवानि नादेयानि तेषां सरितः सत्कानाम् । तथा **अनादेयानाम्**- अग्राह्याणाम्। कया ? **कलुषतया**- मलिनतया । तथाऽऽ**कृष्टोभयतटान्तवानीराणाम्** । आकृष्टाः- पातिता उभयतटान्तेभ्यो- रोधद्वयान्तेभ्यो वानीरा- वेतसा यैस्तानि तथोक्तानि तेषाम् ॥२४॥

प्राप्य सखद्योतायां निशि विद्युज्जितमरुत्सखद्योतायाम् ।
प्रियतमसदनं गेहादबला भयमुत्ससर्ज सदनङ्गेहा ॥२५॥

अबला- वनिता **भयं**- त्रासमुत्**ससर्ज**- तत्याज । किं कृत्वा ? **प्राप्य**- आसाद्य । किं तत् ? **प्रियतमसदनम्**- अभीष्टगृहम् । कस्माद् ? **गेहात्**- स्वगृहात् । किम्भूता सती ? **सदनङ्गेहा सती** । विद्यमानाऽनङ्गेहा- कामचेष्टा यस्याः सा तथोक्ता । कस्याम् ? **निशि**- रात्रौ । कीदृश्याम् ? **सखद्योतायाम्**। सह खद्योतैः- ज्योतिरिङ्गणैर्वर्तते या सा तथोक्ता तस्याम् । तथा **विद्युज्जितमरुत्सखद्योतायाम्** । विद्युता- तडिता जितो- अभिभूतो मरुत्सखस्य- अग्नेर्द्योतो- दीप्तिर्यस्यां सा तथोक्ता तस्याम् ॥२५॥

पर्वतकटकेशानां नीपरजःकपिलकुम्भकटकेशानाम् ।
कुञ्जनदीनगजानां हर्षो जज्ञे महानदीनगजानाम् ॥२६॥

हर्षो जज्ञे- प्रमोदो जातः । कीदृशः ? **महान्**- गुरुः । केषाम् ? **अदीनगजानां**- सतेजःकरिणाम् । कीदृशाम् ? **पर्वतकटककेशानां**- गिरिप्रस्थस्वामिनाम् । तथा **नीपरजःकपिलकुम्भकटकेशानाम्** । नीपरजसा- कदम्बरेणुना कपिलाः- पिङ्गलाः कुम्भकटकेशाः- शिरःपिण्डकपोलवाला येषां ते तथोक्तास्तेषाम् । तथा **कुञ्जनदीनगजानाम्** । कुञ्जानि च गह्वराणि, नद्यश्च सरितो, नगाश्च पर्वतास्ते तथोक्तास्तेषु जाताः कुञ्जनदीनगजास्तेषाम् ॥२६॥

विविधोपलराशिखरं पिदधे गोवर्धनं तृणैराशिखरम् ।
कालोऽगं धारावानकरोत् कुटजशिखिनां च गन्धारावान् ॥२७॥

अगं- गिरिम् । किमभिधानम् ? **गोवर्धनं**- गोवर्धननामानम् । **कालः** कर्ता **पिदधे**- आच्छादितवान् । कीदृशः कालः ? **धारावान्** । धारा विद्यन्तेऽस्य धारावान् । जलवृष्टिप्रपातयुक्तो वर्षाकाल इत्यर्थः । कैः ? **तृणैः** । कथं पिदधे ? **आशिखरं**- शिरःपर्यन्तम् । कथम्भूतमगम् ? **विविधोपलराशिखरम्** । नानाविधप्रस्तरकूटकठोरम् । न केवलं पिदधे, **अकरोच्च** । कान् ? **गन्धारावान्** । गन्धाश्चाऽऽरावाश्च तानामोदशब्दान् । केषाम् ? **कुटजशिखिनाम्** । कुटजानां गन्धान् मयूराणां च शब्दानित्यर्थः ॥२७॥

कणिकाभिरपां सुखरा वृन्दावनमारुता ववुरपांशुखराः ।
यमुना नवमुदकपटं भेजे व्रजलोकमाश्रिता मुदकपटम् ॥२८॥

वृन्दावनमारुता- वृन्दावनस्य वाता **ववुः**- वान्ति स्म । कीदृशाः ? **सुखराः** । सुखं रान्ति- ददतीति सुखराः- शर्मदाः । काभिः ? **कणिकाभिः**- लेशैः । कासाम् ? **अपां**- जलानां, शीतलत्वात् । तथा **अपांशुखराः** । न पांशुभिः खराः- कठोराः ।

यमुना- कालिन्दी **नवं**- नूतन**मुदकपटं**- जलमेव वस्त्रं **भेजे**- सिषेवे । तथा **मुद्**- हर्ष **आश्रिता**- आश्लिष्टा । कम् ? **व्रजलोकं**- गोकुलजनम् । कीदृशम् ? **अकपटम्** । न विद्यते कपटं- माया यस्य स तथोक्तस्तमृजुमित्यर्थः । व्रजलोको हृष्टो बभूवेत्यर्थः ॥२८॥

अतपनवसुदे वसु तौ वज्रस्य साभ्रे ततोऽह्नि वसुदेवसुतौ ।
अमृतसमधुनीपवनं वृन्दावनमविशतां समधुनीपवनम् ॥२९॥

ततोऽनन्तरं **तौ वसुदेवसुतौ**- विष्णुबलौ **वृन्दावनमविशतां**- प्रविष्टौ । कीदृशम् ? **समधुनीपवनम्** । समधूनि- पुष्परससहितानि नीपानां- कदम्बानां वनानि यत्र तत् तथोक्तम् । तथा**ऽमृतसमधुनीपवनम्** । अमृतेन- पीयूषेण **समः**- समानः शीतत्वात् सुरभित्वाच्च धुनीपवनो- नदीवातो यत्र तत् तथोक्तम् । कस्मिन् ? **अह्नि**- दिवसे । कीदृशे ? **साभ्रे**- समेघे । तथा**ऽतपनवसुदे** । न तपनस्य- आदित्यस्य वसून्- रश्मीन् ददाति मेघावृतत्वादिति तत् तथोक्तं

तस्मिन् । रविकिरणरहिते इत्यर्थः । तौ कीदृशौ ? **वसु** । द्रव्यमुपभोग्यत्वात् प्रसिद्धत्वाद् वा । यद्वा रत्नं प्रधानत्वात् । कस्य ? **व्रजस्य**- गोकुललोकस्य ॥२९॥

शिखिसर्वस्वधरस्य द्वे प्रियतां जग्मतुर्हरेः स्वधरस्य ।
भ्रमरकदम्बकरवहा वेणुः प्रावृट् तथा कदम्बकरवहा ॥३०॥

द्वे- वेणु-प्रावृषौ **प्रियतां जग्मतुः**- उभे प्रिये बभूवतुः । कस्य ? **हरेः**- विष्णोः । कीदृशस्य ? **स्वधरस्य**- शोभनौष्ठस्य । तथा **शिखिसर्वस्व-धरस्य**। शिखिनां सर्वस्वं पिच्छानि धरति- बिभर्तीति स तथोक्तस्तस्य मयूरपिच्छधारिण इत्यर्थः । एकस्तावद् **वेणुः**- वंशः । कीदृशः ? **भ्रमरकदम्ब-करवहा** । भ्रमराणां- भृङ्गाणां कदम्बकं- वृन्दं, तस्य रवः- शब्दः, तं हन्ति-जयतीति स तथोक्तः । अतिमधुरत्वाद् भ्रमररुतजेतेत्यर्थः । तथा प्रावृट् कीदृशी ? **कदम्बकरवहा** । कदम्बपुष्पाण्येव करौ- हस्तौ, करं- दण्डं वा वहति-बिभर्तीति सा तथोक्ता । कदम्बपुष्पयुक्तेत्यर्थः ॥३०॥

अंसादामोदस्य स्थानमवस्रंसि नीपदामोदस्य ।
श्रीर्ललितमथो व्रजतः काऽपि बभूवाऽस्य मुष्टिकमथो व्रजतः ॥३१॥

काऽपि श्रीरपूर्वा शोभा **बभूव**- आसीत् । कस्य ? **अस्य**- हरेः । कीदृशस्य ? **मुष्टिकमथः** । मुष्टिकं दानवं मथितवान्- हतवान् मुष्टिकमत् तस्य । किं कुर्वतः ? **व्रजतः**- गच्छतः । कथम् ? **ललितं**- सविलासम् । कस्माद् व्रजतः ? **गोकुलात्** । **अथो**ऽनन्तरं, किं कृत्वा व्रजतः ? **उदस्य**- उत्क्षिप्योर्ध्वीकृत्य । किं तत् ? **नीपदाम**- कदम्बपुष्पमालाम् । कीदृशम् ? **स्थानम्**- आश्रयः । कस्य ? **आमोदस्य**- गन्धस्य । तथा **अवस्रंसि**- अधः-पाति । कस्माद् ? **अंसात्**- स्कन्धात् ॥३१॥

धृतकामधुरैर्मधुरैर्भ्रमरेभ्यो मुदितबल्लवकुलैर्बकुलैः ।
क्षतकेशिशिराः शिशिराः
स्थलीर्युताः प्रायशो(प्राप सो)-ऽस्तसुरभीः सुरभीः ॥३२॥

स- विष्णुः **प्राप**- प्राप्तवान् । काः ? **स्थलीः**- स्थलानि । कीदृशः ? **अस्तसुरभीः** । अस्ता- क्षिप्ता- अपनीता सुराणां- देवानामसुरेभ्यो

भीः- भयं येन स तथोक्तः । तथा **क्षतकेशिशिराः** । क्षतं- विनाशितं केशिशिरो- दानवकेशिमस्तकं येन स तथोक्तः । कीदृशीः स्थलीः ? **शिशिराः**- शीतलाः । तथा **सुरभीः**- शोभनगन्धाः । तथा **युता**- युक्ताः । कैः ? **बकुलैः**- बकुलपुष्पैः । कीदृशैः ? **धृतकामधुरैः** । धृता कामस्य धुरा- धूर्भारो यैस्तानि तैः । अनङ्गवर्धकैरित्यर्थः । तथा **मधुरैः** । मधु- पुष्परसं रान्ति- ददतीति मधुराणि तैः । केभ्यः ? **भ्रमरेभ्यः**- भृङ्गेभ्यः । तथा **मुदितबल्लवकुलैः** । मुदितानि- हृष्टानि बल्लवानां- गोपानां कुलानि- वृन्दानि येषु तानि तथोक्तानि तैः । विकसितबकुलदर्शनाद् बल्लवसङ्घातो हृष्ट इत्यर्थः ॥३२॥

ता वृषभरणाभरणा तेन युताः स्वयमिवाऽञ्जनभसा नभसा ।
रेजुः सुतरां सुतरां यमुनामभितः सवञ्जुललता ललता ॥३३॥

ताः- स्थल्यो **रेजुः**- शुशुभिरे । कथम् ? **सुतरामतिशयेन** । कीदृश्यः ? **तेन**- हरिणा **युताः**- सहिताः । तथा **वृषभरणाभरणाः** । वृषभानां रणः- सङ्ग्राम आभरणं यासु तास्तथोक्ताः । क इव ? **स्वयमिव**- आत्मेव । हरेर्यथाऽऽत्मा राजते । कथम्भूतः ? **युतः** । केन ? **नभसा**- आकाशेन । कीदृशेन ? **अञ्जनभसा** । अञ्जनं भस्ति- निर्भर्त्सयति कृष्णत्वेनेत्यञ्जनभस्तेन । कृष्णवर्णेनेत्यर्थः । हरिणाऽप्यञ्जनभसा । कीदृशेन तेन ? **ललता**- क्रीडता । कथम् ? **अभितः**- लक्षीकृत्य । काम् ? **यमुनां**- कालिन्दीम् । कीदृशीम् ? **सुतराम्** । सुखेन तीर्यते इति सुतरा तां सुखोत्तराम् । स्थलीः कीदृश्यः ? सवञ्जुललताः । वञ्जुलाश्च वेतसा लताश्चाऽशोकलतादयो वञ्जुललताः । सह ताभिर्वर्तन्ते यास्ताः सवञ्जुललताः । कृष्णत्वं स्थलीनां दर्शितम् ॥३३॥

श्रेष्ठपदारोहिण्याः सुतोऽप्यलङ्घ्यमहिमाऽऽपदा रोहिण्याः ।
प्राप्य शरीरं तुङ्गां द्युतिं च स इवाऽऽगतः शरी रन्तुं गाम् ॥३४॥

सुतोऽपि- पुत्रोऽपि **रन्तुं**- क्रीडितु**मागत**- इयाय **स**- बलभद्रः । कस्याः सुतः ? **रोहिण्याः** । कीदृश्याः ? **श्रेष्ठपदारोहिण्याः**- महापदस्थायाः पट्टमहादेव्या इत्यर्थः । सुतः कीदृशः ? **अलङ्घ्यमहिमा**- अनतिक्रमणीय-माहात्म्यः । कया ? **आपदा**- विपदा दानवादिकृतया । क इवाऽऽगतः ? **शरीव**- काम इवाऽऽगतवान् । काम् ? **गां**- पृथिवीम् । किं कर्तुम् ? **रन्तुम्** ।

कामस्याऽमूर्तत्वात् कथमागत इति चेदाह - किं कृत्वा ? **प्राप्य**- आसाद्य । किं तत् ? **शरीरं**- देहम् । न केवलं शरीरं, **द्युतिं च**- दीप्तिं च । कीदृशीम् ? **तुङ्गां**- महतीम् । मूर्त इति ॥३४॥

निवुलवतीं ककुभानां समो मतिक्षान्तिदीप्तिभिः ककुभानाम् ।
अंसेन स्वनवद्यां स्रजं वहन्नपिपदलिकुलं स्वनवद् याम् ॥३५॥ युग्मम् ॥

किं कुर्वन्नागतः ? **वहन्**- धारयन् । कां ताम् ? **स्रजं**- मालाम् । केन ? **अंसेन**- स्कन्धेन । केषां स्रजम् ? **ककुभानां**- ककुभसुमानाम् । कीदृशीम् ? **निवुलवतीं**- निवुलपुष्पवतीम् । तथा **स्वनवद्याम्** । सुष्ठु- शोभनाम्, अनवद्यां- निर्दोषाम् । **यां**- स्रज**मपिपत्**- पपौ । किं तत् ? **अलिकुलं**- भ्रमरवृन्दम् । कीदृशम् ? **स्वनवत्**- शब्दायमानम् । कीदृशो बलः ? **समः**- तुल्यः । केषाम् ? **ककुभानां**- ब्रह्मपृथिवीनक्षत्राणाम् । काभिः ? **मति-क्षान्ति-दीप्तिभिः** । यथासङ्ख्यं बुद्ध्या ब्रह्मतुल्यः, क्षमया पृथ्वीसमानः, कान्त्या चन्द्रादिसमः ॥३५॥

दृष्ट्योद्धवलासितया लिम्पन्निव दिङ्मुखानि धवलासितया ।
बहुधाऽऽप वने च्छायां प्रावृषि मेघानुयातपवनेच्छायाम् ॥३६॥

बल **आप**- प्राप । किं कुर्वन्निव ? **लिम्पन्निव**- उपचिन्वन्निव । कानि ? **दिङ्मुखानि**- आशाविवराणि । कया ? **दृष्ट्या**- दृशा । कीदृश्या ? **उद्धवलासितया** । उद्धवे मन्त्रिणि लासिता- स्निग्धा प्रेरिता वा तया । यद्वा कया कृत्वा लिम्पन्निव ? **उद्धवलासितया** । उद्धवैः- अक्षिविलासैर्लसति- क्रीडतीति उद्धवलासी, तस्य भाव उद्धवलासिता तया । विलासक्रीडयेत्यर्थः । कामाप ? **छायाम्**- आतपाभावं शोभां वा । क्व ? **वने**- कानने । तथा दृष्ट्या किम्भूतया ? **धवलासितया**- शुभ्रकृष्णया । कथं छायामाप ? बहुधा- अनेकप्रकारां, घनादिभेदेन । कस्याम् ? **प्रावृषि**- वर्षासु । कीदृश्याम् ? **मेघानुयातपवनेच्छायाम्** । मेघानुयातस्य घनानुसृतस्य पवनस्येच्छा- विहरण- वाञ्छा, मेघानुश्रितपवनेच्छा- वाञ्छा लोकानां यत्र सा तथोक्ता तस्याम् ॥३६॥

अथ स वलक्षो भानां पतिरिव कर्तारमरिबलक्षोभानाम् ।
मुस(श)लीदं तुरगहनं वीक्ष्य गिरिं प्राह कुटजदन्तुरगहनम् ॥३७॥

अथाऽनन्तरं **स मुशली**-बलः **प्राह**- उक्तवान् । कीदृशः ? **वलक्षो**-धवलः । क इव ? **भानां**- नक्षत्राणां **पतिरिव**- चन्द्र इव । किं कमाह ? **इदं**- वक्ष्यमाणं **तुरगहनं**- अश्वदानवघ्नं, हरिमित्यर्थः । कीदृशम् ? **कर्तारं**-विधातारम् । केषाम् ? **अरिबलक्षोभानां**- शत्रुसैन्यत्रासानाम् । किं कृत्वा ? **वीक्ष्य**- दृष्ट्वा । कम् ? **गिरिं**- गोवर्धनम् । कीदृशम् ? **कुटजदन्तुरगहनम्**। कुटजपुष्पैर्दन्तुराण्युद्गतदन्तानीव विषमोन्नतानि वा गहनानि- गह्वराणि यस्य स तथोक्तस्तम् ॥३७॥

विदधच्छं नश्छन्नः कुटजैः क्षरति प्रगीतगोपोऽगोऽपः ।
प्रस्वनदभ्रोऽदभ्रः सृष्टिविशेषोऽयमतुलधातुर्धातुः ॥३८॥

अयमगो- गिरिः **क्षरति**- स्रवति । का ? **अपो**- जलानि । किं कुर्वन् ? **विदधत्**- कुर्वन् । किं तत् ? **शं**- सुखम् । केषाम् ? **नः**- अस्माकम्। कीदृशः ? **छन्नः**- आवृतः । कैः ? **कुटजैः**- कुटजवृक्षैः । तथा **प्रगीतगोपः** । प्रकर्षेण गीता- गायन्तो गोपा- गोपाला यत्र स तथोक्तः । तथा **प्रस्वनदभ्रः** । प्रकर्षेण स्वनन्तः- शब्दायमाना अभ्रा- मेघा यत्र स तथोक्तः । तथाऽ**दभ्रः**- महान् । तथा **सृष्टिविशेषो**- विशिष्टसर्गः । कस्य ? **धातुः**- ब्रह्मणः । तथाऽ**तुलधातुः** । अतुला अनन्यसमा धातवो यत्र स तथोक्तः ॥३८॥

पश्य श्यामाश्यामा वनस्थली भाति बलवदृश्या दृश्या ।
प्रदरा धाराधारा ध्वनन्ति मेघाश्च शिरसि हन्तेहन्ते ॥३९॥

हे हरे! **पश्य**- अवलोकय । किम् ? **भाति**- शोभते । का? **वनस्थली**- वृक्षादिस्थलम् । कीदृशी ? **श्यामाश्यामा** । श्यामाभिः- प्रियङ्गुलता-भिः श्यामा- कृष्णा श्यामाश्यामा । तथा **बलवदृश्या** । बलवन्तो- बलयुक्ता ऋश्या- मृगविशेषा यस्यां सा तथोक्ता । तथा **दृश्या**- रमणीया ।

न केवलं स्थली भाति, इह गिरौ **शिरसि**- शिखरे **हन्त**- अहो! **ध्वनन्ति इहन्ते च**- चेष्टन्ते च । गर्जनादिव्यापारं कुर्वन्तीत्यर्थः । के ? **मेघा**-घनाः । कीदृशाः ? **प्रदराः** । प्रकर्षेण दरन्ति- दारयन्ति प्रदरा- दुःखोत्पादकाः । तथा **धाराधाराः** । तथा धाराणां- जलदण्डानामाधारा- आश्रया धाराधाराः ।

यद्वा पाठान्तरं **यस्य श्यामाश्यामेति** । यस्याऽगस्य वनस्थली भाति,

सोऽयं गिरिरपः क्षरतीति प्रोक्तनश्लोकेन सम्बन्धः ॥३९॥

अश्मसु कं दलदशनैरुद्गमति दरीमुखैश्च कन्दलदशनैः ।
दयितोऽच्युत! हे मम यः तव च रवीन्द्वोर्यथाऽचलो हेममयः ॥४०॥

यश्च गिरिरु**द्गमति**- उद्गिरति । किं तत् ? **कं**- जलम् । किं कुर्वत् ? **दलत्**- स्फुटत् । केषु ? **अश्मसु**- दृषत्सु । कथमुद्गमति ? **अशनैः**- शीघ्रम् । **कैः** ? **दरीमुखैः**- कन्दरचक्रैः । कीदृशैः ? **कन्दलदशनैः** । कन्दलान्येवं दशना- दन्ता येषां तानि तथोक्तानि तैः । कीदृशोऽगः ? **दयितो**- वल्लभः । कस्य ? **तव**- तुभ्यं **मम च** - मह्यं च **हेऽच्युत!**- हरे! । कयोरिव कः? यथा **रवीन्द्वोः**- सूर्यचन्द्रयोर्दयितो भवति । कः ? **अचलो**- गिरिः । किम्भूतः ? **हेममयः**- सुवर्णसत्कः । मेरुरित्यर्थः ॥४०॥

शकुनिपताकाशबलं घनवृन्दं चक्षुषा पताऽऽकाशबलम् ।
रूपं हारीतानां श्रियं वनानां च मत्तहारीतानाम् ॥४१॥

हे हरे! **चक्षुषा** पताका (पत?-) अवलोकय । किं तत् ? **घनवृन्दं**- मेघसङ्घातम् । कीदृशम् ? **शकुनिपताकाशबलम्** । शकुन्तय एव बलाकापक्षिण एव पताका- वैजयन्ती, शुभ्रत्वात्, तया शबलं- कर्बुरम् । तथा**ऽऽकाशबलम्** । आकाशे- गगने बलं- सामर्थ्यं यस्य तत् तथोक्तम् । न केवलं घनवृन्दं, पत **रूपं**- स्वभावं च । कीदृशम् ? **हारि**- मनोहरम् । केषाम् ? **वनानां**- काननानाम् । कीदृशानाम् ? **इतानां**- प्राप्तानाम् । काम् ? **श्रियं**- पुष्पादिसमृद्धि शोभां वा । तथा **मत्तहारीतानाम्** । मत्ताः- क्षीबा हृष्टा वा हारीताः पक्षिविशेषा येषु तानि तथोक्तानि तेषाम् ॥४१॥

पूर्वं स्म हरे! शेषे यान् मेघान् वीक्ष्य भूश्रमहरे शेषे ।
जनितरतिरसावसि तैरादाय तडिद्गुणार्णवरसावसितैः ॥४२॥

असौ- त्वं **जनितरतिः**- उत्पादितप्रीतिर**सि**- भवसि । हे **हरे!**- अच्युत! । **कैः** ? **तैः**- मेघैः । कीदृशैः ? **असितैः**- कृष्णैः । किं कृत्वा ? **आदाय**- गृहीत्वा । कौ ? **तडिद्गुणार्णवरसौ**- विद्युद्दोरकसमुद्रजले । समुद्रजलस्य कृष्ट(ष्ण)त्वात् तद्वर्णैरित्यर्थः । यान् **मेघान्**- घनान् **वीक्ष्य**- दृष्ट्वा **पूर्वं**- पुरा **शेषे स्म**- त्वं शयितवान् । कस्मिन् ? **शेषे**- नागराजे आधारे । शेषस्योपरीत्यर्थः ।

भूश्रमहरे- पृथ्वीखेदनाशके । तस्यास्तत्र स्थितत्वात् ॥४२॥

दिगसावर्यमदयिता याम्या ध्रुवमयमृतुश्च वर्य! मदयिता ।
यदियमुदग्रतमेषु प्राप्ता जलदेषु रविमुदग्रतमेषु ॥४३॥

हे **वर्य!** - प्रधान! हरे!, **दिगसौ**- आशैषा । कथम्भूता ? **याम्या**- दक्षिणा **ध्रुवं**- निश्चित**मर्यमदयिता**- सूर्यप्रिया । तथा **ऋतुश्चाऽयं** प्रावृट् **मदयिता**- मदकारी । **यद्**- यस्मादियं- याम्या दिक् **प्राप्ता** । कम् ? **रविम्**- आदित्यम् । कीदृशम् ? **उदग्**रतम्- उदीच्यां रक्तमासक्तम् । केषु सत्सु ? **एषु जलदेषु** मेघेषु । कीदृशेषु ? **उदग्रतमेषु**- उद्भटेषु- गर्जादियुक्तेषु ॥४३॥

कार्मुकवलयमनूनं दिशसि यतस्तोषितोऽसि बलयम! नूनम् ।
इत्याशामुखरतया घनराज्या हरिरिवोच्यते मुखरतया ॥४४॥

उच्यते इव- भण्यते इव । कोऽसौ ? **हरिः**- इन्द्रः । कया ? **घनराज्या**- मेघपङ्क्त्या । कीदृश्या ? **आशामुखरतया** । आशानां- दिशां मुखानि- वक्त्राणि, तेषु रता- आसक्ता स्थिता [वा] तया । कया कृत्वोच्यते ? **मुखरतया**- वाचाटतया । किमुच्यते ? **इति**- एतत् । हे **बलयम**!- इन्द्र!, **यतस्त्वं दिशसि**- ददासि । किं तत् ? **कार्मुकवलयं**- चापवलयम् । कीदृशम् ? **अनूनं**- परिपूर्णम् । कथम् ? **नूनं**- निश्चितम् । अत**स्तोषितोऽसि**- हर्षमुत्पादितोऽसि ॥४४॥

न तवोपरि बर्हेण ग्रथिताभरणस्य गोपपरिबर्हेण ।
छायामसिताऽऽप घनः सुरचापाङ्कः परैरकसितापघनः(न! ?) ॥४५॥

हे **असित** !- कृष्ण!, **न छायां** - न शोभा**माप**- लेभे । कोऽसौ ? **घनो**- मेघः । कीदृशः ? **सुरचापाङ्क**- इन्द्रधनुश्चिह्नः । कथम्भूतः ? **परैः**- शत्रुभिर**कसितापघनः(न!)** । अकसितानि- असारितानि अकर्षितानि वा [अपघनानि?-] अङ्गानि- हस्तपादादीनि यस्य स तथोक्तः । तस्याऽऽमन्त्रणम् । कस्य छायाम् ? **तव**- भवतः । कीदृशस्य ? **ग्रथिताभरणस्य**- कृतभूषणस्य । क्व ? **उपरि** । केन कत्रो (कर्त्रा?) **गोपपरिबर्हेण**- गोपालपरिसरेण । केन कृत्वा ? बर्हेण- मयूरपिच्छेन ॥४५॥

हृतगिरिधातुरसं गा रुद्ध्वा तव भुजसमोर्मि धातुरसङ्गा ।
कूलानि खनद् यमुना वहति जलं सर्पति च खनद्यमुना ॥४६॥

यमुना- कालिन्दी **जलम्**- उदकं **वहति** । किं कुर्वत् ? **खनद्**- विदारयत् । कानि ? **कूलानि**- रोधांसि । कीदृशं जलम् ? **हृतगिरिधातुरसम्** । हृत- आकृष्टो गिरिधातूनाम्- अद्रिगैरिकादीनां रसो- जलं रसा वा भूमिर्येन तत् तथोक्तम् । किं कृत्वा वहति ? **रुद्ध्वा**- आवृत्य । काः ? **गाः**- पशून् दिशो वा । भग्नगोप्रचारं व्याप्तदिक्कं वा । तथा **भुजसमोर्मि**- बाहुतुल्यकल्लोलं, कृष्णत्वाद् दीर्घत्वाच्च । कस्य ? **तव**- भवतः । कथम्भूतस्य ? **धातुः**- स्रष्टुः । यमुना कीदृशी ? **असङ्गा**- अस्खलना । न केवलं यमुना जलं वहति, **खनदी** च- गङ्गा **अमुना**- यमुनाजलेन **सर्पति च**- प्रसरति च । महती भवतीत्यर्थः ॥४६॥

पवनैरज! साध्वस्तं बिभ्राणां नीपमात्मरजसा ध्वस्तम् ।
पश्यैकान्ततरलतां स्थलीं गतां बर्हियोगकान्ततरलताम् ॥४७॥

हेऽज!- हरे! **पश्य**- अवलोकय । काम् ? **स्थलीम्** । कीदृशीम् ? **गतां**- प्राप्ताम् । काम् ? **एकान्ततरलताम्** । एकान्तेन- निश्चयेनैकान्ते- विजने वा तरलता- चञ्चलता, रम्यतेत्यर्थस्तम् । तथा **बर्हियोगकान्ततरलताम्** । बर्हियोगेन- मयूरसम्बन्धेन कान्ततरा- अतिचारवो लताः- चम्पकलताद्या यस्यां सा तथोक्ता ताम् । तथा **बिभ्राणां**- धारयमाणाम् । किं तत् ? **नीपं**- कदम्बपुष्पाणि, जातित्वात् । कीदृशम् ? **अस्तं**- क्षिप्तम् । कैः ? **पवनैः**- वातैः । तथा **साधु**- शोभनम् । तथा **आत्मरजसा**- आत्मीयपरागेन **ध्वस्तं**- व्याप्तम् ॥४७॥

वसने संस्तव न नवा जेतुमलं तडिदमोघसंस्तवन! नवा ।
मधुकरविश्वसितानि स्मितमिह कुटजानि जनितविश्व! सितानि ॥४८॥

तव वसने- भवतो वस्त्रे, **हेऽमोघसंस्तवन!**- सफलस्तुते!, **न नवा जेतुमलम्**- अपि तु जेतुमनुकर्तुमलं- समर्था । काऽसौ ? **तडिद्**- विद्युत् । कीदृशी ? **नवा** - नूतना । कथम्भूतः ? **सन्**- शोभनं(न!?) ।

तथा **जनितविश्व!**- उत्पादितभुवन! । **इह**- गिरौ **कुटजानि**-

कुटजपुष्पाणि **स्मितं**- हास इव, शुभ्रत्वात् । कीदृशानि ? **मधुकरविश्वसितानि** । मधुकराणां- भ्रमराणां विविधं- नानाप्रकारं श्वसितं- प्राणनं जीवनं मधु वा येषु तानि तथोक्तानि । तथा **सितानि**- शुभ्राणि ॥४८॥

मारुतवेगाद् गुणवन्नवशशिखण्डानां शुक्लापाङ्गविडम्बितनवशशिखण्डानाम् ।
[सङ्घाः] शिखिनां प्राप्ताः शं केकायन्ते स्थलघनमिति मन्वानाः शङ्के कायं ते ॥४९॥

शिखिनां- मयूराणां **सङ्घाः**- सङ्घाताः **केकायन्ते**- शब्दायन्ते । किं कुर्वाणाः ? **मन्वानाः**- मन्यमानाः । हे **गुणवन्**!- शौर्यादिगुणयुक्त! हरे! । कम् ? **कायं**- शरीरम् । कस्य ? **ते**- तव । कथं मन्वानाः ? **स्थलघनमिति**- स्थलीमघ(स्थलमेघ?)मिति- एवंप्रकारमहमेवं **शङ्के**- मन्ये । कीदृशाः सङ्घाः ? **प्राप्ताः** । किं तत् ? **शं**- सुखम् । कीदृशानां शिखिनाम् ? **अवशशिखण्डानाम्** । अवशःअस्वाधीन उच्छृङ्खलः शिखण्डः- पिच्छकलापो येषां ते तथोक्ताः तेषाम् । कस्मात् ? **मारुतवेगाद्**- वायुरयेण । तथा **शुक्लापाङ्गविडम्बितनवशशिखण्डानाम्** । शुक्लापाङ्गैः- धवलनयनपर्यन्तैर्विडम्बितानि- अनुकृतानि नवानि- नूतनानि शशिखण्डानि- चन्द्रकला यैस्ते तथोक्तास्तेषाम् ॥४९॥

पश्य शिलाः शैलेऽस्मिन्नुच्चावचसानौ यान्त्युन्मुखबर्हिणतामुच्चा वचसा नौ ।
अमुना शसितरिपुस्त्रीशृङ्गारो हि त्वं याचित इवाऽम्बुनादैः शृङ्गारोहित्वम् ॥५०॥

हे हरे! **पश्य**- अवलोकय । **अस्मिन्**- **शैले**- गोवर्धने **शिला**- दृषदो **यान्ति**- गच्छन्ति । काम् ? **उन्मुखबर्हिणतां**- मूर्धवक्रमयूरयुक्तत्वम् । कीदृश्यः ? **उच्चा**- उच्छ्रिताः । कीदृशे शैले ? **उच्चावचसानौ** । उच्चा- उच्छ्रिता अवचा- नीचाः सानवः- प्रस्था यस्मिन् स तथोक्तस्तस्मिन् । केन कृत्वा ? **वचसा**- वचनेन । कयोः ? **नौ**- आवयोः । मेघगर्जिताशङ्कया ।

तथा **याचित इव**- प्रार्थित इव । कः ? **त्वं**- भवान् । केन ? **अमुना**- गोवर्धनेन । **शृङ्गारोहित्वं**- शिखरारोहणम् । **कैः** कृत्वा याचितः ? **अम्बुनादैः**- वहज्जलशब्दैः । कीदृशस्त्वम् ? **शसितरिपुस्त्रीशृङ्गारः** । **शसितः**- अपनीतो रिपुस्त्रीणाम्- अरिवनितानां शृङ्गार- आभरणादिविभूषा येन स तथोक्तः, विनाशितशत्रुत्वात् । **हिः** स्वार्थे यस्मादर्थे वा ॥५०॥

नदति जलदैर्निदाघे सारङ्गोऽपास्ते बिभ्रति केतकमवनेः सारं गोपास्ते ।
सम्प्रत्युद्यमकालो न वाहिनीपानां त्वन्मुखसुरभीणां श्रीर्नवा हि नीपानाम् ॥५१॥

सारङ्गः- चातको **नदति**- रौति । क्व सति ? **निदाघे** । कथम्भूते ? **अपास्ते**- निराकृते । कैः ? **जलदैः**- मेघैः ।

तथा **ते**- तव **गोपा**- गोपाला **बिभ्रति**- धारयन्ति । किं तत् ? **केतकं**- केतकीपुष्पम् । कीदृशम् ? **सारं**- प्रधानम् । कस्या ? **अवनेः**- पृथिव्याः ।

तथा **सम्प्रति**- अधुना **न भवति** । कोऽसौ ? **उद्यमकालः**- अभियोगसमयः । केषाम् ? **वाहिनीपानां**- सेनापतीनाम् । **हिः**- यस्मात् । **नवा**- नूतना । काऽसौ ? **श्रीः**- शोभा । केषाम् ? **नीपानां**- कदम्बानाम् । कीदृशानाम् ? **त्वन्मुखसुरभीणां**- भवद्वस्तु(क्त्र)सुगन्धीनाम् । वर्षां(?) सूचनात् ॥५१॥

इत्याह पीतवाससमायतनेत्रस्तं कंसासुरात् पशुमतामायतनेऽत्रस्तम् ।
हसितानां विमलतया स हली लाजानां
छायां विकिरन् दशनैः सह लीलाजानाम् ॥५२॥

स हली- बलभद्र **आह**- ब्रूते स्म । किं तत् ? **इति**- पूर्वोक्तम् । कमाह ? **तं पीतवाससं**- हरिम् । कीदृशो बलभद्रः ? **आयतनेत्रः** । आयते- दीर्घे नेत्रे- लोचने यस्य स तथोक्तः । कीदृशं हरिम् ? **अत्रस्तम्**- अभीतम् । कस्मात् ? **कंसासुरात्**- कंसदानवात् । क्व ? **आयतने**- स्थाने । केषाम् ? **पशुमतां**- गोस्वामिनाम् । किं कुर्वन्नाह हली ? **विकिरन्**- विक्षिपन् तिरस्कुर्वन् । काम् ? **छायां**- शोभाम् । केषाम् ? **लाजानाम्**- अक्षतानाम् । कया कृत्वा ? **विमलतया**- निर्मलतया । केषाम् ? **हसितानां**- हासानाम् । कथम्भूतानाम् ? **लीलाजानाम्** । लीलासु जातानि लीलाजानि- विलासजनितानि तेषाम् । कैः ? **सह दशनैः**- दन्तैः साकम् । हासनैर्मल्येन दन्तैः स्थलजशोभां जयन्नित्यर्थः ॥५२॥

वृन्दावनाख्यकाव्यस्य कृत्वा वृत्तिं सुनिर्मलाम् ।
यदर्जितं मया पुण्यं तेन निर्वान्तु देहिनः ॥

श्रीपूर्णतल्लगच्छसम्बन्धि-श्रीवर्धमानाचार्य[स्वपद]स्थापित-
श्रीशान्तिसूरिविरचिता वृन्दावनकाव्यवृत्तिः समाप्तेति ॥छ॥

महोपाध्याय-श्रीमेघविजयगणिकृत चतुर्विंशतिजिनस्तवः मगसीपार्श्वस्तवनं च

– सं. सा. विनयसागर

साहित्यवाचस्पति श्रीविनयसागरमहोदये केटलाक वखत पूर्वे मोकलेली आ बे लघु रचनाओ, तेमनी चिरविदाय पछी, तेमने स्मरणाञ्जलिरूपे प्रकट करवामां आवे छे. विज्ञप्तिपत्रोना कार्यमां बेएक वर्ष वही जवाने कारणे आनुं प्रकाशन विलम्बथी थाय छे. विनयसागरजी सतत नवनवी रचनाओ 'अनुसन्धान' माटे मोकलता रह्या. छेल्लां बेएक वर्षो दरमियान ज, तेमनी थाकती तबियतने लीधे ते प्रवाह बंध थयेलो.

उपाध्याय मेघविजयजी ते हीरविजयसूरि-परिवारना एक प्रकाण्ड पण्डितवर हता. अनेक श्रेष्ठ अने विद्वत्तासभर ग्रन्थोना ते प्रणेता हता. केटलांक स्तोत्रो तथा विज्ञप्तिपत्रो पण तेमणे सर्ज्यां छे. तेवुं ज एक अप्रगट स्तोत्र तथा एक भाषा-स्तोत्र अत्रे प्रगट थाय छे. आ कृति तेओए कोई प्रतमांथी उतारेली छे. पण ते प्रत उपलब्ध न होई तेमणे जेम लखी मोकली तेमज-यथावत् अत्रे छपाय छे.

*

चतुर्विंशतिजिनस्तवः

श्रीमगसीपार्श्वनाथाय नमः ॥

देवाधिदेवाधिकभाग्यलक्ष्मी नाभेयनाभेयरुचस्तनोस्ते ।
भावेन भावे न विभावयेत केनाधिकेनाधिजगत्सतानो ॥१॥
राजीव-राजीवनमेव शोभा मा याति मायातिगवक्रजां ते ।
ताराजिताराजितदेव सैषा सांके शशाङ्के शरदोऽपि न स्यात् ॥२॥
यूनां मयूनां महितालिरस्य मत्तानमत्ता न यशोभ्यगासीत् ।
गेयं न गेयं नरशंभवोऽर्हन् देयान् मुदेऽयान्मुनिचितसीमम् ॥३॥
मानादिमानादिकषायपङ्क्तिर्मोटाबभोहावशिनां ययास्ता ।
सातान्यसातान्यभिनन्दनाज्ञा कामान्निकामान्निरिता क्षणोतु ॥४॥

मारादमारादमरेश्वरेऽपि तेनाहतेनाह कृता त्वयाऽस्मिन् ।
देवापि देवापि यशः शिवाग्रधाम्ना सुधाम्ना सुमतीश विश्वे ॥५॥
सौसीम सौसीमयुतं वचस्ते तापोपतापोपशमे समर्थम् ।
वन्दे शिवं देशितसर्वभावं मानोपमानोपचितं हितं मे ॥६॥
का मोद कामोदनशोषधर्म पार्श्वः सुपार्श्वः सुमनोमनस्थः ।
पृथ्वीज पृथ्वीजनितोष्मनाशः शोभा यशोभायकरो ममाऽस्तु ॥७॥
राज्ञा नराज्ञानहरांह्रिपद्मे सल्लक्ष्म सल्लक्ष्मणया प्रसूतः ।
देहोभदेहो मनसाभिधार्यः सुस्थाम सुस्था महसेनसूनोः ॥८॥
रामाज! रामाजनविभ्रमाद्या जेया भजे याऽभयदा निजं त्वाम् ।
योगाभियोगाभिगमेन येनाऽनाबाधना बाधत एष मोहः ॥९॥
यस्याऽभयस्याभवमेव दत्तानन्दासु नन्दासुतपूजनासु ।
रागोनुरागोनुदमुष्यमुष्यः शोभारसौ भारतिकृद् विभाति ॥१०॥
दुःखान्यदुःखान्यवशान्यपारं कामे न कामेन कदर्थनाऽभूत् ।
तेनाथ ते नाथ समीपमागा मारक्षमा रक्षक विष्णुजन्म! ॥११॥
देवो मुदे वो मुनयस्त्रिलोकीदीपो नदीपो नयनिम्नगानाम् ।
सद्भाव सद्भा वसुपूज्यराजजन्मारजन्मा रजविक्रियासु ॥१२॥
काराप्रकारा प्रसभं निगोदमध्ये यमध्येयजने न सेहे ।
बाधानबाधानतयाथ साङ्गे-लीना विलीना विमलाथ नत्या ॥१३॥
का नामकानामभवन्न लक्ष्मी राज्यादिराज्यादितशास्त्रवाया(चा?) ।
दानं तदानन्तपदोरवर्णि-ना केन नाके नरमण्डले ना ॥१४॥
चारित्रचारित्रयके तमिस्त्रहीना महीनाम बभूव यस्याः ।
भानुप्रभानु प्रभुधर्मनाथ सातत्त्व सा तत्त्वदनन्तकान्तेः ॥१५॥
शान्ते निशान्तेऽनिशमंह्रिपद्म नत्या जिन त्याजितमेव मेंऽहः ।
मन्येहमन्येह विधास्यते मां सेवा स्वसेवाश्वपुनर्भवस्थम् ॥१६॥
भावस्वभाव स्ववधूकटाक्षां ताक्षोभिताक्षो भिदुरास्त्रवन्द्यः ।
विद्यामविद्यामह कुन्थुनाथ शर्मा सशर्मा सततं प्रदेयात् ॥१७॥
कायो निकायो निवसद् गुणी(णा?)नां दानं निदानं नितमां सुखानाम् ।
मानं विमानं विगदागमाना-मानन्दमानन्दयतोरभर्त्तुः ॥१८॥

विश्वस्य विश्वस्य हृतं सुखस्वं येनानयेनानतयोगभाजः ।
तेनापितेनापि मनोऽत्र मोहमल्ले नमल्ले नरकान्तकारिन् ॥१९॥
मायारमाया रमणीसुखाद्या मुक्ता हि मुक्ताहितसौहृदेन ।
पायादपायादयि ! सुव्रतोऽर्हन् मामुत्तमामुत्तमसां विभेत्ता ॥२०॥
दायं विदायं विजयस्य सूनो देहीश देही शरणे तवास्मि ।
भावादभावादव संप्रसीद पातः कृपातः कृतिवन्द्यकार्या ॥२१॥
योषाभयोषाभर सूर्य नेमे रागादरागादमृते तवाग्रे ।
तां मेदुतां मेदुरतां प्रयच्छ यन्नोभयन्नो भवजं प्रदुष्यात् ॥२२॥
सद्भूवसद्भूवलयेशसेव्य नामाङ्ग वामाङ्गजसेवितस्त्वम् ।
यातो मयातो मननप्रकाशः शंभावि सम्भावितमप्यवश्यम् ॥२३॥
भावित्रिभावि त्रिशलाङ्गजन्म देवस्तु देवस्तुतपादपद्म! ।
सा भोगसाभोग शिवाप्तये मे कल्पद्रुकल्प द्रुतमेव भूयाः ॥२४॥
तेनावृतेना वृषभादिदेवाः, सन्मानि सन्मानितशासना नः ।
सातानसातानयना दिशन्तु, सिद्धया यसिद्धयायतबोधभावम् ॥२५॥
को हेतुको हेतुस्सः कुशास्त्रे तद्भाव तद्भावय जैनवाक्यम् ।
सम्पद्य सम्पद्यशसी यतस्ते मोक्षागमोक्षागणितश्रिये स्यात् ॥२६॥
भारत्यभारत्यसुखानि हत्वा वीणाप्रवीणा प्रतनोतु बुद्धिम् ।
तीर्थेशतीर्थे सततानुरक्ता मेधाविमेधाविधिसिद्धिहेतुः ॥२७॥
एवं श्रीजिननायकाः स्तुतिपथं नीताश्चतुर्विंशतिः
श्रीनाभेयमुखाः सुखाय सुमुखा देवार्यदेवान्तिमाः ।
सूरिश्रीविजयप्रभप्रभुपदप्राप्तोदये सन्त्वमी
मेघाख्ये सकृपाः **कृपादिविजय**प्राज्ञेन्दुशिष्ये मयि ॥२८॥

इति चतुर्विंशतिजिनस्तवः ।

* * *

मगसी-पार्श्वनाथ स्तवनम्

श्री मगसीपुर पास आस पूरण सुविलास
महिमा महिमनिधांन ध्यांन गुणनो आवास ।

प्रणम्यां पाप पलाय जाय राय मांनइं आंण
मंगल कमला कुल कलोल त्रिभुवननो भांण ॥१॥

धरणेसर नागिंददेव पउमावइ माय
अहनिस सेवइं भावसुं ए भगवानना पाय ।
सेवकनी सोभा करइं अे धन धन्न समप्पइं
दुज्जण कोर मरोर रोर जन रज्जइं थप्पइं ॥२॥

अविचल कीरति तास खास आगास अगासइं
जिनवर नाम जंपत संत त्रिण भुवने भासइं ।
दुट्ठ महाभय अट्ठ कट्ठभर दूरइं नासइं
अमर तणी परि भोग लोग पामइं उल्लासइं ॥३॥

हयवर गयवर गाजता अे छाझइं दरबारइं
गुणिअण गावइं गीत प्रीति पसरइं जगसारइं ।
भीम भवोदधि जिनवरू अे प्रवहण जिम तारइं
निर्मल रूप अनूप भूप सहु जिन संभारइं ॥४॥

पास यक्ष वइरुट्टदेवि जय विजया देवी,
सेसनाग बहुरागसुं जे अहनिश रहइं सेवी ।
मेघविजय कहइं नित्त चित्त ध्याउ प्रभु एह.
संपद पदवी राजलच्छि पामउ ससनेह ॥५॥

इति मगसीपार्श्वस्तवनम् ॥

पं. जयविजय अने वा. कल्याणविजय द्वारा प्रेषित

श्रीविजयसेनसूरिजी उपरना बे पत्र-लेखो

– सं. मुनि सुयशचन्द्र-सुजसचन्द्रविजय

[नोंध : विजयसेनसूरि महाराजना जीवननी एक महत्त्वपूर्ण घटनानुं, संक्षेपमां तेमज विस्तारथी, वर्णन करती बे रचनाओ अहीं आपी छे. रचनाओ सं. १६५६नी छे, तेथी अे ज वर्षमां आ घटना घटी होय तेम समजवुं योग्य लागे छे. हीरविजयसूरि-पोताना गुरु सं. १६५२ मां स्वर्गे संचर्या. त्यार बाद सेनसूरि गच्छपति थया. पण तेमने पोताना गच्छना भावी अंगे तीव्र चिन्ता हशे एटले तेमणे आगामी गच्छपति के पट्टधर कोने बनाववा ते विषे चिन्तन अने प्रयत्न शरु कर्या हशे. गच्छमां योग्य, विद्वान् अने गुणवन्त, शिष्यो के उपाध्यायो/पण्डितोनी संख्या मोटी हती ज. तेमांथी निष्पक्षपणे कोने पसंद करवा, अने कोना थकी आ गच्छ सलामत, अखण्ड अने समृद्ध रहेवानो, ते वातनो निर्णय थाय तो ज तेमनी चिन्ता सफल थाय.

आ माटे तेमणे पोतानी मतिकल्पना पर मदार न राख्यो. पोते निष्पक्ष निर्णय लेवाने सक्षम हता, अने तेमनो निर्णय आखा गच्छने मान्य बनवानो तेनी खातरी पण हती, छतां तेमणे जाते कोई निर्णय न लेतां पारम्परिक पद्धति के प्रक्रियानुं आलम्बन लीधुं.

गुरुपरम्परा ए हती के गच्छनायक गुरु ९० लगभग दिवसनी सूरिमन्त्राराधना करे, एकान्तमां, एक ज स्थाने. तेना प्रभावे सूरिमन्त्रना अधिष्ठाता देव 'गणिपिटक यक्षराज' तेमने दर्शन आपे अने काम पूछे, त्यारे गुरु तेमने पूछे के मारा उत्तराधिकारी तरीके कोण योग्य जणाय छे ते सूचवो. तेना जवाबमां ते देव जे मुनिनुं नाम सूचवे ते गच्छपति तरीके मनोनीत थाय. हीरसूरि दादाए विजयसेनसूरिनी नियुक्ति आ रीते करेली. तेथी तेओ पण ते पद्धतिने अनुसर्या.

तेओ लाडोल गामे पधार्या छे. त्यां छट्ठ (२ उपवास), अट्ठम (३ उपवास), उपवास, आयम्बिल, नीवी वगेरे तप सहित त्रण मास सुधी तेमणे मन्त्राराधना करी. ते दरम्यान श्रावकसंघे धूप-दीप-अमारिप्रवर्तन आदि धर्मकृत्यो तथा पूजाकर्म द्वारा तेमनी साधनामां बळ पूर्युं. त्रण मासने अन्ते यक्षराज साक्षात् आव्या अने

'**विद्याविजय**'ने भावी पट्टधर बनाववानी भलामण करी. आ **विद्याविजयजी ते विजयदेवसूरि**, जेमने नामे '**देवसूर**' एवी गच्छने ख्याति सांपडी.

अत्रे आपवामां आवेल बे कृतिओ पैकी विस्तृत वर्णनात्मक कृतिमां शरुआतना पांच दूहा अने ११ कडीओमां आ ऐतिहासिक घटनानुं आलेखन थयुं छे. ते पछीनी समग्र रचना **जेसंगजी** एटले के **विजयसेनसूरि**ना गुणवर्णनथी ज सभर छे. बन्ने कृतिओमां तेमने 'जेसंगजी' नामे ज उल्लेखवामां आव्या छे. तेमनुं नाम ते हतुं, ते नामे ज तेमना गुरु तेमने बोलावता, अने संघ पण तेमने ते नामे ज वर्णवतो. बीजी ढाळमां **पिता कमा** अने **माता कोडाई**नो पण उल्लेख मळे छे.

बे पैकी प्रथम, विस्तृत कृति ते वस्तुतः 'पत्र'-लेख छे. त्रीजी, खरी रीते चोथी, ढाळना आरम्भे लेखक कवि गुरुने 'त्रम्बावती' पधारवानी विनंति करे छे. अर्थात् खम्भातमां विचरता कवि लाडोलमां घटेली घटनानुं अहेवालात्मक बयान आपवापूर्वक आ पत्र गुरुने पाठवता जणाय छे. वर्णन परथी एम लागे के कवि ते प्रसंग बन्यो त्यारे त्यां-लाडोलमां हाजर होवा जोईए. अथवा तो ते प्रसंग जाण्यो होय अने वर्णनने काव्यबद्ध के पत्रबद्ध कर्युं होय ए पण शक्य छे. छेल्ली ढाळमां १३ मी कडीमां विजयदेवसूरि एवुं नाम स्पष्ट नोंधेल छे ते जोतां लाडोलनो प्रसंग १६५६ पूर्वे ज बन्यो होय अने ते पछी बहु नजीकना समयमां विद्याविजयने आचार्यपद आपीने विजयदेवसूरिरूपे स्थापी दीधा होय, ते वात वधु सम्भवित लागे छे. ते विना १६५६ना पत्रमां आवो उल्लेख न थई शके.

बन्ने पत्रलेखो सं. १६५६ना ज लखायेला होवानुं ते पत्रोनी अन्तिम ढाळनी कडीओमां ज स्पष्टतः नोंधायेलुं छे. विस्तृत पत्र वाचक कल्याणविजय-शिष्य जयविजये खम्भातथी पाठव्यो छे, अने लघु पत्र वा. कल्याणविजये सूरतथी पाठव्यो छे. एक ज वर्षना जुदा जुदा महिनामां, जुदा जुदा क्षेत्रेथी, गुरु अने शिष्य बन्ने, एक ज विषयने वर्णवता पत्र लखे, ते पण एक विलक्षण बाबत गणाय.

आ बन्ने पत्रोनी जेरोक्स मुनि सुयश-सुजसचन्द्रविजयजीने ला.द. विद्यामन्दिरमांथी त्यांना संचालक जितुभाई पण्डित द्वारा प्राप्त थई छे, अने ते परथी तेमणे सम्पादित करेली वाचना अत्रे प्रस्तुत छे.　　　　– **शी.**]

*

(१)

ऐँ नमः ॥ राग-देसाख ॥

दूहा : स्वस्तिश्री जिनवर तणा, पदपंकज प्रणमेवि,
लेख लिखुं सुहगुरु भणी, मनि धरी सरसति देवि. १
गुज्जर *धर सोहाकरू, नयर निरुपम नाम,*
लाडुल अतिहिं प्रसिद्ध छइ, सकल-लच्छि-सुखधाम. २
घणुं कहिसिउं अलकापुरी, समवडि सोभा जाणि,
धरमवंत श्रावक वसइ, वहि सिर जिणवर आणि. ३
श्रीविजयसेनसूरीसरू, संघ मनि पूरइ आस,
सयल देस पावन करी, रहइ तिहां गुरु चउमासि. ४
सासनपति संघ हित भणी, करइ अनोपम काज,
परम-पटोधर थापिवा, ध्यान धरइ मुनिराज. ५

॥ देसाखनी चाल ॥

सकल सजाई पूरण करी, मनि धरी आणंद,
सूरिमंत्र आराधवा, ध्यान बइसइ मुणिंद. १
भावि पटोधर चींतवी, दृढ आसन कीध,
जाप जपइ निश्चल थई, होइ एकमनां सीध
भावि पटोधर चींतवी [आंचली]
कृष्णागर-धूप महमहइ, मृगमद घनसार,
श्रीगुरुभगति करइ भली, श्रावक सुविचार,
भावि पटोधर..... २
मारि निवारी देसमां, दाखी साहि फुरमान[१],
व्यसनादिक सवे टालीआं, देई बहुमान. ३
सामीवच्छल हुइ नित नवां, दीइ दान प्रवाह,
घरि घरि उछव अति घणां, करइ मनि उच्छाह. ४
छट्ठ-अठम-नीवी तप करइ, आंबिल उपवास,
इणी परि मंत्र उपासतां, हूआ त्रण मास. ५

मंत्राधिप सूरिं जाणीउं, तप तणुं परिमाण,
चलतकुंडल-भूषणधरो, तेजइं करी भाण. ६
प्रकट रूप करी आपणुं, आवी **जख्यराज**,
निश्चल मन निरखी कहइ, प्रणमी गुरुपाय. ७
हुं तुठउ तपगछधणी, करुं सानिधि आज,
जे तुम मनिं मनोरथ अछइ, करुं ते सुभ काज. ८
विद्याविजय वासव समु, मुनिमंडलीमांहिं,
दीठउ मइं गुणि आगलु, दीजइ पदवी तांहिं[२]. ९
दिन दिन उदय होसइ घणु, जिम चढतु दिणंद,
वचन कही सुर सांचर्यु, धरइ हरख मुणिंद. १०
नेऊ दिवस तप-जप करी, पारी ततख्यण ध्यान,
महोल पधारइ **जेसंगजी**, करइ सुर नर मान. ११
देस देसइं वधामणी, प्रसरी पुर गामि,
रंगइं संघ आवइ घणा, दिस दिसथी तांम. १२
पूजइ प्रणमइ भावसिउं, करइ उछव सार,
दिन दिन गुरुमहिमा घणुं, हुइ जय-जयकार. १३

॥ प्रथम ढाल ॥ राग - आसाउरी सींधुओ ॥

दूहा : जेसंगजी मुख जोयता, हिअडूं करइ हींसोर[३],
नलिनी जिम रवि दीठडइ, जिम वली चंद चकोर. १
सकलसूरिसिरोमणी, समतावेलीकंद,
जेसंगजी गुरु वंदिइ, नित घरि हुइ आणंद. २
जेसंगजी गुणमालती, मुझ मनमधुकर लीन,
हरखइं गुंजारव करइ, दिन दिन होवत पीन. ३

चाल - आसाउरीनी ॥

श्रीमती तत्र गुरु गुणनि(नी)लु, जाणि सोहम सम अवतारोजी,
तारोजी, भविअणनइं भवसायरुजी,

साह कंमा कुलि मंडणु, **माता कोडाइ**-कुखि अवतरीओजी,
भरीओजी, सकल गुणे करी गछपती(ति)जी. १
मूरति मोहनवेलडी, अति सुंदर मस्तक सोहइजी,
मोहइजी, अर्ध ससी सम निलवटीं[४]जी,
सुभकर श्रवण निहालीइ, आणइं मयण तणा हींचोलाजी,
लोलाजी, एक जते[भे[५]] किम व्रणवीई[६]जी. २
मयणबाण जिसी भमुहडी, वली नासा अति अणीआलीजी,
रलीआलीजी, आंखि जिसी कजपांखडीजी,
जीभ अमीअनु कंदलु, जूओ वदन अनोपम चंदजी,
अमंदजी, भविकचकोर आणंदकरुजी. ३
दंतपंति हीरा जसी, वर अधर प्रवाली रंगोजी,
चंगोजी, मुखनिस्वास चंपकसमुजी,
कपोलफलक विकसी रह्यां, जाणइं अइरावण गजकेरांजी,
मेरांजी, देखी नयण आणंदीयाजी. ४
कंठ ते कंबु[७] सरिसु कहूं, आजानु प्रलंब भु[ज]दंडजी,
अखंडजी, जस प्रताप जगमां घणुजी,
कमलनाल जिसी बाहडी, अनइं आंगुलडी अति सरलीजी,
नहीं विरलीजी, कुंअली तरुपल्लव जिसीजी. ५
हृदयकपाट सुघट घड्युं, अतिउन्नत नइं सुविसालजी,
आबालजी, सुर नर भेदी नवि सकइजी,
नाभि गंभीर रदै मनोहरु, जाणि कमलातणुं निवासजी,
आसजी, पूरइ त्रिभुवनजन तणीजी. ६
चरणकमल अति दीपतां, जाणि अविचल मेरुगिरिंदजी,
सुरिंदजी, चालि जिम गज मलपतुंजी,
लख्यण बत्रीस अंगइ ध[र]इ, विद्याइं सुरगुर तोलइजी,
बोलइजी, वाणी मुखि अमृत जिसीजी. ७
कनकवरण सोहइ सदा, अति सुंदर तनु सुकुमालजी,
आलजी, रूपतणु ए गणधरुजी,

सीलसनाह[८] अंगइं धरइं, वलि मोहरायबल जीपइजी,
दीपइजी, तपतेजइ जिम दिनकरुजी. ८
जाणी योग्य गुरु हीरजी, जेणिं परम पटोधर कीधजी,
दीधजी, निज संपद सघली भलीजी,
श्रीविजयसेनसूरिराजीओ, जस सेना अति बलवंतीजी,
कलवंतीजी, कीरति चिहुं खंडि विस्तरीजी. ९
आणा सहुको सिर धरइ, कोइ वादी वाद न मंडइजी,
छंडइजी, सीह थकी जिम गजततीजी,
जेसंगजी अभिनवु हीरलु, भलु परिख्यु **अकबरभूप**जी,
सुरूपजी, रिदयकोसमां राखीइजी. १०
इम सकल गुणे करी सोभतु, जस महिमा अति अभिरामजी,
नांमजी, जपइ निरंतर भविअणोजी,
श्री**विजयसेन**सूरीसरू, सवे सुंदर परीकर सही तजी,
महीतजी[९], सुर-नर-विद्याधरपतीजी. ११
अधिक हरख मनमां धरी, वली करी मनि अति उल्लासजी,
दासजी, चरणरेणु समाणडुजी,
द्वादसव्रत वंदन करी, बहू हीअडइ आणंद पूरीजी,
सूरीजी, कर जोडी विनति करुंजी. १३
यतः इहां खेम-कुशल अछइ, सुचि[१०]गुरुचरणप्रसादइंजी,
आल्हादइंजी, धर्मकार्य सवि हुइ भलांजी,
तुह्म तनु खेम-कुशल तणा, उर धर्मध्यान सुविशेषजी,
लेखजी, दीजइ निज सेवक भणीजी. १४

ढाल - बीजी ॥ राग-रामगिरी ॥

दूहा : **जेसंगजी** गुण ऊजला, गंगाजलधी जोइ,
जय जंपइ मनि चींतीइ, काया निरमल होइ. १
जेसिंगजी गुणवेलडी, मनि चींतित फल दिंति,
जय कहि मुझ मन-मंडपइ, मोद करइ प्रसरंति. २

अनुदिन समरुं हिअडलइ[११], जेसंगजी तुह्म नाम,
पाप-ताप सवे उपसमइ, सीझइ वांछित काम. ३

ढाल ॥

सुगुरु अवधारु एक वीनती रे, श्रीविजयसेनसूरीराय रे,
गछ गछ गछपतीछइ घणा रे, पण ते मुझ दीठा न सोहाय रे,
जेसंगजी वांदेवा मन मोरूं रमइ रे, वली वली भमइ तुह्म पासि रे,
मधुकर मोह्यु जिम मालती रे, निरखी निरखी पामइं उल्लास रे. १
जेसंगजी वांदेवा मन मोरूं रमइ रे [आंचली]
मुखि नइं जापूं रे गुण तुह्म तणा रे, नित ऊठी करुं हुं प्रणाम रे,
तुह्मनि ऊपरिं अणुरागडउ रे, अवरसिउं नहीं मुझ काम रे. २
राति-दिवस नाम ऊचरुं रे, नित वहुं रिदय मझारि रे,
दीठा विण तोष न ऊपजइ रे, वाल्हेसर जेसंगजी गणधार रे. ३
जेणि नइं रयणायर सेवीउ रे, ते नर किम वाहलीया[१२] सेवंति रे,
जेणिनइं अमृत आसवादीयां रे, ते किम कुही[१३] कांजीइं राचंति रे. ४
जेणिनइं चिंतामणी पामिउ रे, काच कुण लीइ निज हाथि रे,
जेणिनइं [रे] सुरतरु सेविओ रे, कुण ते दीइ बाउल बाथ रे. ५
जेसंगजी वांदेवा जु वली पामीइ रे, तु कुण नमइं अवर सूरीस रे,
चंपक-गुलाल कुसुम लही रे, आउली[१४] कुण वाहइ निज सीस रे. ६
तुह्मनइं वांदेवा काजइं अलजयुं[१५] रे, पूरइं प्रसरइ मोरूं चित्त रे,
तिम जु प्रसरंती वा'ला[१६] पांखडी रे, तु हुं ऊडी मिलउं नित नित्त रे. ७
ध्यान तुह्मारुं मोरइ चिंतडइ, गुण सुणतां सुख थाय रे,
नाम पवित्र जपइ जीभडी रे, नयणां जोवा वली वली धाय रे. ८
आपि न हंसा तोरी पांखडी रे, वासग[१७] तूं आपि न जीह रे,
जईनइं प्रणमी गुण गाईइ रे, सफल करुं मुझ दीह रे. ९
करुं[१८]नइं विधाता तुझनइं लुंछणां[१९] रे, घडीउ जेणि सुहगुरुघाट रे,
जगनइं ते भूषण जेसंगजी थयुं रे, सोहाविउ हीर तणुं पाट रे. १०
जेसंगजी गुरु गुण ताहरा रे, हीअडइ न वसीअला[२०] जाहं[२१]रे,
पसूअ तणी परइं जाणीइ रे, जनम गयु मुधां ताह[२२] रे. ११

हेजइंनइं हीअडूं वाला ऊलसइ रे, जेसिंगजी तुम तणि नामि रे,
मेघ गाजंतइ जिम मोरनुं रे, चैत्र मासइं जिम ते आराम[२३] रे. १२
मांडीजइ सरसव अेटलु रे, पालीजइ मेरु समान रे,
श्रीगुरु तणुं रे सनेहलु रे, जिम ते जेठ मासि ऊधांण रे. १३
नेहरयण रूडइं राखीइ रे, जिम न पडइ ते वीसार[२४] रे,
छल[२५] जोईनइ चोरइ रखे रे, दुरिजन चोर संसार रे. १४
रखेनइं वीसारुं वाल्हा वीनती रे, तुम्ह तु करुणा परगल धार[२६] रे,
थोडइ निं कहइं घणुं जाणिवुं रे, लिखत न आवइ पार रे. १५
गाम-नयर पुर देसमां रे, जिहां आपणुं नहीं कोइ रे,
जय जंपइ नांम तुह्म तणु रे, सघलइ सखाई होइ रे. १६

ढाल - त्री(तृ)तीया ।।छ।। राग-गुडी ।।

दूहा : जेसंगजी गुण ताहरा, गुणत न आवइ पार,
गुणतां सुरगुरु मूंझीइ, उर[२७] कवि कुण विचार. १
वली वली जोऊ वाटडी, जय जंपइ गुणगान,
अधर अध्यातम मेलीयां, जेसंगजी तुह्म ध्यानि. २
जेसंगजी तुह्म वीनवुं, सींचनि दरसन मेह,
दुरित ताप सवि उपसमइ, वाधइ अधिक सनेह. ३

सुहगुरुजी मानु रे मानु रे बोल०

परम पटोधर हीरनाजी, वीनतडी अवधारि
नयरी त्रंबावती ईहां अछइजी, अमरापुरी अणुंसारि
जेसंगजी, आवु आणइं रे देस, [जेसंगजी], पगि पगि नयर निवेस,
जेसंगजी, वल्लभ तुह्म उपदेस, जेसंगजी, होसइ लाभ विसेस.
जेसंगजी, आवु आणि रे देस [आंचली] १
पोढां मंदिर मालीयांजी, उंचां पोल पगार,
वाणिज करइ व्या[पा]रीआजी, जिहां नहीं चोर वखार[२८]. २
जिनप्रासाद सोहामणाजी, उत्तंग अति अभिराम,
ध्रमसाला[२९] चित्रकारिणीजी, भविअणजन विश्राम. ३

धनद समा धनवंत वसइजी, सुसनेही बहु लोक,
घरि घरि नारी पदमिनीजी, मुदित सदा गतशोक. ४
श्रीजिनवचनइं रातडाजी, श्रावक समकितधार,
दान मान गुणे आगलाजी, सुभिख्य[३०] जिहां सुविहार. ५
रयणायर रयणि भर्युजी, गाजइ गुहिर[३१] गंभीर,
विविध क्रियाणां[३२] ऊत[र]इजी, प्रवहण वहिइ जस तीर. ६
वाडी वन रुलीआमणांजी, पगि पगि निरमल नीर,
द्राखइं मंडप छाहीयां[३३]जी, मधुर लवइ पिक कीर[३४]. ७
कदली नागरवेलीनाजी, मंडप सोहइ जांहिं,
चंदन चंपक केतकीजी, मारगि सीतल छांहिं. ८
दूधइं पाय पखालसिउंजी, अरचूं सोव्रण फूलि,
चंदन छंटा देवारसिउंजी, पथरावुं पटकूल. ९
कमला समरइ कान्हनइंजी, सीता समरइ राम,
दमयंती नलरायनइंजी, तिम भविअण तुह्म नाम. १०
नादइं सुर नर मोहीयाजी, मानसरोवरि हंस,
जेसंगजी जग मोहीओजी, जिम गोपी हरीवंसि. ११
मेह हुइ सघलइ वरीसणां[३५]जी, न जूइ ठाम-कुठाम,
सेलडी सींचइ सर भरइजी, सींचइ अरथ आराम. १२
आक धंतूरा किम गमइजी, जे आंबारसलीण,
कुण कर घालइ कइरडइ[३६], चंदन दीठां जेणि. १३
जे अलजु मिलवा तणुजी, ते किम टलइ संदेसि,
जल पीजइ सुपनंतरइंजी, त्रस[३७] छीपइ किसरेसि[३८]. १४
मात-पिता-बंधव थिकीजी, वल्लभ प्राणआधार,
तुह्म सरीखा वाल्हेसरजी, अवर न को संसारि. १५
तुह्म गुणसंख न पामीइजी, मुझ मुखि रसना एक,
कागल मिसि नहीं तेटलांजी, किम लिखीइ तुह्म लेख. १६
भविक जूइ तुह्म वाटडीजी, कीजइ पर ऊपगार,
जय जंपइ सुमया करीजी, पउधारु[३९] गणधार. १७

॥ इति लेखे चुथी ढाल ॥ छ ॥

॥ राग-मेवाडउ धन्यासी ॥

दूहा : जंगमतीरथ जेसंगजी, थावरतीरथ सत्रुंजि,
जय जंपइ नित वंदीइ, वारण भवह निकुंज. १

वन वाडी तरुअर घणा, पणि कोइलि मनिं अंब,
तिम जेसंग मझ मनिं वस्युं, जिम चकवी रवीबिंब. २

महीअलि सूरि अछइ घणा, पणि तइं वाली लीह,
जय जंपइ जेसंगजी, कुमतिमतंगजसीह. ३

ढाल ॥

श्री**हीरविजय**सूरिंद, तस पाटि गयणदिणंद,
पापतिमिरहरुजी, **जेसंगजी** गणधरूजी. १
धिन्न दिवस वेला धिन्न, वांदीइ गुरु सुप्रसन्न,
सकल सूरीसरुजी, महा मुनीसरुजी. २
सहिगुरु न वीसरीआंह, विलगुअछुं[४०] तुह्म बाह,
भवभय वारीइजी, पार ऊतारीइजी. ३
जाणजो अविचल नेह, छांडइं न छूटइ तेह,
करुणा कीजीइजी, शिवसुख दीजीइजी. ४
तुं जगि **सवाई हीर, जेसंगजी** गुणधीर,
लेख विचारीइजी, सेवक संभारीइजी. ५
कागल जु महीअल थाइ, लेखणि जु हुइ वणराइ,
जलधि मसिभायणूंजी[४१], तु[४२] तुह्म गुण गणूंजी. ६
कहयुं अधिक ओछूं जेह, प्रेमतणिं वसि वली तेह,
खमजो बोलडाजी, नेह हुइ गहिलडांजी[४३]. ७
वाचकविभूषण जाण, रूअडूं ते नाम **कल्याण**,
सुभगसिरोमणीजी, अचिंत चिंतामणीजी. ८
जयविजय पभणइं दास, पूरीइ भवीअण आस,
वयण अवधारीइजी, वेगिं पधारीइजी. ९
आवता को कहि आज, जेसंगजी गुरुराज,
समतारस भर्युंजी, सुविहित परिवर्युंजी. १०

दीजइ वधाइ तास, मणि रयण सोव्रणरास,
गुरु भगतिं करीजी, मनिं ऊलट धरीजी. ११
मुझ मनिं मनोरथ पूग, हवइं टली भवभयलूग[४४],
श्रीगुरुदरसणिंजी, जिम घन वरसणइंजी. १२
थिरपालसुत सुखकंद, थापिओ पटि मुणिंद,
श्री**विजयदेवसूरी**सरुजी, सयल संघ सुखकरुजी. १३
इमं वीनवइ तुह्म बाल, जाणजो वंदन त्रिकाल,
सेवक जन तणीजी, आसा पूरणीजी. १४
संवत सोल वखाण, छप्पना (१६५६) वर्ष प्रमाण,
फागुण निरमलुजी, चउदिसि दिन भलुजी. १५
मइं रच्युं लेख ऊदार, भणिं गुणिं जय-जयकार,
प्रतिपुं तिहां लगइंजी, रवि-ससि जिहां लगइंजी. १६

॥ श्रीविजयसेनसूरिलेखकृतो गणि **जयविजयेन** लिखितोऽपि च गणि व्रिवेकविजयपठनार्थम् ॥ कल्याणमस्तु ॥

शब्दकोश

१. फुरमान = फरमान
२. तांहिं = त्यां
३. हींसोर = हर्षनाद
४. निलवटी = कपाट, ललाट
५. जभे = जीभथी
६. व्रणवीइ = वर्णवीश
७. कंबु = शङ्ख
८. सनाह = बखतर
९. मही(हि)त = पूजायेल
१०. सुचि = पवित्र
११. हिअडलइ = हृदयमां
१२. वाहलीया = व्हेलुं
१३. कुही = कोहवायेली
१४. आउलि = आवळ
१५. अलजयुं = उत्कण्ठा
१६. वा'ला = वाहला
१७. वासग = वासुकी नाग
१८. करुंनइ = करुं ने
१९. लूंछणा = ओवारणा
२०. वसीअला = वस्या
२१. जाह = जेना
२२. मुधां = फोकट
२३. आराम = बगीचो
२४. वीसार = भूली जवुं
२५. छल = कपट
२६. परगलधार = घणी धारे
२७. उर = बीजा
२८. चखार = धुतारा

२९. ध्रमसाला = धर्मशाळा
३०. सुभिख्य = सुकाळ
३१. गुहिर = ऊंडुं
३२. क्रियाणां = करियाणा
३३. छाहीया = छवाया
३४. पिक कीर = कोयल पोपट
३५. वरीसणा = वरसवुं
३६. कइरडइ = केरना झाडमां
३७. त्रस = तरस
३८. किसरेसि = केवी रीते
३९. पउधारु = पधारो
४०. विलगुअछु = वळगु छुं
४१. भायणूं = भाजन
४२. तु = तो
४३. गहिलडा = घेलो
४४. लूग = लू

*

(२)

ॐ नमः ॥ राग - आसाउरि सींधुओ ॥

दूहा : विवेक कहि सुर-नर बहु, पदपंकज प्रणमंति,
पाटि पटोधर थापिवा, श्रीगुरु ध्यान धरंति. १
मोरइ अंगणि थुलभद्र आव्या रे बहनी ए ढाल ॥
स्वस्तिश्री गुज्जर धर-धरणी, जिहां विचरइ गुरु गुणवंत,
युगहप्रधान **विजयसेन**सूरी, दिन दिन महिमावंत. २
जेसंगजी आवो आणइ देसि, अह्म वाहालु तुह्म उपदेस के गुरुजी,
इम भगति लेख लखेस जेसंगजी, अवधारो मुझ संदेस के गुरुजी. ३
आवो आणइ देसि [आंचली]
नयर अनोपम **लाडोलि** कहीइ, जीहां गुरु बइठा ध्यानि,
उपवास आंबिल नीवी तपइ सूरी, मंत्र साधइ प्रधान. ४ जेसंगजी.....
देशमांहि अभयदान देवारि, जाप जपइ भगवंत,
कृष्णागर तिहां धूप उखेवइ, आराधइ सूरिमंत. ५ जेसंगजी.....
गुणे आकर्ष्यो सुर ती[हां] आव्यो, वाणी बोलइ जख्यराज,
जे कार्जि तुह्मे मुझनइं समर्यो, ते होयो वंछित-काज. ६ जेसंगजी.....
विबुध विद्याविजय गुणवंत, तेहनइं निज पद आपि,
दिन दिन अधिक उदय छइ एहनुं, संघहितनइं सुरतरु थापि. ७ जेसंगजी....
परतकि[1] रूप देखाडी प्रणमी, सुर पुहतो निज ठामि,
सूरीस्वर तेणे वचने हरख्या, करइ जिनसासन काम. ८ जेसंगजी.....

जिनप्रासाद उत्तंग मनोहर, उपद्रव नहीं लवलेस,
भव्य प्राणी बहु धरम करंता, एहवो छि आ देस. ९ जेसंगजी.....
शी(सी)ता मनि जिम राम ज वसिओ, गौतम मनि महावीर,
तिम तुं मोरा चित्तमां वसिओ, सुंदर साहसधीर. १० जेसंगजी.....
वसंत आवइं जिम कोयल हरखइ, चंद देखी रे चकोर,
तिम तुं जलधर अहिआं आवइं, हरखइ भविजन-मोर. ११ जेसंगजी.....
रवि ऊदइं जिम पंकज विकसइ, चक्रवाकी हरख न माय,
तिम तुझ दीठिं मुझ मन विसइ, जोतां त्रिपति न थाय. १२ जेसंगजी.....
चातुक जिम घनाघन समरइ, सती समरइ भरतार,
तिम हुं तोरा गुणगण समरी, सफल करुं अवतार. १३ जेसंगजी.....
शशी दीठिं जिउं जलनिधि उलसइ, मेहिं वन उलसंति,
तुझ देखि मुझ मानस उलसइ, वसिओ मोरइ चित्त. १४ जेसंगजी.....
मलयाचल जिम चंदनइं भरिओ, रोहणगिरि मणिधाम,
तिम तुं निरमल गुणे करि भरिओ, सुखकरु ताहरुं नाम. १५ जेसंगजी.....
मनोहर मधूइं काम दीपाव्यो, समुद्र दीपावन चंद,
तिम तिं **हीरजीपाट** दीपाव्यो, मोहनवल्लीकंद. १६ जेसंगजी.....
कंसविदारण विष्णु विख्यातो, अहनिसि अकल अबीह,
तिम तुं सूरी(रि)शिरोमणि जाणुं, मदनविदारण सीह. १७ जेसंगजी.....
हृदयभूषण नवसर हार, सिरभूषण अवतंस,
करभूषण बाजुबंध रंगीला, तुं भूषण **उसवंस**. १८ जेसंगजी.....
चोलमजि(जी)ठनओ रंग ज रातो, रवि रातो परभाति,
चरणकमल हुं तोरइ रातो, जसी पटोलइ[२] भाति. १९ जेसंगजी.....
मोरइ मनि तुं सहगुरु वसीओ, अवर ना नामुं सीस,
तुझ दीठिं दुःख दूरिं जाइ, पोचइ मनह जगीस. २० जेसंगजी.....
अक्षर बावन गुण रे अनेक, लखतां नावइ पार,
तोरा गुण तो वर्णवि न सकइ, जीहां[३] होइ हजार. २१ जेसंगजी.....
मति अनुसारइं मइ सुभ वारइं, लेख ज लखीओ एह,
वी(वि)स्तारीनइं वांची जोयो, धरयो धरम सनेह. २२ जेसंगजी.....

संवत सोलछप्पन्ना(१६५६) वरषे, पोष सुदि त्रिज जाणि,
सूरति नयरिं विनती कीधी, चित धरो प्रेम ज आणि. २३ जेसंगजी.....
जिहां लगइ रवि-ससी गगनइं विराजइ, सायर न लोपइ लीह[४],
तिहां लगि तुं चिरंजीवे गुरुजी, प्रणमुं हूं निसदीह. २४ जेसंगजी.....
कल्याणकरण **श्रीकल्याणविजय**, गुरु-सेवक प्रणमइ पाय,
कहइ दृष्ट लेखि गुरुजी पधारइ, सयल संघ सुख थाय. २५ जेसंगजी.....

॥ इति श्रीश्रीश्रीश्रीश्री**विजयसेनसूरी**स्व(श्व)राणां लेखः समाप्तः ॥
गणि गुणविजयलखितम् । श्राविका जयंतबाई पठनार्थम् ॥

शब्दकोश

१. परतकि = प्रत्यक्ष
२. पटोलइ = पटोळामां
३. जीहां = जिह्वा
४. लीह = मर्यादा

एक नोंध

'जैन परम्परानो इतिहास-४' (पृष्ठ २२६ तथा २९०) प्रमाणे, सं. १६५५मां विजयसेनसूरिनुं चोमासुं अमदावादमां थयुं. ते ऊतर्ये १६५६मां मागशरमां विद्याविजयजीने पं. पद आप्युं. ते पछी लाडोल जई ३ मासनी सूरिमन्त्रनी आराधना द्वारा देवने प्रत्यक्ष कर्या अने पछी विद्याविजयजीने उपाध्यायपद आप्युं. ते पछी वैशाख शुद ४थे खम्भातमां तेमने सूरिपद आपी 'विजयदेवसूरि'नामे स्थापित कर्या. आमां तेमणे लाडोलमां चोमासुं कर्युं एवी वात नथी. ज्यारे पं. जयविजयजीना पत्रमां 'रहइ गुरु चउमासि' एम निर्देश मळे छे, आनो अर्थ तेओ लाडोलमां ४ महिना रोकाया हता - एवो थई शके; चातुर्मास कर्युं एम न कही शकाय, एम लागे छे.

बीजुं, आचार्यपद वैशाखमां थयुं छे, ने अत्रे प्रगट थता बेय पत्रो पोष अने फागणमां, खम्भात तथा सूरतथी पाठवायेला छे. पत्रोमां 'विजयदेवसूरि' एवो उल्लेख पण जोवा मळे छे. तो पदवी अने नामाभिधान थया पूर्वेना पत्रोमां आवो उल्लेख केवी रीते थयो हशे ? एम अटकळ थाय के पत्रो सं. १६५६ना नहि, पण १६५७ना होवा जोईए; अथवा तो कांई लेखन-क्षति होवी जोईए. ए सिवाय कोई खुलासो सूझतो नथी. — शी.

मेघकुमारना बारमासा

– सं. अनिला दलाल

'बारमासा'नो काव्यप्रकार मध्यकालीन साहित्यमां खूब खेडायो छे. अेनुं मुख्य लक्षण 'विरह-काव्य' छे. ऋतु प्रमाणे दरेक मासमां नायक के नायिकाना विरह साथे करुणरसनुं निरूपण होय छे. जैन साहित्यमां नेमि-राजुल अने स्थूलिभद्र-कोशाना कथानकना आलम्बनथी बारमासानी घणी रचनाओ थई छे. अहीं काव्यने अन्ते उपदेशवचनो तेमज संयम तरफनी गति निर्देशाय छे.

'मेघकुमार बारमासा'मां मेघकुमारना मनमां श्रीवीरजिनना उपदेशथी वैराग्य उद्‌भव्यो छे त्यारथी आरम्भ थाय छे. व्हाला पुत्रने माता विनंती करे छे के बार मास सुधी संसार-जीवनना अनुभवो लई पछी संयम-पथे विहरवानुं नक्की करजे, 'सुसनेहा नंदन!'. माता प्रत्येक मास प्रमाणेना सांसारिक जीवननी गतिविधिनुं मोहक वर्णन करे छे; पुत्र प्रत्युत्तरमां ते वर्णननी तुलनामां बराबर सामेना अभिगमने, संयमजीवनननी आन्तरिक उपलब्धिओ अने समृद्ध अर्थपूर्णताने उद्‌घाटित करतो जाय छे; संयमजीवननी गरिमाने सुन्दर शैलीमां आलेखे छे. अन्तमां आपणे जोईअे छीअे के पोताने लागेला निर्वेदना गाढ रंगमांथी मेघकुमार जराये चलित थता नथी, अने मातानी अनुमति लई संयममार्गे प्रयाण करे छे. 'बारमासा' काव्यस्वरूपमां परम्परा प्रमाणे आवतां प्रकृतिवर्णन, नगरवर्णन के नायिकाना सौन्दर्यवर्णन आ कृतिमां थोडा प्रमाणमां जोवा मळे छे; कविनो झोक वधारे तो बोधात्मकता उपसाववानो छे.

कृतिना कर्ता देवजीऋषिना शिष्य धर्मसिंह छे, तेमना नामे घणी मुद्रित-अमुद्रित रचनाओ मळे छे. प्रस्तुत रचना अद्यावधि अमुद्रित होवानुं जणायाथी अत्रे सम्पादित करी छे.

सम्पादन माटे आधारभूत प्रत लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिरना हस्तप्रतसंग्रहनी छे. क्र. ८५४०. त्रण पानानी आ प्रतमां आ कृति पूरी थया बाद जीव-पुद्‌गल-काळना अल्पबहुत्वने लगती चोपाई अने तेनो अर्थ अपाया छे. प्रतना लेखक वेरागी हरिदास जणाय छे. प्रत सम्पादनार्थे आपवा बदल कार्यवाहकोनो आभार.

*

॥ राग-सारंग ॥ हींडोलनानी देसी

श्रीजिनवर पयकमल प्रणमी, पामी सहिगुरु पसाय;
गांउं मेघकुमार केरा, बारमास उछाय..... १
रायगिह नयरि राय श्रेणिक, धारणी तस घरि नारि;
तास नंदन मुकुल चंदन, नामि मेघकुमार..... २
श्री वीरजिनना चरण वंद्या, पाम्या मनि वैराग;
मातनि जई वीनवइ, तव मात कहि धरी राग..... ३
सुसनेहा नंदन मानो रे मेघकुमार... ए आंचली.

दूहो : राग धरी माता कहि, सांभलि मेघकुमार;
बारमास खेली करी, पछि लेज्यो संयमभार..... ४

चित्त प्रमोदइ चैत्र मासि, खेलो बाग मझारि;
मचकुंद पाडल मालती, तिहां मधुकरि रे गुंजार..... ५
सार नीर सुगंधि सीतल, स्वाद त्रिविध समीर;
तेणि दिन साधुनि मलीन गात्रइ, अहोनिस रहिवुं वीर.... ६
सुसनेहा नंदन मानो रे मेघकुमार.....

दूहो : संयम सुन्दर प्रेम रस, नवविधि सीयल वां(बा)ग;
कृपा कमल वर चेत्रमइ, माइ खेलूं जल वैराग..... ७

वैशाख फूल्यो फूटरो, द्रूम धस्यो भर सणगार;
कोयल मधुरा स्वर करि, रस सरस लहि सहिकार..... ८
केशर कस्तूरी कपूर चंदन, घोल लईन शरीर;
अम्बर सघन खण्ड सरसा, तेणि दिन जमो माहरा वीर..... ९
सुसनेहा नंदन मानो रे मेघकुमार.....

दूहो : धर्म तरुवर सत्यफल, कोयल दया सुभाखि;
चन्दन घोल वैराग रस, तेणि टाढो मास वैशाख..... १०

जेठ मासि दिन तपि, तेणि तपइ कोमल काय;
नीरमल वासित नीर जोइइ, जोइइ सीतल छाय..... ११

परघरिं गोचरी करीनि पीवा, उष्ण जल विधिसार;
तुम सकोमल केम भावि, मानो जी बोल बिच्चार..... १२
सुसनेहा नंदन मानो रे मेघकुमार.....

दूहो : जिन वचन सीतल तरु, जिनगुण जल सुखदाय;
सोय जल पीतां झीलतां, जेठ तपइं नहीं माय..... १३

आसाढ मासि मेघ केरी, घटा घन वरसंत;
वीजली झमकि विरह चमकि, मोर मुख विकसंत.... १४

पीउ पीउ शब्द सुणत पंथी, आवि घरि उलसंत;
तेणि दिन निज घर छोडी नंदन, किउं परदेश वसंत.... १५
सुसनेहा नंदन मानो रे मेघकुमार.....

दूहो : परदेशी संसार हि, जिनधर्म हुइं थिरवास;
वल्लभ मन्दिर सोअेछि, तेणि भलो आसाढो मास..... १६

श्रावण आयो रूप लायो, झरमर वरसि मेह;
पय पावडी सरि लाल लोबडि, भीजि नवली देह;
पीउ पीउ शब्द ज़गावी चातुक, वल्लभ उपरि नेह..... १७

धरा पल्लव जलद गजि, मयण बिंदु वरसंत
मनरंग वधि वीर तेणि दिन, राखवुं थिर करी चित्त..... १८
सुसनेहा नंदन मानो रे मेघकुमार.....

दूहो : थिर चित्त हि सीतमइ, वल्लभ जिनसुं रंग;
श्रावण मासि साधुनई, माइ दिन दिन उछरंग..... १९

पंचरूपी भाद्रवइ, वरभर्यां सर जलधार;
द्रुमलता ललितांकुरंकीत, भूमि रंग अपार..... २०

रंग मुझ तुझ वदन नीरखि, तुं मनमोहन वेलि;
प्राणजीवन परमवल्लभ, भाद्रवि भर खेलि..... २१
सुसनेहा नंदन मानो रे मेघकुमार....

दूहो : पंच महाव्रत प्रेमसुं, धरी मनि उछाय;
भाद्रवि जिनवचन सुन्दर, संभलावुं सुखदाय.... २२

मास आसो आवीयो, घरि घरि रंग अपार;
दीपमालिका पर्व आवइ, आवि घरि वहुआरि.... २३

वहु आवइं नि माट लावइ, हरख पामइ माय;
वचन नन्दन मात केरुं, मानोजी ईछाना राय..... २४
सुसनेहा नन्दन मानो रे मेघकुमार....

दूहो : संयम सुन्दर सुन्दरी, वल्लभ लीलविलास;
चित्त धरुं सा वल्लभा, तेणि सुन्दर आसोमास..... २५

कार्तिक मासि कृपासागर, आवइ अन्नप्रवाह;
उच्छाह पामइ मेदिनी, मोहनी मन्य लगाय.... २६

गाय गीत सुरंग सुन्दर, सरस भोजन सार;
साजन पोषो मा संतोषो, हुं वीनवुं वारंवार.... २७
सुसनेहा नन्दन मानो रे मेघकुमार....

दूहो : वल्लभ श्रीजिनराजनी, मधुरस कोमल भास;
आतम अमृत सीचीइं, तेणइ कार्तिके लीलविलास..... २८

मागसिरइ निज मातलडी, निरखई नंदको रूप;
जू चन्द दर्शन कमल विकसइ, त्यु रिध्य फूल अनुप..... २९

मुक्ताफलके हार सोभि, मुद्रिकासु रतन सजन;
आसा पूरी साजन, मानोजी वीर वचन..... ३०
सुसनेहा नन्दन मानो रे मेघकुमार....

दूहो : सत्य वचन मुखि बोलीइं, कीजइं परउपगार;
मागसिर मासि साधुनइ, माइ सोभि अे सणगार..... ३१

पोस मासि पोसीइं, वर कोमल नवली काय;
उष्ण भोजन साक सरसा, जमो करी पसाय..... ३२

उष्ण जल अंघोल मरजन, तेल फूल चंपेल;
मुखवास घोल तंबोल कोमल, पोसीइं सरीरकी वेलि..... ३३
सुसनेहा नन्दन मानो रे. मेघकुमार.....

दूहो : सरीरवेलि इउं सीचीइं, तप संयम रस सार;
क्रोध कषाय नीवारीइं, तेणि पोस मास सुखकार..... ३४

माघ मासि मोहोल केरां, अछि सुख अपार;
नील पीतसु पंच वरणी, पंभरी सुविचार..... ३५

संसारना सुख देखो नन्दन, हठ म करो वीर,
तेणि दिन साधुनि विहार करतां, सीतअे वाहि सरीर..... ३६
सुसनेहा नन्दन मानो रे मेघकुमार.....

दूहो : व्रत मन्दिर संयम सिरि, सेज्य संतोषसुख सुराग;
ऊन मन्दिर मइ खेलति, माइ सीत न लगि माघ..... ३७

फागुण मास वसंत प्रगट्यो, रसीकके मनि रंग;
फाग गावि फूटरां, करि धरी सुन्दर चंग..... ३८

माल लाल गुलाल दीलइ, लइत चूआ चंद;
मनवल्लभ मित्र सरसा, होरी हो खेलोजी नन्द..... ३९
सुसनेहा नन्दन मानो रे मेघकुमार.....

दूहो : ग्यान गुलालि धर्मस्युं, वल्लभ जिनस्युं रंग;
फागुण संघ वसंतमइ, जिन गुण गाउं सुधंग.... ४०
अे बारमास रचनावली, सांभळी मेघकुमार;
जे रंग लागो चित्तस्युं, ते न उतरि रे लगार..... ४१
मात अनुमति लेइ करीनइ, लीधो संयम भार;
अनुत्तर सुख पामीआ, श्रीमुनिवर मेघकुमार..... ४२
गुणवंता सुहिगुर, मेघ मुनि सुखकार;
अे बार मास मेघ मुणिंद केरा, सांभलि सुविचार;
भणइ गुणइ मनि प्रेमसुं, संपति लहइ ते सार..... ४३

मुझ सहिगुरु मुनि **देवजी**, मि पामी तास पसाय;
बारमास मेघ अणगारजीना, गाया मनि उछाय..... ४४
धर्म्मसिंघ मुनि भणइ भावइ, **उदयपुरि** मझारि,
श्री जीनशासन चिरं प्रतपो, संघ सहु जयकार..... ४५

इति श्री मेघकुमारना बारमास सम्पूर्णः
वैरागी हरीदास मंगलमस्तु ॥

C/o. ३४, प्रोफेसर्स कोलोनी,
नवरङ्गपुरा, अमदावाद-१

अम्बिकाचउपई

– सं. किरीट शाह

गिरनारतीर्थनी अधिष्ठायिका देवी अम्बिकानी स्तुतिस्वरूप ११ कडीनी आ रचनाना कर्ता 'पुण्यमुनि' नामना जैन साधु छे. गुजराती साहित्य कोश : खण्ड १, मध्यकाल – पृ. २४६ पर पुण्यमुनिना नामे 'अम्बास्तोत्र' नामनी अेक कृति नोंधाई छे. ते जो आ ज कृति होय तो, त्यां आ कृतिनी ई. १४४७ मां लखायेली प्रत नोंधायेली होवाथी, आ कृति ते पूर्वे रचायेली छे अेम समजी शकाय.

अम्बिकादेवीने सम्बन्धित कृतिओ अल्प सङ्ख्यामां मळे छे. तेमां आ कृतिना प्रकाशनथी अेकनो उमेरो थाय छे. कृतिनी रचनाशैली सरळ अने भाववाही छे.

कृतिना सम्पादनमां आधारभूत प्रत लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिर – अमदावादना हस्तप्रतसङ्ग्रहनी छे. क्र. – लादभेसू २९०४९. प्रतमां ४ पानां छे अने बे कृतिओ छे : १. चउशरणम्, २. अम्बिकाचउपई.

प्रतिना लेखक सूर्यविजय उपाध्याय छे. अने श्राविका अरघादेना वांचन माटे आ प्रत लखी छे.

*

॥ ई०॥ श्रीअम्बिकायै नमः ॥

ॐ अंबिक जय जय माय, प्रह उठी समरुं तुज पाय;
जिम मनवंछित पामु सिद्धि, वलीय विसेषइ नव नव बुद्धि ॥१॥
गढ गिरनार तणी सामिणी, पूरइ आस सदा अम्ह तणी;
सिंघ चढी सामिणि संचरइ, भगत लोकनी भाव विहरइ ॥२॥
दुहुं कर अंबालुंबी पवित्त, दुहुं कर सुभकर विभकर पुत्त;
सफल अंबतलि निवसइ मुदा, नेमि जिणेसर पूजइ सदा ॥३॥
धण-कण-कंचण चोपड(द) चीर, चारु भोजन मधुरा नीर;
सहज सुरंग अंग वरभोग, तुज प्रसादि नवनव संयोग ॥४॥
बालुं भोलुं कालुं भणुं, अंबिक माइ खमउ अम्ह तणुं;
तुं माता छइ त्रिभुवन तणी, सार करउ माइ अम्हनइ घणी ॥५॥

राति दिवसी मनि ताहरि आस, मनगमतां स्युं देज्यो वास;
टालउ अंतराय आंमला, दुर्जन दुष्ट करउं सांमला ॥६॥
मान महत जस कीरति सार, सुख संभोग तणउ नहि पार;
वइरियडा सवि दूरइ दमुं, तुझ प्रसादि मनरंगइ रमुं ॥७॥
वाट-घाट वन विसमइ ठामि, संकट भाजइ ताहरइं नामि;
चोर-चरड सवि दूरइ टलइ, मनचींतव्या मनोरथ फलइं ॥८॥
तुं अंबा तुं पदमावती, तुं चक्केसरि तुं भारती;
तुं कमला तुं सोलइ सती, सासणदेवति तुं महासती ॥९॥
तुं तउ त्रिभुवन माहे सार, ताहरउ कोइ न लाभइ पार;
जे जण समरइं ताहरुं नाम, पहुचइ तेहनइं सवि अभिरांम ॥१०॥
सुरनर किंनर असुर मुणिंद, तुज गुण समरइं सयल सुरिंद;
इण परि वीनवइ **पुण्य मुणिंद**, ह्रीँ देवी नमो आणंदि ॥११॥

॥ इतिश्री गिरनार पर्वताधिष्टायिका अंबावि चउपइ ॥
श्रीसूर्यविजयोपाध्यायैः पठनार्थं श्रा. अरघादे । शुभं भूयात् ।

C/o. किरीट ग्राफिक्स
वृन्दावन शोपिंग सेन्टर,
रतनपोळ, अमदावाद-३८०००१

* * *

सं. १९१२मां सूरतना एक श्रावके लीधेल १२ व्रतनी टीप

– सं. विजयजगच्चन्द्रसूरि (डेलावाळा)

॥ श्री गुरुभ्यो नमः, श्री परमात्मने नमः ॥

प्रथम देवता श्रीअरिहन्त, अढार दोष रहित, एहवा जे अरिहंत तेहना च्यार निक्षेपा, ४ ते किम, प्रथम नामनिक्षेपो ॥१॥ थापनानिक्षेपो ॥२॥ द्रव्यनिक्षेपो ॥३॥ भावनिक्षेपो ॥४॥

नामजिणा जिणनामा, ठवणजिणा पुण जिणंदपडिमाओ ।
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समोअसरणत्था ॥१॥

अस्यार्थः - प्रथम नामनिक्षेपो ते स्युं कहिइं, श्रीरिषभदेव-महावीर प्रमुख जिननाम छे ते नामनिक्षेपो कहिइं ॥१॥

थापनानिक्षेपो तें स्युं, प्रभुनां बिंब, प्रभुनां पगलां प्रमुख थापना जोग्य जे वस्तु तेहने थापनानिक्षेपो कहिये ॥२॥

द्रव्यनिक्षेपो ते स्युं, कृष्ण श्रेणिक प्रमुख जे जिन थानार छे, एहवा जीवद्रव्य ते जे तीर्थंकर सिद्ध थया ते पण द्रव्यनिक्षेपो कहिइं ॥३॥

भावनिक्षेपो ते स्युं, वर्तमानकाले समोवसरणे बिराजमान विहरमान २० तीर्थंकर छे ते भावनिक्षेपो कहिइं ॥४॥

एहवे च्यार निक्षेपे सिद्ध जे थया, राग द्वेषथि विमुक्त थया, पोताना गुणना भोगि, परभावना अभोक्ता, स्वसत्ताधर्म जेहने प्रगट थयो छे, एहवा जे अरिहंत देव, तेहने देवबुद्धे आदरुं ॥

गुरु ते सुसाधु, परम्परागत सुधि(शुद्ध) सद्दहणाना धर्णि, पंच महाव्रतना पालणहार, साधु गुणे विराजमान होइं, ते शुद्ध गुरु जांणुं । तथा काल प्रमाण(णे) यति होइं, ते यथाशक्ति संजमना पालणहार, जिनमारगना उपदेशणहार, एहवा वर्तमानकाल प्रमाणे यति होइं, एहवा गुरुबुद्धिइं आदरुं ॥

धर्म श्रीवितरागनो भाख्यो दयामूल, जे आणामूल ते शुद्धं अहिंसक

रूपं एहवो धर्म, तेहने धर्म करि जाणु । एहथि विपरित धर्म तेहने धर्म करि न सद्दहुं ।

एहथि बीजा कुदेव हरिहर-ब्रह्मादिक, ते संसारातिलिप्त शरीर कुचेष्टाइं व्याप्त एहवा जे देव ते कुदेव ॥

कुगुरु जोगि संन्याशि, कर्परि ब्राह्मण, कुलिंगधारि, तथा स्त्रियादिके युक्त, तथा द्रव्यलिंगि जेहथी सद्दहणा न मिले ते कुगुरु कहिये, एहवा देषि[खी] आदरु नहि ॥२॥

दिष्यणे(दाक्षिण्ये) नमस्कारनी जयणा, पण सुगुरुपणे नादरु । बीजा मिथ्यात्वीना धर्मकरणि शुद्धधर्म जाणि अनुमोदु नहि ।

तेहना मंत्र चमत्कार कष्ट देखि प्रशंसा न करु, दाष्यणे जयणा, कारणे जयणा । एणि रिते कुदेव कुगुरु कुधर्म न आदरु ॥

वलि ए त्रणे मिथ्यात्व टालवानो खप करु । घर संबंधि देव देरडिनी जयणा, पण तारणबुद्धे निषेध । लौकिक देवगत ते ठाकोर, महादेव प्रमुख ॥१॥ लौकिक गुरु गत ते संन्यासि प्रमुख ॥२॥ लौकिक पर्वगत ते होलि दीवाली, देराडि, राखडी प्रमुख लौ० पर्वगत, ए त्रणे मिथ्यात्व टालवानो खप करु ॥३॥

लोकोत्तर कहे छे – लोकोत्तर देवगत ते भगवंतने इहलोक अर्थे मानवुं । ते लोकोत्तर देवगत ॥१॥ सुसाधुने इहलोकार्थे वांदवुं, पडिलभवुं ते लोको० सुगुरुगत कहिइं ॥ पजुसण प्रमुख तथा ८-१४-१० प्रमुखने दिने इहलोकार्थे तप करे, मानता करे ते लोकोत्तर पर्वगत ॥३॥

एणि ३ मिथ्यात्व टालवानो खप करु । एवं मिथ्यात्व ६ थया ते टालवानो खप करु ॥

तथा पांच मिथ्यात्व लखिए छिइं – अभिग्रहिक १ अनभिग्रहिक २ अभिनिवेश ३ संसइक ४ अनाभोगिक ५ ए पांच छे । ते मांहि अभिग्रहिक ते स्युं कहिइं, जे निज पोतानि मति तेहनो अभिग्रह आकरे रीते [ते] अभिग्रहिक मिथ्यात्व ॥१॥

बिजु अनभिग्रहिक ते स्युं, जे प्राणिने सर्वे देवो सर्व्वे गुरा । अरिहंत

ते पिण देव, हरिहरब्रह्मादिक ते पिण देव, एम देव सर्वने एक जांणे, ते अनभिग्रहीक मिथ्यात्व ॥२॥

त्रीजुं अभिनिवेश ते स्युं, कोइ जाति या क्षयोपशमथी कोइक वाते छतुं जाणतो होय [के] जैन मत साचो छे । पण पोताना आकरा कदाग्रह वश थकी तथा अनादिनुं ए जीवने मिथ्यात्वरूप शल्य, तेहना वश थकी ए साचुं जाणे छे, पिण जुठु बोले छे, बोलतो मन थकी शंका न पामे, बोटिकनी परे, ए त्रीजुं मिथ्यात्व ॥३॥

चोथुं संसइक मिथ्यात्व ते स्युं, श्रीजिनवचन आगमरूप जे भाव सिद्धांतने विषे अरिहंते प्ररुप्या छे । ते आगमना रहस्य-भाव सांभलि मनने विशे शंका आणे : ए जे सुक्षमभाव भगवंते जे प्ररुप्या छे, ते साचा के जुठा हशे ? ए भाव कुण जोइ आव्युं छे ? एहवि शंका आंणवि ते संसयिक मिथ्यात्व कहिये ॥४॥

अनाभोगिक ते स्यूं कहिये, जे अव्यक्तदशा समग्र होइ ते तथा समग्र प्रकारे स्वगुण वीर्योल्लास ए चेतनने छे अने जे जे अंशे प्रगट नथि थयो, ते ते अंशे अव्यक्त छे । अने ए चेतन द्रव्यनो मूल स्वभाव व्यक्त छे, अने अव्यक्तपणे रहे छे, ते सर्व कर्मनि उपाधि । मारे जे जे स्वगुणमां उणास ते ते गुणे अव्यक्त कहिये, माटे जेटलि शुद्ध दसाइ, शुद्ध देव, शुद्ध गुरु, शुद्ध धर्मनो शुद्ध श्रद्धाभासनमा नथी आव्युं ते अनाभोगिक मिथ्यात्व कहीइं ॥५॥

ए पांच मिथ्यात्व टालवानो खप करु, जाणीने आदरु नहि ॥

हवे दश संज्ञा कहे छे - धर्मने अधर्म करी जाणे, ते धम्मे अधम्मसन्ना ॥१॥ अधर्मने धर्म माने, नाये घोइ, बाह्य शरीर पवित्र राखै, ते अधम्मे धम्मसन्ना कहीइं ॥२॥ शुद्ध जे जैन मार्ग तेहने उन्मार्गे करी माने, ते मग्गे उमग्गसन्ना ॥३॥ उन्मार्ग जे मिथ्यामार्ग तेहने मार्ग करी जाणे, ते उमग्गे मग्गसंज्ञा कहीइं ॥४॥ भला जे साधु प्रवचन-मार्गानुसारी शुद्धोपदेशक, तेहने असाधु करी माने ते साधुइं असाधुसंज्ञा कही ॥५॥ योगी सन्यासी कुलिंगी तेहने विषे साधुपणुं जाणैं, तथा द्रव्यलिंगि तेहने बाध्य(बाह्य)क्रिया देखाडता साधुपणे परणम्या न होइ, तेहवामां जे साधुपणु जाणवुं ते असाधुइ साधुसंज्ञा कहीइ ॥६॥

एकेन्द्रियादिक जीव सूक्ष्म आपणी चरम(चर्म)दृष्टिं नावे, माटे कोइ मिथ्यादृष्टिना उदयथी जीवनी सद्दहणा नावे ते जीवे अजिवसंज्ञा ॥७॥ अजीव अचेतन पुद्गल जड, तेहने जीव करी माने ए अजीवे जीवसंज्ञा कहिइं ॥८॥

मुक्तने अमुक्त माने, ते किम ? जे क्रिया-अनुष्ठान करतो ए चेतन कर्ममलरूप जे मेंल तेहथी विमुक्त थाय, तेहनें केटलाएक जीव अमुक्त माने, अज्ञानने बलै ते मुक्ते अमुक्तसंज्ञा कहीइ ॥९॥ अमुक्ति मुक्ति ते स्यु ? ते कहें छइं । जे संसाराऽतिरक्त, संसारिक जे भोग विषयादिक तेहने विषे रता रहे छैं, अने मनमां जाणें छे जे अम्हे मुक्ति पामीस्युं (पणि) इम नथी जाणता, जे नवां कर्म बंधाइ छे ते । तथा सिद्ध पोहता मुक्त थया तेहनें फिरिने संसार माने । तथा केटलाएक अज्ञानना वश थकी जीवने मुक्ति नथी मानता, तथा याग प्रमुखे जीवहिंसा करीने ते जीवने मुक्ति माने छे. ते अमुक्ते मुक्तसंज्ञा कहीइ ॥१०॥

ए दश मिथ्यात्व टालवानो खप करु । एणि परैं सर्व मिलि २१ संख्याइ मिथ्यात्व थया ते यथाशक्ति टालुं । ए मिथ्यात्व् एकवीस मिटे तिवारे समकित रूप गुण ए जीवने उपजें ते समकित ८ गुण छइ ते लखिइ छे।

निस्संकिय १, निकंखीय २, निवित्तिगछा ३, अमुढदीठी अ ४ ।
उववूह ५, थिरिकरणे ६, वच्छल्ल ७, पभावणे अठ ८ ॥१॥

ए आठ गुण जाणवा । ते मध्ये प्रथम निस्संका - ते जिनआगममे सूक्ष्म अर्थ कह्या, ते साचा करी सद्दहै, पणि शंका संदेह नाणें । ते प्रथम भंग ॥१॥ बीजो निःकंखागुण - ते मिथ्यात्व कुमतनी वंछा न करवी ते ॥२॥ त्रीजो निवितिगिच्छा गुण - जे मुक्तिकरणी [ते] शुभफल छे ज तथा अशुभफल पुद्गलकरणिनो छे ज । अने पुण्यउदयैं शुभ संयोग मिल्या खुशी होइ, पण ते अहंकार करवो नही । पापनें उदयें असुख जे दुःखसंयोग मिल्या, दिलगीर थावो नही । करणिनो फल छे ज इमा कोय संदेह राखवो नही ए ३ भेद ॥ हवे चोथो भेद - शुभ अमूढदिट्ठि गुण - जें आगममे सूक्ष्म निगोदना तथा षट् द्रव्यना सूक्ष्मविचार सांभलता मुंझाववो नहि । जे धारी शके तेतलो धारे। जे न धारी शकैं तेनें सद्दहै ॥४॥ उववूह गुण पाचमो - जे इणि आपणा जीवमें अनंतगुण छे ज्ञानादिक, ते छुपाववो नही । शुद्ध सत्ता जेहवी छें तेहवी कहिवी।

रागद्वेष अंज्ञानी(न) कर्मनी उपाधि छें। जीव ए उपाधिथी न्यारो छैं। ए पांचमो समकीतनो गुण ॥५॥ छठ्ठो थिरकरण गुण - जे पोताना परिणाम [ते] ग्यान ध्यानमें थिर करवा, डगाववा नही। अथवा भव्यजीव कोइ प्राणी धर्मथी पडतो होय तेहने साहज्य[1] देहने, उपदेश देइने थिर करवा, ते छठो गुण कहिइ ॥६॥ हवे सातमो वच्छल्लगुण कहिइ छैं। जे जीवस्युं ग्यान ध्यान पडिकमणुं तप भेला मलि कीजीइ। सद्दहणापक होइं, तेहने साहज्य देइनें। आपणा सामी छैं, तेहनी भक्ति कीजें, ते वच्छल्लता कहीजैं। अथवा ए आंपणा जीवना साहमी ते ज्ञानादिक गुण छैं, तेहने पोषवा जे ग्यानध्याननो घणो अभ्यास करवो ते वच्छल्लता गुण जाणवो ॥७॥ आठमो प्रभावक गुण। जे भगवंतना धर्मनी प्रभावना महिमा घणो करवो। दान शील तप पूजाइ करी महिमा घणी करवी। अथवा इणि आपणा ज्ञानादि गुण वधारवा ए प्रभावक गुण जाणवा ॥८॥ ए समकीतना ८ गुण जाणीने आचरवानो खप करु॥

हवे समकितनां पांच लक्षण कहे छेइ। पहिलो उपशमभाव लक्षण - जे विवेकी प्राणि प्राइ कषाय न करै। अने जो कषायना उदये कषाय उपजइं तो पिण पाछो वाले ॥१॥ बीजु संवेग लक्षण - जे इन्द्रियनां सुख जीवे अनंती वार भोगव्यां, ते दुःखकारण छैं। एक चिदानंद मोक्षमे अतीही सुख, ते आपणा करी जाणे, अने तेनी इहा राखे ए संवेग जाणवो ॥२॥ त्रीजुं निर्वेद लक्षण - जे संसारथी, धनथी, शरिरथी उदासपणे रहेवुं, ते निरवेद जांणवुं ॥३॥ चोथु दया लक्षण - सर्व जीव आप सरिखा जाणी दया द्रव्य-भाव बेय करवी ते दया लक्षण जाणवुं ॥४॥ पांचमू आस्ता[2] लक्षण - जे भगवंतना धर्म उपरिं शुद्ध प्रतीति राखैं। भगवंते जिम आगममांहि आज्ञा कहि तिम सद्दहें ॥५॥ ए समकितनां पांच लक्षण कह्या ते आदरु ॥

वरस प्रति देहरे देव अरिहंतनी अष्टप्रकारी छती शक्ति छति योगवाईइं[3] पूजा करु। दिन प्रतिं छति शक्ति छती योगवाईइं देव जूहारु। तथा भावे इशान कुणैं (खुणे) साहमा थइनें देव जूहारवानो खप करु। सुसाधुनी योगवाईइं गुरु वांदु। ते न होइ तो पूर्वदिशामां सिमंधर गणधरादि वांदवानो खप करुं. दिन प्रति नोकारसी पच्चखांण जावजीव लगे करु ते नोकारसी

---

१. सहाय। २. आस्था, आस्तिकता। ३. जोगवाईए।

वीसरे तो ते दिवसे तथा बीजे दिवसे नीलवण न खावी । दिन प्रति नोकरवाली एक गणवी । ते न गणाइ तो मास एके आगल-पाछल थइने ३० गणी पहोंचाडुं । रोगादि कारणै जयणा । तथा परमादनें वसैं नियम भांगो जाणुं तो बीजै दिवस नीलवण न खावी ।

वरस एक प्रति देवद्रव्य रुका ०।। (अडधो) साधारण रुका ०। (पा) ज्ञानद्रव्य रुका ०। गुरुद्रव्य रुका ०। साधवीद्रव्य ०। श्रावक श्राविका ०।। जीवदया ०।

जे मलि क्षेत्र ८ रुका २।, आंक प्रमाणै मुकुं ।।

देहरें मूलगभारै मोटकी दश आशातना टालुं ते कइ - तंबोल ।।१।। पांणी ।।२।। भोजन ।।३।। पेजा ।।४।। मैथुन ।।५।। थुंकवुं ।।६।। मातरु ।।७।। वडीनीति ।।८।। जूवटुं ।।९।। सूवुं ।।१०।। एहवी मोटी [दश] आशातना टालुं। तथा चोरासी आशातना पण जांणि टालवानो खप करुं ।।

तथा छती शक्ति छती योगवाईइं पडिकमणां मास एकैं २ करुं । एक मासें न थाइ तो बीजे मासें करी पुचाडुं । ए रीते लीधा नियम पोताना पालुं ।।

समकित सडसठ बोल आगमथी नामथी लिखिइ छइ ।।श्री।।

चउ सद्दहणा ४ तिलिंगं ३ दशविणओ १० तिशुद्धि ३ पंच दोषं ५
अठ पभावण ८ भूषण ५ लक्खण पंचविह ५ संजुत्तं ।।१।।
छव्विहजयणा ६ आगार ६ छब्भावण भावियं च ६ छठाणं ६
इह सत्तसठि दंसणे भेयविशुद्धं च समत्तं ।।२।। द्वार गाथा ।।

चार सद्दहणा ४, त्रण लिंग ३, दश विनय १०, त्रण शुद्धि ३, प्रमुख गाथाथी सडसठ भेद गणी लेवा ते मध्ये केटलाक तो पूर्वे लख्या छइं तेथी जाणवा ।

हवे समकितनो स्वरूप पन्नवणासूत्रथी लक्षण गाथाबन्धेन आह। यथा-

परमत्थसंथवो वा, सुदिठीपरमत्थसेवणा वा वी ।
वावन्नकुदंसणवज्जणा य सम्मत्त-सद्दहणा ।।१।।

अस्यार्थः - षट्दर्शनना मत जूदा २ देखि भूलवुं नहि । परमार्थ

षट्‌द्रव्य, नवतत्व, गुणपर्याय, मोक्षनुं स्वरूप एतलो परमार्थ सूक्ष्म अर्थ छइं, ते जाणवानो घणो परिचय-अभ्यास करे अथवा जाणवानि घणी चाहना करे। अने सुदिठी कहइता भलि रीते दीठा जाण्या छे परमार्थ-षटदव्य-मोक्ष जिणैं ते गुरुनी सेवा करइं । एटले ज्ञानी गुरु धारवा । 'वावन्न' कहितां जिनमत नाम धरावी क्षेत्रपाल गोगो प्रमुखने मानें छे, समकित विना छे, माटे तेहने वर्जे। अने कुदर्शनी- अन्यमति, तेहनो संग वर्जे, एहवा जे परिणाम, ते समकीतनी सद्दहणा कहीइं ॥

वली समकित वास्ते गाथा कहें छें -

विरयाओ सावज्जाओ, कसायहीणा महव्वयधरा वी ।
सम्मद्दिठी-विहुणा, कयावि मुक्खं न पावंति ॥१॥

अर्थ : सावद्य आरम्भथी विरम्या छै, कसाय पातला छें, शुभ पंचमहाव्रत पालै, उत्कृष्टी क्रिया करें, पण समकीत विना ते जीव किवारें मुक्ति पामे नहि । ते माटे समकितनो जीवें विशेषे खप करवो ॥

गाथा - नयभंगपमाणेहिं, जो अप्पा सा(आ?)यभावेण ।
जाणइ मोक्खसरूवं, सम्मदिठी य सो नेओ ॥१॥

अर्थ : नयें करी, भंगे करि, अने प्रमाणे करी, जेणे आपणो आत्मा जाणैं, ओलखैं, स्याद्वाद आठ पक्षैं जाणैं, अने स्याद्वादपणैं मोक्ष नैं कर्मावस्थाने जाणैं। परवस्तुनें हेय जाणैं, ओलखै। जीवगुण उपादेय जाणे। तेहने समकीत जांणवो । ए समकीत मूलव्रत रत्न सरिखो जाणिने आदरुं । यथाशक्ति आदरवानो खप करु । ए समकितनुं लक्षण सरूप लेशतः लख्युं छे । पिण ए समकितनुं लक्षण । छ छिंडि च्यार आगार सहित पालवानो खप करी पालुं। ते छ छिंडी लखिइ छैं -

रायाभिओगेणं राजा प्रमुखने परवसिपणैं. १ गणाभिओगेणं गण ते समुह कहिइं, ते पांच जनसमुहने परवसिपणैं. २ बलाभिओगेणं ते स्युं कहिइं ? कोइ बलात्कारे करावे. ३ देवाभिओगेणं ते स्युं कहिइं ? कोइ मिथ्यात्वी देवता पीडै. ४ गुरुनिग्गहेणं क. मातापितादेवगुरुना कष्ट टालवा भणी तथा तेना आग्रहथी. ५ वित्तीकंतारेणं कहिता आजीविकाने अर्थे, दुकालादिकने अर्थे. ६

१. लीलोतरी-शाकभाजी फळ वगेरे ।

ए छ छिंडीइ करी माहरु समकित भांजैं नही । मिथ्यात्वनी करणी नाच(द)रवा योग्य छे, ते ए छ छिंडीइ करी आदरवी पडे तो माहरुं समकित मूलव्रत भांगे नही ।

४ आगारे करी समकित पालुं । ते च्यार आगार लिखिइ छै; अन्नत्थणाभोगेणं १, सहस्सागारेणं २, महत्तरागारेणं ३, सव्वसमाहिवत्तीआगारेणं ४, ए ४ आगार सहित पालवु ए आगारइं माहरु समकित भांजैं नही ।

ए समकित मूलव्रतनां ५ अतिचार छै । ते लखिइ छैं :

शंका १ कंख २ विगिंच्छा ३ पंसस ४ तह संथवो ५ कुलिंगिसु ।
सम्मत्तस्स अइआरे, पडिक्कम्मे देसियं सव्वं ॥१॥

इति वचनात्-

प्रथम शंका - ते जिनवचन आगमरूप, तेहने विषें शंका कीधी १, बीजो कंख - ते परदर्शनी छैं तेहनो धर्म सद्दहवो, तेहना धर्मनी वांछना कीधी २, त्रीजो वितिगिच्छा - ते ए जिनधर्मनो फल हशे किं वा नहि होयें ३, चोथो मिथ्यात्वीनी प्रशंसा - ते मिथ्यात्वीनुं धर्म कष्ट देखी वखाणइं ४, पांचमो मिथ्यात्वीसु संलाप - ते करवो ते धर्मबुद्धि आलापसंलाप करवो । ए पांच अतिचार ते जाणुं, पण आदरु नही । दाक्षिण्ये, जयणा, पण जांणी करुं नही। जाणीने करु तो अणाचार, माटे अणाचार ते टालुं । अनें थाइ कदी अजाणतां, तो ते अतिचार लागें । तिवारे ते अतिचार टालवानो खप करुं । एहवे अतिचारे शुद्ध समकीत व्रत उच्चरी पालवानो खप करुं ॥५॥

ए व्रत उच्चरवो ते पांचनी साखे ते यथा- अरि जे घनघाती कर्मना विदारनार तथा रागद्वेषरूपी वेंरी जीत्या जेणे ते अरिहंतनी शाखि १। सिद्धसखियं - सिद्ध जे सकल संसारावस्थाथी मुंकाणा । आठ कर्मनी एकसो अठावन प्रकृतिनो क्षपकश्रेणिं तेहनो क्षय करी, अयोगीइं, अलेशीइंपणु भजीने मोक्षना अपूर्व मार्गे थइने अविनाशीपणे जइनइं सिद्ध उपना, अव्याबाद सुखने वर्या, सादि अनंत भागे वर्तता, तथा अनादि अनंतें वर्तता, अनंता सिद्ध सकल चेतन द्रव्यना अध्यवसायादि जाणता देखता, पोताना अनंता ज्ञानदर्शनादिक जे गुण छे, ते गुण स्वसत्तापणे भोगवतां, निर्विकारपणे रह्या छै एहवा जे सिद्ध तेहनी साखे २ । साहुसक्खियं - जे साधु सत्तावीश गुणै बिराजमान, पंच

महाव्रतना पालणहार, पंच समिति[ए] समिता, त्रण गुप्ते गुप्ता, छ कायना रक्षक, सर्व प्राणीथी मैत्रीभाव चिंतवता, परम समतारसना भंडार, उपशमरसना कंद, बावीश परिसहना खमनार, शुद्धाहारना गवेषणहार "अलब्धे तपसो वृद्धि[:], लब्धे स्याद्देहधारणा", स्वशरीरथी पण मूर्छा नथी राखता, बाह्य अने आभ्यंतर गांठ नथी धरता, मुधाजीवीपणैं विचरें छें, एहवा जे मुनि निग्रंथ, शुद्ध प्रवचनमार्गानुसारि क्रियाइ, सदा उपयोग शुद्ध छे जेहनो एहवा साधुनी शाखि ३ । गुरुसक्खियं - समय क्षेत्र काल प्रमाणे यथाशक्ति व्रत पालता, धर्मोपदेशक, वीर वाणीना कथक, पंचम कालैं बकुश कुशील चारित्र छे ते प्रमाणे क्रियानुष्ठान करता, ए उपदेशक जे गुरु तेहनी शाख ३ । देवसक्खियं - ते देव समकित देव, तथा शासनना अधिष्ठाता देव, तथा धर्मीजनने साधना देनार एहवा जे देव तेहनी शाखे ४ । अप्पसक्खियं - ते पोतानी शाखि, आत्माने उल्लासे करवुं माटे आत्मानी शाखि ५ । ए पांच शाखि समकित सुधु (शुद्ध) पालु, ए समकित मूल व्रत लेशतः संपूर्णः ॥ श्री ॥

अथ पहिलुं प्राणातिपात विरमण व्रत दुविध त्रिविधे आदरुं । प्राणि ते जीव, तेहनो जे अतिपात, ते घात करवो ते प्राणातिपात कहीइं । तिहां प्रथम जीवना २ भेद छै : त्रस १, थावर २ । ए बि मध्येथी थावर जीवनी तो जयणा । हवे त्रसनें विषें ४ भेद - बें(इ)द्री १ तेंइद्री २ चउरिंद्री ३ पंचिंद्री ४ । ए त्रस कहीइं, ते मध्ये आरंभें जयणा । हवै संकल्पीनैं, तथा निरपराधी निरपेखपणे त्रस जीव हणुं नही । किरमीआ, सरमीआ, वालादिक जे जीव उपजैं छें शरीरनें विषे, ते आश्री जयणा । (ते) स्या माटे ?- जे शरीरने विषें पीडा उपजैं, तथा सहेंजें पिण औषध खावा पडै, करवा पडै, तिवारे ते औषधने योगें ते जीवनो नाश थाइ तेहनी जयणा । तथा रोगादि कारणें जलो मुकाववी पडे तो तेहनी जयणा। पणि जाणीनें बादर जीव दृष्टि आवैं ते हणुं नही, अने हणावुं पणि नही । जीव बादर, पिण त्रिस अनै शरीरे लघु दृष्टिगोचर नावे तेहवानी जयणा, अजाणें हिंसा थाइ तो जयणा ॥ हवे ए प्रथम व्रतनां पांच अतीचार छें । गाथा -

वहबंध छविच्छेए, अइभारे भत्तपाणविच्छेए ।
पढमवयस्स अइयारे, पडिक्कमे देसियं सव्वं ॥१॥

अस्यार्थ : ढोर माणसनें काठि बंधने बांधवो नही । निर्दयपणैं मर्मने ठिकाणैं आकरो घात जेहथी तेहनो प्राणत्याग थाय तेहवा घाते न हणवो । छविछेएकर्ण ते ढोर प्रमुखोना करण-कवलादिक छेदवा, तथा समारवा, ए अतीचार न करु । पिण घरनां बालक प्रमुख-तेहना नाक-कान प्रमुख विंधाववा तेहनी जयणां, तथा कुटुंबार्थे तथा दाक्षिण्ये जयणा । उपदेश-निर्देश देवो तेहनी जयणा ३ । अतिभार-लोभने वशे थोडो भार कहीने झाझो भार भरवो ते अतिचार । एटलो आगार - वीस मण कहीने २२ मण लगे भरु तेहनी जयणा बीजो परचूरण भारनी जयणा ४ । भातपाणीनो विच्छेद- ते कोइने लांघण कराववी तथा पोतें कोइने देतां अंतराय करवो - ना कहैंवी ते अतिचार । घरमां तथा लहेंणैं देणैं जयणा ५ । ए पांच अतिचार पहिलां व्रतना जाणवा, पण आदरवा नहि । माटे ए पांचे टालवानो खप करु । ए प्रथम व्रत ।

अथ द्वितीय व्रत प्रारभ्यते । अत्र श्रीबीजे मृषावाद व्रत दुविध त्रिविधे आदरुं । ते मृषावादें सूक्ष्म बोलवुं तेहनी जयणा । पिण पांच मोटका जूठां न बोलवां । ते किम ? कन्यालीक ते सुं ? कन्या नाह्नी ते मोटी कहेवी। कुरूपनुं स्वरूप कहिंवुं १। बीजुं गवालीक ते गवाप्रमुख अल्प दुग्धा होइ अने घणुं कहेवुं २। त्रीजुं भूमालीक ते भूमिनो जुठो बोलवो ३ । थापणि मोसो ते थापिण राखीने जूठो बोलवो ४ । कूडी साखि ते खोटी साखि भरवी ५।

ए पांच मोटका जूठां वंछाइ (ठगाइ) ते न बोलुं । घर अर्थे बोलवुं पडे (तो) तेहनी जयणा । तथा दाक्षिण्ये जयणा । हास्य विनोदे जुठो बोलवुं तेहनी जयणा । तथा अनुकंपाए बोलवुं पडैं तो पिण जयणा । पण मासं (?) नाख्या पुगे त्यां सुधी ए जुठां न बोलुं, लाचारे जयणा ।

हवे ए व्रतना पांच अतिचार छै ते टालवा माटे लिखिइ छैं - सहसारहस्सदारे - सहसात्कारिं अयुक्त अछतुं आल दिंधु १ । पीआरो (प्रियानो) मर्म रहस्य प्रकाशवो २ । स्व-दारामंत्र भेद कीधो, पोताना पति साथै मंत्र भेद कीधो ३ । जुठो उपदेश दीधो ४ । कूडो कागल लखवो ५ । ए पांच अतिचार छै ते जाणवा, पण आदरवा नहि । माटे टालुं । ए टालवानो खप करु । इति द्वितीयाऽणुव्रतं ॥२॥

अग्रे अथ तृतीय व्रत प्रारभ्यते । त्रीजैं थुल अदत्तादान विरमण व्रते, कोइनुं खात्र खणी वाट पाडी, गांठडी छोडी, जिणै अदत्तै लोक विरुद्ध थाय, राजदंड उपजैं, तेहवि मोटकी चोरी न करु, न करावुं । चोर धाडि तथा चोरीनो संकेत पण न करुं । तथा दांणचोरि वरस प्रति रकम १००० नो लागो थाय तां सुधीनी जयणा । नी(नि) स्वनिश्राइं तथा कुटुंबार्थे करु तेहनी जयणा । पडि वस्तु लाधे ते धणी जांणुं तो धणीने आपुं । धणी न मिले तो अर्ध धर्मस्थानकै खरचुं, अर्ध पोते राखुं । कदापि धणीनी वस्तु घणी गइ होय तो अने थोडी लाधी होय तो, धणीने कहेतां दुख नावे, तो अर्द्ध धर्म ठेकाणे खरचुं, अर्द्ध पोते राखुं । सूक्ष्म चोरी तथा घरनी चोरीनी जयणा । भूमि खणतां जो निधांनादि नीकले तो अर्द्ध धर्म ठेकाणे खरची, अर्द्ध घरमां राखुं, पण निकेवल पोता आंश्री होय तो । त्रीजा व्रतने विषे पांच अतिचार छे, ते जाणुं पिण आदरु नहि । ते अतिचार ५ पांच लखिइं छैं । चोरनुं आणुं जाणुं ते वस्तु लेउं नहि, अजाणता लेवाइ तेहनी जयणा १ । जडीया तथा सोनानी वस्तु मध्ये भेलसंभेल पिण टालवानो खप न करु २ । चोरने संबल प्रमुख न देवुं ३ । राज्यविरुद्ध न करवुं ४ । कूडा तोला कूडां मानमापला ते न करवां ५ । ए पांच अतिचार टालवानो खप करु । एणी पेरे व्रत लीधुं ते पालु । इति श्री तृतीयव्रतपरिमाण जाणवुं ॥३॥

अथ चतुर्थ अणुव्रत लिख्यते । चोथु मैथुन विरमण अणुव्रत, जावजीव कायाइं करी परस्त्रीनुं शील पालवुं । मन वचननी तथा परवशताए जयणा । तथा पोतानी स्त्रीनो दिवसे निषेध, पण ह(व?)रख मध्ये दिवस ५ मोकला । रात्रे वार २ । तथा परवी ५ पालवुं । तथा विवाह तथा आदेश-निर्देश देवो पडे तेहनी जयणा । हास्यादिके वचन बोलवा पडे तेहनी जयणा । कायाए करी सोय दोराने आकारे लख्या प्रमाणे पालवुं ।

हवे ए चोथा व्रतने विषे पांच अतिचार छे ते जाणुं पिणि आदरवा नहि । ते ५ अतिचार लिखिइ छै : अपरिग्रहिता तेवी स्त्री वेस्या कुंवारी । इतर ते परपुरुषें भाडे राखेली । अनंगक्रीडा ते हास्य विनोदादिक कामचेष्टा । बाहिरथी[१] मूल विना ते । विवाह ते पराया विवाह जोडें । तीव्र अनुराग ते

१. मूल्य ।

कामभोग तीव्राभिलाष । ए ४ व्रतना ५ अतिचार टालवानो खप करु । देवसंबंधि तथा पर मनुष्यसंबंधि तिर्यंचसबंधी मैथुन कायाइं करी न आदरु। मन वचन स्वप्ननी जयणा । बलात्कारे मारु न चाले तेहनी जयणा । ए रीते चोथु व्रत पालवानो खप करु ॥४॥

अथ पंचम अणुव्रत प्रारभ्यते । पांचमे स्थूल परिग्रह परिमाण विरमण व्रते तथा इच्छा-परिमाणे धन रोक रुपैआ २,००,०० झवेर मणि माणिक मोति प्रमुख थई ग्रेहेणु सर्व मलिनै जे हिवणां पासै छइं ते सुधां घर संबंधी पोतां आश्रीने २५ हजार सुधी राखवुं, ते उपरांति नवुं न करवुं । कुटुम्बनै अर्थे आदेश उपदेश देवानि जयणा ।

.... परवालुं सेर १०, कयरबो सेर ५, धान सर्व थइनि जाति मिलीने मण १५०० पोते राखवुं । कोई भेलां रहितां अधिकानी सारसंभाल करवी पडे तेहनी जयणा । हल क्षेत्र वाडि करवा निषेध । तेमां १ वाडी नवी करावबानी जयणा । पण देवपूजानिमित्त फुल झाड प्रमुख वावरवानी पण जयणा । घर १० हाट १५नी जयणा । तथा भाडे ग्रहेंणै लेवानि जयणा । तथा नवां घरहाट बंधाववांनि २नी जयणा । पड्युं आखड्युं समारवानी जयणा । घर सर्व हाट सर्वे मली रुपु तोला १००, सोनु तोला ५०० पोते राखुं अने लहिणे देणें आवे तेनी जयणा । कांसा कुट सप्त धातु सर्व मिलिने मण १००० राखुं । कुटुंबने अर्थै पेधुं कराववानि जयणा । वरस प्रति नवुं कराववुं पडै तो मण ३०० सुधी जयणा छे । बीजो घरवाखर रकम २००० नो पोताने अर्थे राखुं । स्वजनादिकनो वावरवानी जयणा ।

चतुपद पोतानी निश्राइं राखवानी विधि : गाइ २०, भेस २०, बकरी १०, वेला सहित बलद राखवा १०, घोडी ५, घोडा २० उपर राखवा निषेध। तथा स्वजनादिकनां होइ तेहंनी सारसंभाल करवी पडे तेहनी जयणा । हाथिइ चडवा निषेध, पण १ मोकलो । पालखी पोतानी २ नी जयणा अने पारकी पालखीइ बेसवानी जयणा । तथा बलद पोठी ५, घोडागाडी ५, वेसर २, उंट ५. डोलि ५, रथ ५, वहेल १० गाडा १० प्रमुख पोतानी निश्राइं राखवानी जयणा । तथा धर्मकारणै राखवां पडे तो जयणा, उपरांति निषेध । वाणोतर राखवानी जयणा ।

कुंकुंकेसर २०, हिंगलो २०, पारो १०, एलची २०, लवेंग १०, जायफ्ल १०, जावंत्री १०, तज १०, पिपलीमुल २०, सुंठि म. २, मरि म. २, सोपारि म. ५, प्रमुख सर्वे जातिनुं किरियाणु मण १० राखवुं उपरांति निषेध ।

घृत मण १०, गोल मण १०, खांड मण १००, साकर मण ५, तेल मण २० सर्व जातिनुं स्वनिश्राइं राखुं । स्वघरनां स्वजनादिकनां सारसंभाल करवि पडे तेहनी जयणा ।

स्वनिश्राइं वस्त्र पहिरवानां जोडा १०० राखवा, अधिका निषेध । ए राख्याथी अधिकां लहेणेदेणे आवे तेनी जयणा । ए सर्व कायम्य(म)नी जयणा छे । अने वरें वरें तेतली अधिकनी पण जयणा ।

हवे ५ व्रतना पांच अतिचार छे ते जाणवा, पिण आदरवा नहि । ते टालवानो खप करुं । ते लखिइ छें ।

धणधन्न खित्तवत्थु, रुप्पसुवन्न कुविय परिमाणे ।
दुपए चउपयंमी, पडि० ॥

अस्यार्थ - धनधान्यप्रमाणातिक्रम, क्षेत्रवस्तुप्रमाणातिक्रम, रूप्यसुवर्ण-प्रमाणातिक्रम, कुपदप्रमाणातिक्रम, द्विपदचतुपदप्रमाणातिक्रम ए रीते पांच अतिचार जाणवां । पिण ए अतिचार टालवानो खप करुं ॥ ए राख्या प्रमाणे पंचम व्रत यथाशक्ति पालुं ॥

अथ षष्ठम व्रत लिख्यते । अथ षष्टदिग्परिमाण व्रत लिखिइ छैं । छठे दिगविरमण व्रते निजवासथकी तिर्च्छु दिसि अने विदिसि प्रत्येकि प्रत्येकि गाउ १०००, उंचुं गाउ १०, नीचुं गाउ १० सुधी मोकलु । एथि उपरांत जावा निषेध। जलवटें गाउ ५००० मोकलुं ।

राजक देवक तथा धर्मकारणे १० उपर बेसवानी जयणा । सफरिवाहणे चडवा निषेध । भावनगर घोघा लगण जावानी तथा कारणे जयणा । मोटा सफरिवाहणे जोवानी जयणा ।

छठा व्रतनां ५ अतिचार जाणुं । पिण आदरवा नहि । ते लिखिइ छैं। उर्द्धदिसि गाउ १०, अधोदिसि गाउ १०, तिर्छिदिसि गाउ १००० प्रमाण राख्याथी उपयोग विना अधिकु जवाय तो अतिचार । तथा प्रमाण राख्यो होइं

तेमाहिथी एक गमा घटाडीने बीजि दिसि वधारे तो ते अतिचार टाले । तथा मार्गे हिडतां उपयोग पूरो नावें अने पाछो न वले तो अतिचार ५ । ए पांच अतिचार टालने छठ्ठो व्रत पालवानो खप करुं ॥ इति षष्ट व्रत संपूर्ण ॥

अथ सप्तम व्रत-विवरण प्रारभ्यते । सातमे भोगोपभोग विरमण व्रते दिन प्रति चउद नियम संभारुं । हिवणा विस्मृति दोष, शक्ति नथी । तीक्ष्ण उपयोगें संभारवानी खप राखवी । सांजे संखेपुं । रोगादि कारणें जयणा । तथा प्रमाद दोषें नियम संभारवा संखेपवा विसरें तो बिजे दिन नीलवण वावरवि नहि ते नियम लिखीइ छें ॥ गाथा बंधेन आह -

सचित्त १ दव्व २ विगइ ३ वाणह ४ तंबोल ५ वत्थ ६ कुसुमेषु ७। वाहण ८ सयण ९ विलेवण १०, बंभ ११, दिसि १२ न्हाण १३ भत्तेसु १४॥

अस्यार्थ : सचित वस्तु द्रव्य ७५ । विगय ५ । वाणहि- पगरखां जोड ५, गयां तथा वेचाता लेतां पहिरि जोवा पडें तेहनी जयणा । तथा तंबोल सेर ०॥। वावरवानी जयणा । ५ वस्त्र वेषनी जयणा । [कुसुम] २ सहजे सुगवा, नीहारनी जयणा तथा तपप्रमुखै जयणा तथा रोगादिकारणे जयणा । वाहण- बहिलगाडी ५,पोठीउंट ८,घोडानी १०जाति, डोलि ५,दिन प्रति मोकला । शय्या समुदाये सहित मोकलां । स्वजनकुटुंबादिकने घरे गयांनी जयणा । आसण बेसण पथरणुं काष्ट पछर गाठडि प्रमुखनी जयणा । विलेपन सर्व जातिनुं थईने शेर मोकलुं । ब्रह्मचर्य कायाई पालुं, मनवचन आसन शयन स्वप्नादिकनि जयणा । दिसिविदिसि गाउ, उंचु-गाउ, नीचुं-जावुं तथा जलवटे थलवटे कागल प्रमुखनि जयणा । दिन प्रत्यैं न्हाण-, दिन प्रतें अघोल- । लोकीककार्ये तथा धर्मकार्ये जयणा । भात दिन प्रतें सेंवे, स्वशरीर निमित्ते वावरवुं । तथा पाणी घडा_पीवानें, घडा-वावरवाने, अंघोलने गागरि_न्हाणने गागरि _ । वलि लोकाचारी, नदी, तलाव, कूआ, वावि, द्रह प्रमुखें अंघोलवानी जयणा । मास प्रति धोणीनी जयणा । वरसातनुं पाणी झालुं, घरि गलिने वावरु । तथा तलाव कूआ द्रह वाव नदिनुं पाणी वावरुं । विवाह तथा साहमि-वात्सल्यादिक माड्यै कार्ये ए राख्या थकी अधिक जल वावरवानी जयणा, बीजा पिण धर्मादि कारणे जयणा ॥ ए रीते चउद नियम जाणवा ॥

एणी रीते ए १४ नियम आत्मानें संवरनुं कारण । विशेष आश्रव छे

तेहने रोकवुं । ते कारणे ए नियम विशेष परिणाम शुद्धै धारवा अने संक्षेपवा।

अथ नीलवणनि विगत लि० - नालियर लीला टोपरां १, खडबुजानि जाति २, केरिनिं जाति ३, तूरियानी जातिं ४, चोलानी जाति ५, पापडिनी जाति ६, गुआरफलि ७, वालोल ८, गोटा-निंडसनी जाति ९, कारेलानी जाति १०, मेथीनी जाति ११, तांदलजानी जाति १२, कं[ठो]लानी जाति १३, दूधि जाति १४, निबूनी जाति १५, पांननी जाति १६, केलानी जाति १७, अनाशनी जाति १८, खारैकी बोरनी जाति १९, अंजिरनी जाति २०, खेजडनी जाति २१, खाटां बोरनी जाति सर्व २२, मोगरानी जाति २३, सेगठानी जाति सिंग २४, तडबुचनी जाति २५, फालसानी जाति २६, दाडमनी जाति २७, निली द्राख २८, भींडानी जाति २९, सिताफलनी जाति ३०, डोडिनी जाति ३१; निला चिणा (लीलाचणा)नी जाति ३२, जूआरनो पोहोक ३३, काकडिनी जाति ३४, वटाणानी सिंग ३५, सेलडी ३६, अझुनां पांतरा ३७, मकाइ डोडा ३८, करमदां ३९, जांबुनी जाति ४०, फूदनो ४१, वालोल ४२, भरुचि भाजि ४३, परवल ४४, गीलोडां ४५, निला(लीला) मरचा [४६] भाजी पोइनी ४६(४७), भेमडानी ४७(४८), कालिंगडां ४८(४९), कोथमीर ४९(५०), चिमडानी जाति ५१, फानस ५२, काकड ५३, केरां ५४, पेंपर सोपारी ५५, आंबला ५६, चिकण ५७, मूलानां पात्रां ५८, जांबु ५९, सींघोडा [६०], कोठां अने कोठंबडा कांचां-नीलां-सचित निषेध ६१, आंबली ६२, कोलांनी जाति ६३, गलका ६४, धान पलालेलु ६५, दातण आवल बावलने वजरदंडी, ... जी १०

ए राखामांथी टालवानो खप करु । ए नीलोतरि मोकली, बाकी सर्व निषेध । रोगादिकारणे जयणा । तथा भेलसंभेले जयणा । जाण्यां पछी न खावी, ए लखा प्रमाणैं खावि ।

हवे आगल धांननी जाति, धांननि संख्या लिख्यतै । गहुनी जाति १, मगनी जाति २, बाजरिनी जाति ३, चोखानी जाति ४, चीणा(चणा)नी जाति ५, चोलानी जाति ६, तूवरनी जाति ७, ज्वारनी जाति ८, अडद ९, मठ १०, बरंटी ११, जवनी जाति १२, तिलनी जाति १३, वालनी जाति १४, वटाणानी जाति १५, कूलथनी जाति १६, चणानी जाति, गोखरु १७, मेथि १८, कोदरा १९, लांग २०, गुआरनी जाति २१, वलदाणा २२, राई २३, असालियो २४,

मालकांगणि २५, बावटो २६, एरंडि २७, धांणा २८, सूया(वा) २९, इत्यादि धान मोकलां ॥

ते धांनमांहि दांणा तेहनी जयणा । तथा काल दुकालैं तथा देस प्रदेशैं बीजाई धांननी जयणा । पिण अवश्य कारणैं तथा रोगादिकैं ।

अथ बाविस अभक्ष विवरणं - पिपल १, पीपरडी २, उबरनां फल ३, वडनां फल ४, कठुंबर ५, उषधमांहि भले तेहनी जयणा । ६ तथा मध उषध वेषधे रोगादिक कारणे जयणा अन्यथा निषेध । ७ मदीरा, ८ मांस, निषेध ९, तथा मांखण उषध वेषधे बे घडी सुधी मोकलुं, ते उपरांति निषेध। १० हिम, ११ विष मध्ये अफीण, वच्छनाग सोमल उषध वेषधे मांहि भलै तथा रोगादिक कारणे जयणा; बाकी निषेध । १२ कहरा, १३ माटि, १४ भेल संभेले जयणा । मीठु तथा सर्व खार मिलिने वरस मध्ये मण २०नी जयणा। स्वजन अर्थे तथा आदेश निर्देश देवा पडे तेहनि जयणा । तथा देश परदेशै वावरवुं पडे तेहनि जयणा । १५ रात्रिभोजनमां वरस मध्ये दिन ४ मोकलां छे। लगभग वेलांनी जयणा । तथा कारणै जयणा । शेष दिने निषेध । रात्रिनुं रांध्युं अन्न तथा पकवाननी जयणा। १६ बहुबीज, १७ अनंतकाय । १८ गोलीयां गेरी केरां पीरीया सुका लींबु मरुया ३ दिवस मीथवा मरचा खटासमां नांखेल तथा जे खटाशमां नांखी होय तेनी जयणा । ए उपरांत अथाणुं टालवानो खप करु । १९ घोलवडा, २० रींगणा, २१ अजाण्या फल, २२ तुच्छ फल, २३ ते मध्ये नीलोतरि जे मोकलि राखि छे, ते मध्ये होइं तेहनि जयणा । शेष निषेध । २४ चलित रस कालातीत सूखडी प्रमुखनो निषेध। अजाणतानी जयणा । पिण ते टाल्यानो खप करु । २५ पहिला दिननुं रांधेलुं अन्न जे वासी थयुं ते निषेध तथा कठोल मध्ये छास दहि प्रमुख न वावरुं ए रीते अभक्ष्य टालवानो खप करु ।

अग्रे अनंतकाय, अथ बत्रीस अनंतकाय लिख्यते -

आदु १, मुला २, गाजर ३, सूरण ४, वज्रकंद ५, निलि हलिद्रा ६, कचुरो ७, सतावरि ८, वरिहालि ९, वेली १०, कुंआरी ११, गलो १२, थोहरि १३, लसण १४, वंसकरेलां १५, लूणी १६, लोढं १७, गीरकरणि १८, किसलय सर्वा १९, षूरसूआं २०, थेग २१, नीलिमोथ २२, सूअर वालोल

२३, खीलोडां २४, अमृतवेलि २५, भूमिरुह २६, टंकवाथलो २७, पल्लंक २८, विरुह कुनी आंबलि २९, आलू ३०, पिंडालुं ३१, छेद्यो थको उगे ते ३२। सूक्ष्म नीलफूलनी तथा औषधादि कारणे जयणा । ए रीते ३२ बत्रीस अनंतकाय टालुं ।

अथ चार आहार, तेहनी विगत -

(१) असन मध्ये - धान, पकवान, मांडादिक, लोट, घी, तेल, दुध, छासि, सोआं, कोठवडी, विरहालि, जीरु, इसबगुल्ल, हींग, वेसण, सिंधव, राब, ओदन साथुओ, आमलां प्रमुख एतला असनमां जाणवा १ । (२) पाणी जाति - पाणी खारां, मीठा, कुआ, तलाव, नदि, कोठिमानां, टांकानां, कांजिनो पाणि, जवनो पाणि, कयर(केर)नो पाणि, काकडनो पाणि, ए पाणिनी जाति २ । (३) खादिमनी जाति - सेक्यां धान सर्व, चारोलि, अखोड(अखरोट), बदाम, द्राख, निमजां, पीस्ता, खारेक, खजुर, टोपरां, खलेली, प्रमुख सर्व मेवो, गुंद, आंबा प्रमुख सर्व फल ए खादिम ३ । (४) लिवंग, सोपारी, पांन, सूंठी, हरडै, पीपर-मरी, अजमो, कायफल, तज, जावंत्रि, एलचि प्रमुख सर्व स्वादिम जाणवा ४ ॥

अथ अणाहार वस्तु - लघुनीति, लिंबडो-पंचांग, गलो, कडु, करिआतु, त्राहिमान, त्रिफलां, एलीओ प्रमुख अनिष्ट वस्तु इच्छा पाखे लेवो ते सर्व अणाहारमां जाणवुं। तथा गंधीआण मध्ये - क्वाथ, बूकी गोलि, चूर्ण-पाक, आसव आदि देइ, वैदने कहेणे करि ओषधे सरिरनी असमाधइं मोकलूं। पिण सावद्य ओषधवस्तु परिहरवानो खप करुं । ए च्यार आहार ।

अथ पन्नर कर्मादान विवरण लखिइ छैं। ते मध्ये इंगालकर्म पहिलुं - लिहाला, इटवाह, चूनानी भाठी, नलीआ प्रमुख व्यापार करवा करावता निषेध । घरकामे वेचातु लेवाने रुक्म (रकम) १००० ताइ लेवानी जयणा। गृहादिक नवो करावतो पडे तिवारे अधिकायनी जयणा । दिन प्रते ३ चूला संधूखवा । वरस प्रते सात धात थइने रुपैया घरार्थे ३०००नुं गलाववुं । धर्म कारणे विशेषैं गलाववानी जयणा । मास प्रति तलवुं मण २, मास मध्ये सेकवुं मण ०।, भाडभुंजाना व्यापार निषेध । धान प्रमुख घर अर्थे सेकाववानी जयणा। तथा स्वजन कुटुम्बादिकने अर्थे अधिकनी जयणा, वरस प्रते वस्तू

निखराववुं रंगाववुं गज ५०० । कुटुंबार्थे जयणा । व्यापार अर्थे निषेध । तथा नीखराववुं रंगाववुं अनें रुडुं न थयुं तो ते वेचवानी जयणा । अने वलि बिजूं रंगाववानि जयणा । पाक आसव चूर्ण करी वेचवा निषेध, पण खारनो मीणनो आसो काढी रु.१०००नी जयणा । गृहकार्ये तथा दाखिणैं जयणां वरस प्रति धूपेल मंण ०। चूउ सेर १ मोकलुं । उंबी पुहक पापडी प्रमुख निषेध । धर्म कारणे जयणा, घर कामे जयणा, व्यापारे निषेध । कुंभार कूट वरस प्रति रूपैआ_नी जयणा । रांधवुं आजीविका हेतें निषेध । पोताने घरें तथा सगासंबंधीमां तथा मलताप्रीताने घरे रांध्यानी जयणा । तथा घाट सगासंबंधीने अर्थे घडाववानी जयणा, धर्मार्थे घडाव्यानी जयणा ॥ ए रीतें पहिलुं कर्मादान वरजुं १।

हवे वणकर्म बीजूं - वणकर्म कहिइ छइ । फूल फल कंद पांदडां छेदि वेचवा निषेध । कारणे स्वजनादिक कारणे; परकारणे, धर्मकारणे वेचातु लेवानी जयणा । मास प्रति दलवुं निषेध, दलाववुं मण १० । खांडवुं निषेध । खंडाववुं मण २० । हाथे भरडवुं निषेध । भरडाववुं मण १० । हाथे सेकवुं [निषेध], सेकाववुं मण १ । विवाहादिकार्ये तथा धर्मकार्येनि जयणा । उपदेश निर्देश कोइ पूछें तो तेहनें कहेवुं पडे तेहनि जयणा । वरस प्रति खारुं स्याक सचितनी सुकवण मण २५नी जयणा । दिन प्रति निलुं शाक सेर २५नी जयणा । माणसनें जमवा तेड्यां अने अधिक ववराइ तो जयणा । विवाहादिक कार्य माड्यें तथा धर्मकार्ये अधिकनि जयणा, आव्या गयानी जयणा २ ।

शाडीकर्म त्रीजु - गाडां, वहिल (वेल), पोठी, [उट]-ओठ, डोली प्रमुख वाहण वेचवां-वेचाववा निषेध, पण घरनुं वेचवानी जयणा । लेहणे देणे कोइ पासेथी आवे ते वेचवानी जयणा । जावे आववे भाडो करवानी जयणा। ए कर्मादान वर्जवुं ।

भाडीकर्म चोथु - बलद उंट घोडा प्रमुख तेहनो व्यापार निषेध, पोते भाडे करवानी जयणा । कोइ मिलतां संबंधी तथा कुटुंबने अर्थे मुह दाखणे (दाक्षिण्ये) भाडे करी आपवानी जयणा । स्वजनादिकना घर हाट भाडे आपवानी जयणा । ए चोथो कर्मादान ।

हवे पांचमुं कर्म कहिइं । फोडीकर्म पांचमुं - सरोवर,- कूआ, तलाव,

वावि, खांण, खाणि माटिनी खांणि खणवा-खणाववा निषेध । घरार्थे १० नी जयणा । धर्महेते तथा आदेश निर्देशनी जयणा । माटी टोपला २० मास प्रते मोकला । वीरडा चूलानी जयणा । पोताने अर्थे स्वजनने अर्थे घरप्रमुखने विषें टांका करावता पडे तेहनि, नवां घर करावतां, भिंतना पाइया प्रमुखे भूमिका खणाववी पडे तेहनी जयणा । ए रीते पांचमु कर्मादान ५ ।

हवे पांच वाणिज्य छे ते माहि पहिले वाणिज्यै दंतवाणिज्य, कर्मादान ६ छठुं - दंतादिकनो व्यापार पोतानी आजीविका हेतें आगरें जइ वोहरवा निषेध। तथा व्यापार अर्थे पिण दांत वोहरवा निषेध । लहिणै देणे आवे तेहनी जयणा, ते वेचाववानी जयणा । तथा घरकामें, धर्मकारणें लेवानी जयणा । तथा घरमां होइ ते वेचवानी जयणा । ए छठुं कर्मादांन जाणवुं ६ ।

लख-वाणिज्यं कर्मादान ७मुं - लाख मणशिल हरियाल टंकणखार गलि प्रमुख सावद्य विशेष तेहनों व्यापार निषेध । घरकार्ये सर्व थइने मण २ लेवानी जयणा वरस प्रतिं । तेथी उपरांत निषेध । तथा घरकामैं कोइ बीजो राखतो होइ तो ते वेचवानी जयणा । ए सातमु कर्मादान ७ ।

हवे आठमु रसवाणिज्य लिख्यते -

मध, मद्य, मांस, मांखण, मीण प्रमुखनो व्यापार निषेध । घर कारणे मध सेर १०, मे(मी)ण सेर १० नी जयणा । मांखण ते रोगादि कारणे जयणा, ओषद्धवेषधे जयणा । तथा छाशि प्रमुख मध्ये होय तेहनी जयणा । वरस प्रति घी मण २५, तेल मण २५, गोल मण १०, साकर मण ५०, खांण मण ५०, मीठुं मण ५, उपरांत निषेध । स्वजन कुटुंबने अर्थे राखवानी जयणा। मोह दाखणे(दाक्षिण्ये) राख्यनी जयणा । तथा घर मध्ये बीजा कोइनुं होय तेहनी सारसंभाले जयणा । मांड्या कार्य विवाहादिकें अधिकनी जयणा, तथा धर्मार्थे साहमीवात्सल्यादि कार्ये पिण जयणा । ए रीते कर्मादान अष्टम वर्जवुं ।

केशवाणिज्य नवमुं लिख्यते - द्विपद माणस दास दासि तथा चतुष्पद गाय भेंस प्रमुख कयविक्रय लेइंने वेचवा निषेध । लहिणे देणे चतुष्पद आवे ते वेचवानी जयणा, घर अर्थे राखवानी जयणा, अनुकंपाइं राखवानी जयणा। ए नवमुं कर्मादाण वरजवुं ।

विष वाणिज्य १० - विष लोह हथियार प्रमुखनो व्यापार निषेध । घर

कामे लेवानी जयणा। पण नित्य कोदाडी, पावडा, चांचु, यान, राजप्रमुख ५ मोकलां । आरंभे जयणा । ए विषवाणिज्य १० ।

हवे ५ सामान्य लखिइ छै। यंत्रपिल्लण कर्म इग्यारमुं ११ लिख्यते - घांणी, घरटी, उखल, मूसल, नीसा, कोहलुं, चरखा प्रमुखनो व्यापार निषेध। पिण पोताने काजे दिनप्रतइं घरटिस..... उखल २, मुसल २, खांमणी २, कातर ५, पालि ५, सूडि ५ चूलेतरा २ नी जयणा। सेलडीनो रस काढवो परार्थेनी जयणा । तथा रोगादिकारणे उषधादिकारणे आसव पाक करवानी जयणा । कुटुंबने विषें ए राख्या छैं ते मांहेलां देवा पडे, लेवां पडे तेहनि जयणा । व्यापारने अर्थे अधिकां निषेध । घर अर्थे अधिकनी जयणा । ए रीते यंत्रपीलण कर्मादान वरजूं ११ ।

निलंछण कर्मादान - खषीकर्म - कांन नाक द्विपद चतुपदना कर्ण कंबल समरावण निषेध। पोताना स्वजन संबंधीना बालक पुरुषना कांन नाक वीधाववा पडें तेहनी जयणा । तथा आदेश निर्देश देवानी जयणा, धर्मार्थे जयणा । ए निलंछणकर्म जाणवुं १२ ।

वनदावकर्म - दव पलेवडुं लगाडवा लगडाववा निषेध । अंगीठी(ठा) तापने वास्ते पोताने हेते तथा कुटुंबादिकने अर्थे नित्य प्रभात तापणा प्रमुखनी जयणा । बाकी निषेध । उषध हेते भठी लगाडवानी जयणा, शेष निषेध । ए तेरमुं कर्मादान १३ ।

सरद्रहकर्म चौदमुं - तलाव, कूआ, द्रह, टांका, खंडोखलि, गढवुं प्रमुख सोषवा सोषाववा निषेध, संखारानी जयणा। थोडे पाणिइ पाणीये छांटवानुं यत्न करवुं । तथा पोताना घरनां टांका टांकली कुवा गढवुं गलाववां पडे तेहनी जयणा । धर्म हेतें तीर्थादिकें जयणा । ए चौदमु १४ ।

असतीपोषकर्म पनरमुं - मांजार, मुरगां, मोर, शुडा, स्वान, नपुंसक, पारेवा, चरुकलां, मेनां प्रमुख क्रिडार्थे राखवा रखाववां निषेध । पोषवां पोषाववां धर्मनी बुद्धि निषेध । अनुकंपा हेतुइ जयणा । निद्धंधसपणों हेतें निषेध छें तेहनी जयणा । अनाथ जाणी तथा दीन बापडां पशु जांणी अशनादिक हेतु ते जयणा १५ । ए वरजवुं ।

ए लिख्यां छे ते प्रमाणइ पन्नर कर्मादान पापनां मूल जाणीने ए

परिहरवानो खंप करवो । १५ कर्मादान तजवां ।

अथ व्यापारनी विगत लिखिइ छैं । सूत्रनो, रुनो, व्याजवटानो, चोपडनो, धांननो, जलवटनो तथा थलवटनो ए सर्व व्यापार थइने रुपैया _ _ _ _ मोकलो ।

वरस प्रतिं सूआवड कारणे १ करवानी जयणा । दिन प्रतिं चूला २ संधूखानी जयणा । अग्नि कोइ मांगे तेहने आपवानी जयणा । दलवुं, दलाववुं, खांडवुं, खंडाववुं, भरडवुं, भरडाववुं, मास मध्ये मण १० आरंभे जयणा । पांच पर्वि निषेध ।

साहमिवच्छलादिक धर्म कारणें जयणा । विवाहादिकार्यैं जयणा । लींपण मास प्रते ४ मोकलां, कारणविशेषे अधिकनी जयणा । लाकडां छांणा इंधण थइ रुपैया १०० वरस प्रते जयणा । धोलि खडी, कलिचुनो करोठि थइने मण १० मासमास प्रतें [जयणा] । पंचपर्वी एतले मास प्रतिं दिन ५ नीलवण न वावरवी । तेमां केरी केलुं मोकलुं । भेलसंभेल रोगादि कारणनि जयणा।

वरस प्रतें आमलां, कंकोडी मण ०।, साबु सेर २०, आरिठा मण ०॥, नी जयणा । कसाइ, वाघरी, मोचि, ढेढ प्रमुखने हाथे करीने व्याजे दोकड़ा आपवा निषेध, कसाइ, वाघरीने अपाववा निषेध । वरस प्रतें विवाह कार्य तथा स्वजन संबंधीनइ आदेश निर्देश देवानी जयणा । स्वजनादिकनां विवाहादिक होइं, तथा मोहदाक्षिण्य होइं तेहना विवाहादिकने विषें अग्रेसरि थवुं पडे तेहनी जयणा इत्यादि ज्ञेयं ।

अथ स्नानविधि लिख्यते - आमलां, छासनी खेल, चणानो, तुवरिनो, गहुनो, मगनो, चोखानो, बाजरिनो आटो, माटी प्रमुख स्नान करवानो आगार। तेल प्रमुखना ए [आगार] मोकला मासे १५ सेर उपरांत निषेध । खांड लिंबुनी जयणा इत्यादि ।

अथ अभ्यंगणविधि लिख्यते - धुपेल, तेल, सरसिउं, एरंडिउ, मोगरेल, लाखेल खांपण प्रमुख सेर १५ उपरांत निषेध, कारणे जयणा ॥ इत्यादि ॥

उद्वर्तन विधि लिख्यते -

गेहुं, चिणा, तुअरि, इत्यादिकनो लोट हलद्र प्रमुख सेर १५ उपरांत निषेध, कारणे जयणा । ए रीते जाणवुं ।

अथ मज्जनविधि - गागर ५ उपरांत निषेध जाणवुं पोतानि देहैं, कारणे जयणा इत्यादि । अथ वस्त्रविधि लिख्यते - वेष _ पूर्वे राख्या छै ते उपरांत नहि । इत्यादि पूर्वतो ज्ञेय ।

विलेपनविधि - केसर, सूकडि(सुखड), मलयागरुं, गुलाब, अगर, किरियातु, जव, लिंबु, गहुला, उपली, सूठि, कंकोडी, कपूरकाचली ए राख्या प्रमाणैं विलेपननी जयणा । उपरान्त नहि । रोगादि कारणै विशेष विलेपननी जयणा इत्यादिक ज्ञेयं ।

आभरणविधि लिख्यते - वेलिउं, वेंटी, सांकलि, मादलियां, छलां, तांति, उतरी, बाजुबंध प्रमुख आभूषण सर्व मिलिने रुपैया हजार १०,०००नुं पहिरवुं । तेहथी उपरांति गहेणुं पेहिरवा निषेध । तथा गृहमे पोताना विना कुटुंबादिकनुं, तथा कोइ मेहली जाइ ते राखवानी जयणा । तथा स्वजनादिके आभूषण राखवा सूप्यो [होय] ते पिण पहेरवानी जयणा । तथा धर्मादिकार्ये विशेष भक्तिइं पेरवानी जयणा । इत्यादि आभरणविधि ।

अथ धूपविधि लिख्यते - अगर, लोबान, गुगल, किंदरु, कपूर, शिलाजित प्रमुख भलो धूप वावरुं मास प्रते सेर ५ उपरांति निषेध । देवपूजा अर्थे, धर्मकार्ये विशेष भक्तिइ धूपनी जयणा । तथा रोगादि कारणे सर्वनी जयणा । इत्यादि ज्ञेयं ।

अथ दातणविधि - लिंबडो, जेठीमध, आकडो, चूणनी, करांठिनो, सिंघतरानी बोरडिनो दातण पूर्वे राख्यां छे ते वावरवां, नेतरनी वावरु शेष निषेध, इत्यादि दातणविधि छैं ।

अथ अथाणु - सूकां निर्दोष सर्व मोकलां । राइतां सूकां मोकलां । बोलानो निषेध । ए रीते व्रत पालवां ।

अथ सुखडीनी जाति लिख्यते - सेवइया लाडुआनी जाति १ सेवनुं दल २ खाजलानी जाति ३ फीणां ४ दहिथरानी जाति ५ सांकलिनी जाति ६ मगना लाडु ७ धारानी ८ गांठिया ९ जलेबी १० हेसमि ११ मरकी १२ सूतरफेणी १३ बरफी १४ हलुओ १५ अमृतपाक १६ मांडी १७ घेबर १८ मेसुर १९ चूरमानी जाति २० मोतिचूर २१ चणानु दल २२[?२३] मोतीया लाडु २४ औषधिआ लाडु सर्वजातिनां २५ गुंदवडां २६ पाति सर्वजातिनी मोकली २७

दहिवडां २८ पुरी २९, कुलेरनी जाति ३० पेडां ३१ फाफडानी जाति ३२ साकरदल ३३ तनमनीआ पाक ३४ अनरसा ३५ खारकीया ३६ गुलधाणिनी जाति ३७ रेवडी ३८ छुटुं दल ३९ साटा ४० खरमा ४१ काकरीया ४२ लाखणसाही ४३ सकरपारा ४४ जालरो तलना लाडुआ ४५ तलेला पहुआ ४६ चोखाना नोलीया ४७ गणानी जाति ४८ दहिवडानी जाति ४९ संजूरी ५० मावो ५१ चांदखानी ५२ साकरिया चणा ५३ एलची दाणा ५४ सकरलाकडी ५५ तथा बीजाइं रमकडां प्रमुख, पतासा प्रमुख, सीरो लापसी प्रमुख, इत्यादिक पकवाननी जाति मोकली । शेष निषेध । देश प्रदेश गयें ए राख्याथी उपरान्त पकवान जाणिने खावां निषेध, अजाणे सुखडीमां भेलसंभेले आवे तेहनी जयणा। इत्यादि परिमाण ।

एतद्व्रतस्य अतीचार लिख्यते – हवे सातमा व्रतना ५ अतिचार टालवानो खप करु । ते किम? सचित्त वस्तु टालवानो खप करुं १, अचित वस्तु सचित्त साथे प्रतिबद्ध २, अपक्व आहार ३, दुपक्वाहार ४, तुच्छोषधनुं भक्षण ५ ए सातमा व्रतनां ५ अतिचार टाली यथाशक्ति प्रमाणैं पालवुं इत्यादि । ए रीते व्रत पालवो यथाशक्ति ॥

अथ अष्टम व्रत किंचित् विवरणं – आठमे अनर्थदंड विरमण अणुव्रते – आर्तध्यान, रौद्रध्यान, राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्ति(क्त)कथा ए ४ विकथा टालवानो खप करुं । जुवटुं रमवुं निषेध । सेत्रुंज(शतरंज) सोगठां काकरीइं रमवा निषेध । आदेश देवानी जयणा । तथा माकडां, हाथी, मल्ल झुझता देखवानें ओदेरीने जोवा निषेध । पाटी, बजाणीया, भवाइया, गोलाटीया, सती, चोर, मारी । तो उदेरी जोवा निषेध । पोलि खडकीमां अथवा कोइने घेर गया तिहां रमता होइ ते जोवानी जयणा । तथा कोइ मुओ होइ ते रुदन करतां होइ ते उदेरिने जोवा जावुं नहि । पोलिमां जयणा, चित्त न रहे माटे। जिहां हईयें तिहाथी वरस प्रते तोफान वार २० ताइ जोवानी जयणा, उपरांति निषेध । वरघोडा प्रमुख उदेरी जोवा अन्य गृहे जइ वार २० वरस प्रतै मोकलां। पोताना घरनी करवानी तो जयणा । अन्य २० जोवा उपरांति निषेध। सगासंबंधी मिलतांनी जयणा। तथा मार्गे जाता आवतां तोफान देखुं तथा बेठां देखुं तेनी जयणा पण उदेरी लख्यां प्रमाणे ।

पापोपगरण पाली, सूडि, चूलेतरु, कोहाडा, कोडाला, तावडा, पावडा, कोसि, लोहनां शस्त्र अग्नि प्रमुख अन्य लोकने न आपुं । स्वजन कुटुंब पाडोसिने छुटुं तिहा आपवानी जयणा ।

ए आठमा व्रतनां ५ अतिचार छें, ते टालवानो खप करु । हास्य कंदर्प न दीपाववो १, नेत्रादिक विटचेष्टा न करवी २, असंबद्ध बहु भाषित न बोलवुं ३, अधिकरण घणां एकठां करी न राखुं ४, भोगातिरिक्त थोडुं जोइइं ते घणुं न लेवुं ५ । ए रीते आठमो व्रत पालवानो खप करु इत्यादि ।

अथ नवम सामायिक व्रत प्रारभ्यते । तत्र नवमैं सामायिक व्रत – तिहा सामायिक लीधे थकैं सामायिकना ३२ दोष मन वचन कायाना मलिने, ते दोष रहित पालवानो खप करु । तिहां मास प्रते प्रतिक्रमणां २ करु । मास प्रतें सामायिक ५ करवा । ते दिन ३० मै एके ओछो दिन थाइ तोय मास एकें पूरा सामायिक करिने पोहचाडुं । ते न पुंहचाइ तो जेटला ओछा रहे तेटला दिन सचित्त तथा घी न खावुं । रोगादिकारणैं परवसैं अशुचिपणें जयणा । तथा गामान्तर गया मासमां सामायिक ओछां थाइं ५ मां, पण पूरां न पडे तेहनी जयणा । शरीर शुद्धपणैं अंतरायरहितपणैं मास १मां सामायिक ५ करवां ।

हवे ए नवमां व्रतमां ५ अतिचार टालवानो खप करु । १. मनदुष्प्रणिधांन २ वचनदुःप्रणिधांन ३ कायदुःप्रणिधान ४ सामायिक काल पुंहता विना पारवुं ५ सामायिक शून्यपणे आदर्युं ए पांच अतिचार जाणुं, पिण आदरु नहि । ए रिते नवमुं सामायिक व्रत पालुं ॥

अथ देशावकाशिक व्रत लिख्यते – दशमे देशावकाशिक शिक्षाव्रते दिन प्रते चौद नियम प्रभाते संभारवानो सांझें संखेपवानो खप करु । तीरछुं ४ दिसिविदिसि गाऊ_ऊंचुं गाउ_नीचुं गाउ_ए रीतै छठ्ठा व्रतमां मोकलुं राख्युं छे ते प्रमाणे इहां । ए व्रत नित्यैं संभारवुं तथा दिशा संखेपी वरसमां २ दिवसनां दिसावसागिक करु ।

दशमा व्रतना ५ अतिचार टालवानो खप करु । १. नियम उपरांतथी वस्तु अणाववी नहि, २. नियम उपरांत शब्द न करवो, ३. नियम उपरांत वस्तु मोकलवी नहि, ४. नियम उपरांत पुद्गलनो प्रक्षेप न करवो, [५. नियम उपरांत रूप देखाडवुं] ए पांच अतिचार जाणुं, पिण आदरु नहि । ए रीतै

दशम व्रत विवरण जाणवुं ॥

अथ एकादशमः । अथ एकादशमः व्रत प्रारंभ्य[ते] - इग्यारमो पोषधोपवास शिक्षाव्रतें वर्षमध्ये पोषह १ अहोरत्तो करवो । न थाय तो दिवसना २ पोषध पुहचाडवा । शेष करवानो खप करुं, कारणै जयणा ।

इक्यारमां व्रतना पांच अतिचार टालवानो खप करु. १ संथारानी भूमिका जोइ नहि. २ उच्चार ते लघुनीति-वडीनीतिनी भूमिका जोइ नहि. ३ तथा पूंजी नहि. ४ तथा पडिलेही नहि. ५ तथा भोजननी चिंता कीधी, ए पांच अतिचार वर्जवानो खप करु । अतिचार जाणुं, पिण आदरु नहि इति एकादशमः व्रतः ॥

अथ द्वादशमव्रत लिख्यते - बारमे अतिथि-संविभाग शिक्षाव्रतइं वरस प्रतें १ अतिथिसंविभाग करवा । साधुसाध्वीनो योग न मिले तो सुधर्म्मी श्रावक तथा श्राविकानी भंक्ति करुं ।

बारमा व्रतना ५ अतिचार जाणुं पिण आदरु नहि । १ महात्मा आव्यै संचित्त वस्तु ढांकी २ पीयारी (पराई) वस्तु कीधी ३ सचित्त वस्तु उपर मूंकी ४ मत्सर धरी दान् दीधुं ५ काल अतिक्रमावीने यतिने वहोरवा तेड्यां । ए पांच अतिचार बारमा व्रतनां टालवानो खप करुं । इति द्वादशमव्रतं संपूर्णं ॥ श्रीरस्तु ॥श्री॥ इति द्वादशव्रत समाप्तं पफाण (?)

तथा एणि विधि श्री सम्यक्त्वमूल बार व्रत सुधां पालवा । दिवसनां नियम विसरे तो बीजें दिवसै करवा । मासना नियम विसरे तो बिजें मासें करि पहुचाडुं । वरसना नियम विसरे तो बीजें वरसें करि पुहचाडुं । ए नियम लीधा विसरे तो दिन २ नीलवण न खावी । ए टीप वरस १ मध्ये एकवार वांचवी तथा वंचाववी । तथा जो प्रमाद वस्यै वरसमां १ वार ए टीप न वांची, न वंचावी [तो] जिवारे सांभरे तिवारे दिन १ नीलवण न खावी ।

तथा बारव्रतमां जे जे परिमाण लख्यां छैं ते प्रमाणैं यथाशक्ति करी पालुं । कालदुकाले राजक देवकें तथा शरीरने अस्वास्थ्यपणें जयणा । एहमां वस्तुनुं परिमाण राख्युं छै ते माहेथी पिण संखेपवानो खप करु । जिनाज्ञायें तहत्ति करु । "तमेव सच्चं निशंकं जं जिणेहिं पवेइयं" ए मार्गनी श्रद्धा राखुं । बीजो मार्ग घटमां न रचावुं । ए टीप प्रमाणै जाणता अजाणता किस्योइ दोष लागे ते मन वचन कायाए करी मिच्छामिदुक्कडम् इत्यादि ॥ श्री ॥

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इय सम(म्म)त्तं मए गहियं ॥१॥

लिखितं सा. वल्लभदास वनमालिदास ज्ञाते वणिक श्रीसुरतनां रहेवासि ठेकाणुं शहीयेदपरानी चोकि शेरि मध्ये संवत १९१२ना फागण सुदि १३ बुधे ॥

[नोंध : आ १२ व्रतनी टीप कोई हस्तप्रतमांथी उतारीने सम्पादकश्रीए अमने मोकली हती, ते यथाशक्य सामान्य सुधारा साथे अहीं यथावत् आपवामां आवेल छे.
– सं.]

* * *

अर्हत् पार्श्वनो असली समय

– मधुसूदन ढांकी

कल्पसूत्र अन्तर्गत 'जिनचरित'मां जिनांतरा-प्रसंगे महावीर अने पार्श्व वच्चे २५० वर्षनो गाळो बताव्यो छे. दिगम्बर सम्प्रदायमां पण पञ्चस्तूपान्वयी आचार्य वीरसेनना शिष्य जिनसेनना शिष्य गुणभद्र (प्राय: नवम शती उत्तरार्ध)नुं कथन पण एवुं ज छे. आम बन्ने प्रधान जैन सम्प्रदायनुं कथन समान ज छे. अने आजे तो ए ज मान्यता सर्वस्वीकृत छे.

परन्तु मने तो घणां वर्षोथी ए मिति शंकास्पद लागेली जे अंगेनां मुख्य कारणो नीचे मुजब हतां :

(१) **उत्तराध्ययन** सूत्रना 'केशीगौतमीयम्' अध्ययन अनुसार अर्हत् पार्श्वना साक्षात् शिष्य 'केशी' अने भगवान महावीरना पट्टशिष्य गौतम वच्चे श्रावस्तीना तिन्दुकवनमां थयेल संवादवाळी घटना ए सूचित करे छे के पार्श्व ज्येष्ठ जरूर हता, पण थोडाक दशका पूरता ज. २५० वर्ष जेटलुं अन्तर असम्भवित छे.

(२) **व्याख्याप्रज्ञप्ति**मां पार्श्वनाथना शिष्यो साथेनी वातचीतमां महावीर जे रीते अने जे आदरपूर्वक - अरहा पुरुषादानीय पास - एम उद्बोधन करे छे, तेनाथी एवी छाप ऊठे छे के महावीर पार्श्वने जाणे छे, अने बन्ने वच्चे काळनी दृष्टिए लांबु अन्तर नथी.

(३) महावीरना मातापिता 'पार्श्वापत्य' हता. सम्भव छे के तेओ पार्श्वनाथना साक्षात् उपासक-शिष्यो होय.

आ अनुमानने पुष्ट करतुं एक अन्य अने जोरदार प्रमाण हमणां ज ध्यानमां आव्युं छे, जे हवे अहीं प्रस्तुत करुं छुं.

वाराणसीना राजा अश्वसेन अने वामा(देवी)ना पुत्र पार्श्वना लग्न कुशाग्रपुरना राजा 'पसेनदी' (प्रसेनजीत)नी कुंवरी 'प्रभावती' साथे थयेला. 'पसेनदी'ना पुत्र बिम्बिसारे (श्रेणिक, सेनिय) राजगृहनी स्थापना करेली अने ते गौतम बुद्ध अने ज्ञातृपुत्र महावीर बन्नेनो शिष्य हतो. आ परिस्थितिमां आ

बधा ज एककालिक ठरे छे.

(४) उत्तर प्रदेश अने मगधनी अे काळनी नगरीओ पुरातत्त्वना प्रमाणोथी ईस्वीसन पूर्वे ८मा/७मा सैकानी लई छठ्ठा सैका सुधीमां स्थपायेली. वाराणसी ई.स. पूर्वे १००० वर्ष जेटलुं जूनुं ठर्युं नथी.

हवे अहीं वंशवृक्षो प्रस्तुत करवाथी उपरनां कथनो स्पष्ट थशे.

(वाराणसी) (कुशाग्रपुर)
(उग्रवंश)
अश्वसेन अने वामा पसेनदी
|
पार्श्व अने प्रभावती बिम्बिसार (राजगृह स्थापक)
| (बुद्ध अने महावीरना समकालीन)
केशीकुमार श्रमण
(गौतमना ज्येष्ठ समकालीन)

आम बधा ज स्थानकोणथी जोतां अर्हत् पार्श्व अने अर्हत् वर्धमान महावीर वच्चे थोडाक ज दशकनुं वास्तविक अन्तर होय तेवुं स्पष्ट भासे छे. परम्परावादीओने अलबत्त पोतानो मत बदलवानुं कही न शकाय. आ तो केवळ इतिहासना अभ्यासीओ माटे ज नोंधरूपे अहीं लख्युं छे.

पीपल्स प्लाझा, छठ्ठे माळे,
मेमनगर फायर स्टेशन पासे,
अमदावाद-९

सम्पादकनी नोंध

डॉ. ढांकीनुं अन्वेषण इतिहास अने पुरातत्त्वनी दृष्टिथी थयुं छे. ते बन्ने विधाओ, अद्यावधि उपलब्ध प्रमाणोने ज मुख्य आधार माने छे; परम्परा-प्राप्त शास्त्रीय साक्ष्योने, जरूर पडे त्यां/त्यारे ज, ते पण गौण, साक्ष्यलेखे ते स्वीकारे छे.

प्रसेनजित राजा एक करतां वधु थया होवानुं जैन-बौद्ध ग्रन्थो थकी नक्की थाय छे. प्रभावतीना पिता कुशाग्र (के कुशस्थल?)ना राजा होय, तो अन्य प्रसेनजित

श्रावस्तीना राजा तरीके पण नोंधायेला मळे छे. सेणियना पिता प्रसेनजित करतां प्रभावतीना पिता प्रसेनजित जुदा-पुरोगामी न होई शके ?

केशीस्वामीने पार्श्व-शिष्य तरीके 'उत्तराध्ययन'मां वर्णव्या होवानी वात साची छे. पण व्याख्याकारो तेनो अर्थ 'परम्पराप्राप्त शिष्य' एम ज करे छे, अने ते अर्थनो अस्वीकार करवानुं शक्य केम बने ?

बीजुं, सेणिय अने प्रभावती बन्ने एक ज पितानां सन्तान होय, तो अर्हत् पार्श्व अने सेणिय साळा-बनेवी बन्या गणाय. आवा सम्बन्धनो अछडतोये निर्देश कोई ग्रन्थमां मळ्यो नथी. बल्के सेणिय-पत्नी चेल्लणा अने अर्हत् वीर वर्धमान भाई-बहेन (मामा-फोईनां सन्तान) छे, ते हिसाबे सेणियनी वय एटली बधी अधिक होय तेम मानवुं मुश्केल बनशे.

जे होय ते. डॉ. ढांकी तो सतत संशोधनशील प्रतिभा छे. तेओ ८६ वर्षे अने साव नादुरस्त देहस्थितिमां पण आवुं संशोधनात्मक चिन्तन तथा ऊहापोह करता रहे छे, ते बहु ज महत्त्वनी वात छे. 'मारी वात बधा माने' एवो हठवाद तेमणे दाखव्यो नथी. तेमनो आशय आवा मुद्दे वधु शोध थाय अने वधु प्रमाणो मेळवीने तथ्य सुधी पहोंचाय तेटलो ज छे.

– शी.

जैन दर्शन का नयसिद्धान्त

– प्रो. सागरमल जैन

कथन का वाच्यार्थ और नय :

शब्दों अथवा कथन के सही अर्थ को समझने के लिए यह आवश्यक है कि श्रोता न केवल वक्ता के शब्दों की ओर जाये, अपितु उसके अभिप्राय को भी समझने का प्रयत्न करे । अनेक बार समान पदावली के वाक्य भी वक्ता के अभिप्राय, वक्ता की कथनशैली और तात्कालिक सन्दर्भ के आधार पर भिन्न अर्थ के सूचक हो जाते हैं । वक्ता के अभिप्राय को समझने के लिए जैन आचार्यो ने नय और निक्षेप ऐसे दो सिद्धान्त प्रस्तुत किये है । नय और निक्षेप के सिद्धान्तों का मूलभूत उद्देश्य यही है कि श्रोता वक्ता के द्वारा कहे गये शब्दों अथवा कथनों का सही अर्थ जान सके । नय की परिभाषा करते हुए जैन आचार्यो ने कहा है कि 'वक्ता के कथन का अभिप्राय' ही 'नय' कहा जाता है । कथन के सम्यक् अर्थनिर्धारण के लिए वक्ता के अभिप्राय को एवं तात्कालिक सन्दर्भ को ध्यान में रखना आवश्यक है । नयसिद्धान्त हमें वह पद्धति बताता है, जिसके आधार पर वक्ता के आशय एवं कथन के तात्कालिक सन्दर्भ (Context) को सम्यक् प्रकार से समझा जा सकता है । जैन दर्शन में नय और निक्षेप की अवधारणाएँ स्याद्वाद और सप्तभंगी के विकास के भी पूर्व की है । तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय में हमें नय एवं निक्षेप की ही अवधारणाएँ स्पष्ट रूप में उपलब्ध हो जाती हैं, जबकि वहाँ स्याद्वाद और सप्तभङ्गी की स्पष्ट अवधारणा अनुपस्थित है। तत्त्वार्थ के पाँचवें अध्याय का 'अर्पितानर्पिते सिद्धे'* सूत्र भी मूलतः नय-सिद्धान्त अर्थात् सामान्य एवं विशेष दृष्टि का ही सूचक है । आगमिक विभज्यवाद एवं दार्शनिक नयवाद की अवधारणा के आधार पर ही आगे स्याद्वाद और सप्तभंगी का विकास हुआ है । यदि हम गम्भीरतापूर्वक देखें तो जैनों के नय, निक्षेप, स्याद्वाद और सप्तभङ्गी - इन सभी सिद्धान्तों का सम्बन्ध भाषा-दर्शन एवं अर्थ-विज्ञान (Science of meaning) से है ।

---

* अर्पितानर्पितसिद्धेः - तत्त्वार्थ०-५ ।

नयों की अवधारणा को लेकर जैनाचार्यो ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि वक्ता का अभिप्राय अथवा वक्ता की कथनशैली या अभिव्यक्तिशैली ही नय है तो फिर नयों के कितने प्रकार होंगे ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य सिद्धसेन द्वारा कहा गया है कि जितने वचनपथ (कथन करने की शैलियाँ) हो सकती है, उतने ही नयवाद हो सकते हैं । वस्तुतः नयवाद भाषा के अर्थ-विश्लेषण का सिद्धान्त है । भाषायी अभिव्यक्ति के जितने प्रारूप हो सकते हैं उतने ही नय हो सकते हैं, फिर भी मोटे रूप से जैन दर्शन में दो, पाँच और सप्त नयों की अवधारणा मिलती है । यद्यपि इन सात नयों के अतिरिक्त निश्चय नय और व्यवहार नय तथा द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय का भी उल्लेख जैन ग्रन्थों में है, किन्तु ये नय मूलतः तत्त्वमीमांसा या अध्यात्मशास्त्र से सम्बन्धित है । जबकि नैगम आदि सप्त नय मूलतः भाषा-दर्शन से सम्बन्धित है ।

नय और निक्षेप दोनों ही सिद्धान्त यद्यपि शब्द एवं कथन के वाच्यार्थ (Meaning) का निर्णय करने से सम्बन्धित है, फिर भी दोनों में अन्तर है । निक्षेप मूलतः शब्द के अर्थ का निश्चय करता है, जबकि नय वाक्य या कथन के अर्थ का निश्चय करता है । जैन दर्शन में नयों का विवेचन तीन रूपों में मिलता है – (१) निश्चयनय और व्यवहारनय (२) द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय तथा (३) नैगमादि सप्तनय । भगवतीसूत्र आदि आगमों में नयों के प्रथम एवं द्वितीय वर्गीकरण ही वर्णित हैं, जबकि समवायाङ्ग, अनुयोगद्वार, नन्दीसूत्र एवं तत्त्वार्थसूत्र में नयों का तृतीय वर्गीकरण नैगमादि के रूप में पाया जाता है, इसका भाष्यमान्य पाठ नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र एवं शब्द ऐसे पाँच नयो का उल्लेख करता है, जबकि सर्वार्थसिद्धि-मान्य पाठ नैगम आदि सात नयों का उल्लेख करता है । निश्चय और व्यवहार नय मूलतः ज्ञानपरक दृष्टिकोण से सम्बन्धित है । वे वस्तुस्वरूप के विवेचन की शैलियाँ है, जबकि द्रव्यार्थिक और पर्यायर्थिक नय वस्तु के शाश्वत पक्ष और परिवर्तनशील पक्ष का विचार करते है । सप्त नयों की चर्चा में जहाँ तक नैगमादि प्रथम चार नयों का प्रश्न है वे मूलतः वस्तु के सामान्य और विशेष स्वरूप की चर्चा करते हैं । जबकि शब्दादि तीन नय

वस्तु का कथन किस प्रकार से किया गया है यह बताते है ।

निश्चयनय और व्यवहारनय

ज्ञान की प्राप्ति के तीन साधन हैं – (१) अपरोक्षानुभूति, (२) इन्द्रियजन्यानुभूति और (३) बुद्धि । इनमें अपरोक्षानुभूति या आत्मानुभूति निश्चयनय की और इन्द्रियानुभूति या बुद्धि व्यवहारनय की प्रतीक है । तत्त्वमीमांसा में सत् के स्वरूप की व्याख्या प्रमुख रूप से निश्चय और व्यवहार ये दो दृष्टिकोणो के आधार पर होती है । जैन दर्शन के अनुसार सत् अपने आप में एक पूर्णता है, अनन्तता है । इन्द्रियानुभूति, बुद्धि, भाषा और वाणी, अपनी-अपनी सीमा के कारण अनन्त गुणधर्मात्मक सत् के एकांश का ही ग्रहण कर पाते हैं, यही एकांश का बोध नय कहलाता है। दूसरे शब्दों में सत् के अनन्त पक्षों को जिन-जिन दृष्टिकोणों से देखा जाता है, वे सभी नय कहलाते है ।

नयो का स्वरूप

जैन दार्शनिकों का कहना है कि सत् की अभिव्यक्ति के लिए भाषा के जितने प्रारूप (कथन के ढ़ंग) हो सकते हैं, उतने ही नय, वाद, अथवा दृष्टिकोण हो सकते हैं । वैसे तो जैन दर्शन में नयों की संख्या अनन्त मानी गई है, लेकिन मोटे तोर पर नयों के दो भेद किये जाते है - जिन्हें १. निश्चयनय और २. व्यवहारनय कहते हैं । निश्चयनय और व्यवहारनय में सभी नयों का अन्तर भाव हो जाता है । भगवतीसूत्र में इन दोनों नयों का प्रतिपादन बडे ही रोचक रूप में किया गया है – गौतमस्वामी भगवान महावीर से पूछते हैं कि भगवन् प्रवाही गुड़ में कितने रस, वर्ण, गन्ध और स्पर्श होते है ? महावीर कहते हैं, कि गौतम मैं इस प्रश्न का उत्तर दो नयों से देता हूँ । व्यवहारनय से तो वह मधुर कहा जाता है, लेकिन निश्चयनय से उसमें पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श होते हैं । वस्तुतः निश्चय और व्यवहार दृष्टियों का विश्लेषण यह बताता है कि वस्तुतत्त्व न केवल उतना ही है, जितना इन्द्रियों के माध्यम से वह हमें प्रतीत होता है अथवा बुद्धि उसके स्वरूप का निश्चय कर पाती है । सत्स्वरूप को समझने के लिए इन्द्रियानुभूतिजन्य ज्ञान और बुद्धिजन्य ज्ञान उसके व्यावहारिक पक्ष को ही

पकड़ पाते हैं, क्योंकि बुद्धि भी भाषा पर आधारित है और भाषा का शब्दभण्डार अतिसीमित है। इसी प्रकार अपरोक्षानुभूति भी या आत्मिक अनुभूति भाषा और बुद्धि से निरपेक्ष होती है। जिसे अन्तर्दृष्टि या प्रज्ञा कहा जाता है। निश्चयनय अपरोक्षानुभूति पर और व्यवहारनय इन्द्रियानुभूति और बौद्धिक ज्ञान पर निर्भर करता है। जिस प्रकार व्यवहारनय भी इन्द्रियानुभूति और बौद्धिक विमर्श दोनों की अपेक्षा रखता है। जिस प्रकार जैन दर्शन में ज्ञान और उसकी अभिव्यक्ति के इन्द्रियानुभूतिजन्य ज्ञान, बौद्धिकज्ञान और आत्मिकज्ञान ऐसे ज्ञान के तीन विभाग भी किये गये हैं, ठीक इसी प्रकार बौद्ध दर्शन के विज्ञानवाद में भी परिकल्पित, परतन्त्र और परिनिष्पन्न ऐसे ज्ञान के तीन भेद किये गये हैं। बौद्ध दर्शन का शून्यवाद भी इसे मिथ्या संवृति, तथ्य संवृति और परमार्थ ऐसे तीन रूपों में व्यक्त करता है। आचार्य शङ्कर ने भी इन्हें ही प्रतिभासिक सत्य, व्यवहारिक सत्य और पारमार्थिक सत्य ऐसे तीन विभागों में बाटा है। इन्द्रियानुभूति और बौद्धिक ज्ञान व्यवहार पक्ष को प्रधानता देते है, अतः इनको मिला देने पर दो विधाएँ ही शेष रहती है - व्यवहार (व्यवहारनय) और परमार्थ (निश्चयनय)।

पाश्चात्य-परम्परा में ज्ञान की ही विधाएँ – निश्चयनय और व्यवहारनय

न केवल भारतीय दर्शनों में, वरन् पाश्चात्य दर्शनों में भी प्रमुख रूप से व्यवहार और परमार्थ के दृष्टिकोण स्वीकृत रहे हैं। डॉ. चन्द्रधर शर्मा के अनुसार भी पश्चिमी दर्शनों में भी व्यवहार और परमार्थ दृष्टिकोणों का यह अन्तर सदैव ही माना जाता रहा है। विश्व के सभी महान दार्शनिकों ने इसे किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। हेराक्लिटस के Kato और Ano, पाररमेनीडीज के मत (Opinion) और सत्य (Truth), सुकरात के मत में रूप और आकार (Word and Form), प्लेटो के दर्शन में संवेदन (Sense) और प्रत्यय (Idea), अरस्तू के पदार्थ (Matter) और चालक (Mover), स्पिनोजा के द्रव्य (Substance) और पर्याय (Modes), कांट के प्रपंच (Phenomenal) और तत्त्व, हेगल के विपर्यय और निरपेक्ष तथा ब्रैडले के आभास (Appearance) और सत् (Reality) किसी न किसी रूप में उसी व्यवहार और परमार्थ की धारणा को स्पष्ट करते है। भले ही इनमें नामों

की भिन्नता हो, लेकिन उनके विचार इन्हीं दो दृष्टिकोणों की ओर संकेत करते हैं ।

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, उसके ज्ञान के साधन इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि हैं, और ये तीनों सीमित और सापेक्ष हैं । इसलिए समस्त व्यवहारिक ज्ञान सापेक्ष होता है । जैन दार्शनिकों का कथन है कि एक भी कथन और उसका अर्थ ऐसा नहीं है जो नयशून्य हो, सारा ज्ञान दृष्टिकोणों पर आधारित है, यही दृष्टिकोण मूलतः निश्चयनय और व्यवहारनय कहे जाते हैं ।

तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में निश्चयनय और व्यवहारनय का अर्थ :

तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में निश्चयदृष्टि सत् के उस स्वरूप का प्रतिपादन करती है, जो सत् की त्रिकालाबाधित स्वभावदशा और स्वलक्षण है, जो पर्याय या परिवर्तनों में भी सत्ता के सार के रूप में बना रहता है । निश्चयदृष्टि अभेदगामी सत्ता के शुद्धस्वरूप या स्वभावदशा की सूचक है और उसके पर-निरपेक्ष स्वरूप की व्याख्या करती है । जबकि व्यवहारनय प्रतीति को आधार बनाती है, अतः वह वस्तु के पर-सापेक्ष स्वरूप का विवेचन करता है । निश्चयनय वस्तु या आत्मा के शुद्ध स्वरूप या स्वभाव लक्षण का निरूपण करता है जो पर से निरपेक्ष होता है । जबकि व्यवहारनय पर-सापेक्ष प्रतीति रूप वस्तुस्वरूप को बताता है । आत्मा कर्म-निरपेक्ष शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त है – यह निश्चयनय का कथन है, जबकि व्यवहारनय कहता है कि संसारदशा में आत्मा कर्ममूल से लिप्त है, राग-द्वेष एवं काषायिक भावों से युक्त है। पानी स्व-स्वरूपतः शुद्ध है यह निश्चयनय है । पानी में कचरा है, मिट्टी है वह गन्दा है यह व्यवहारनय है ।

तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारदृष्टि सत्ता के उस पक्ष का प्रतिपादन करती है, जिस रूप में वह प्रतीत होती है । व्यवहारदृष्टि भेदगामी है और सत् के आगन्तुक लक्षणों या विभावदशा की सूचक है । सत् के परिवर्तनशील पक्ष का प्रस्तुतीकरण व्यवहारनय का विषय है । व्यवहारनय देश और काल सापेक्ष है । व्यवहारदृष्टि के अनुसार आत्मा जन्म भी लेती है और मरती भी है, वह बन्धन में भी आती है और मुक्त भी होती है ।

आचारदर्शन के क्षेत्र में व्यवहारनय और निश्चयनय का अन्तर :

जैन परम्परा में व्यवहार और निश्चय नामक दो नयों या दृष्टियों का प्रतिपादन किया जाता है । वे तत्त्वज्ञान और आचारदर्शन - दोनों क्षेत्रों पर लागू होती हैं, फिर भी आचारदर्शन और तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में निश्चयदृष्टि और व्यवहारदृष्टि का प्रतिपादन भिन्न-भिन्न अर्थो में हुआ है । पं. सुखलालजी इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि जैन परम्परा में जो निश्चय और व्यवहार रूप से दो दृष्टियाँ मानी गई हैं, वे तत्त्वज्ञान और आचार - दोनों क्षेत्रों में लागू की गई हैं । सभी भारतीय दर्शनों की तरह जैन-दर्शन में भी तत्त्वज्ञान और आचार - दोनों का समावेश है । निश्चयनय और व्यवहारनय का प्रयोग तत्त्वज्ञान और आचार - दोनों में होता है, लेकिन सामान्यत: शास्त्राभ्यासी इस अन्तर को जान नहीं पाता । तात्त्विक निश्चयदृष्टि और आचारविषयक निश्चयदृष्टि - दोनों एक नहीं है । यहा बात उभयविषयक व्यवहारदृष्टि की भी है । तात्त्विक निश्चय दृष्टि शुद्ध निश्चय दृष्टि है, और आचारविषयक निश्चय दृष्टि अशुद्ध निश्चयनय है । इसी प्रकार तात्त्विक व्यवहार दृष्टि भी आचार सम्बन्धी व्यवहार दृष्टि से भिन्न है । यह अन्तर ध्यान में रखना आवश्यक है ।

द्रव्यार्थिक और पर्यायर्थिक नय :

जैन दर्शन के अनुसार सत्ता अपने आप में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है । उसका ध्रौव्य (स्थायी) पक्ष अपरिवर्तनशील है और उसका उत्पाद-व्यय का पक्ष परिवर्तनशील है । सत्ता के अपरिवर्तनशील पक्ष को द्रव्यार्थिक नय और परिवर्तनशील पक्ष को पर्यायार्थिक नय कहा जाता है। पाश्चात्य दर्शनों में सत्ता के उस अपरिवर्तनशील पक्ष को Being और परिवर्तनशील को Becoming भी कहा गया है । सत्ता का वह पक्ष जो तीनों कालों में एक रूप रहता है, जिसे द्रव्य भी कहते है, उसका बोध द्रव्यार्थिक नय से होता है । और सत्ता का वह पक्ष जो परिवर्तित होता रहता है, उसे पर्याय कहते है, उसका कथन पर्यायार्थिक नय ही है । ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से यह परिवर्तनशील पक्ष भी दो रूपों में काम करता है, जिन्हें स्वभावपर्याय और विभागपर्याय के रूप में जाना जाता है । जिसमें स्वभावपर्यायवस्था को

प्राप्त करना ही उसका नैतिक आदर्श है । स्वभाव पर्याय तत्त्व के निजगुणों के कारण होती है, एवं अन्य तत्त्वों से निरपेक्ष होती है, इसके विपरीत विभाग पर्याय अन्य तत्त्व से सापेक्ष विभाव पर्याय होती है । आत्मा में ज्ञाता द्रष्टा भाव या ज्ञाता द्रष्टा की अवस्था स्वभाव पर्याय रूप होती है । क्रोधादिभाव विभाव पर्यायरूप होते है । परिवर्तनशील स्वभाव एवं विभाव पर्यायों का कथन व्यवहार नय होता है । जबकि सत्तारूप आत्मा के ज्ञाता द्रष्टा नामक गुण का कथन निश्चय नय से होता है ।

नैगम आदि सप्तनय :

यह वर्गीकरण अपेक्षाकृत एक परवर्ती घटक है । तत्त्वार्थसूत्र के भाष्यमान्य पाठ में नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्दनय ऐसे पाँच भेद किये गये हैं । ये पाँचों भेद दिगम्बर परम्परा के षट्खण्डागम में भी उल्लेखित है । तत्त्वार्थसूत्र के भाष्यमान्य पाठ में उसके पश्चात् नैगमनय के दो भेद और शब्दनय के दो भेद भी किये गये है । परवर्तीकाल में शब्द-नय के इन दो भेदों को मूल-पाठ में समाहित करके सर्वार्थसिद्धिमान्य पाठ में नयों के नैगम आदि सप्त नयों की चर्चा भी की गई है । दिगम्बर परम्परा इस सर्वार्थसिद्धिमान्य पाठ को आधार मानकर इन सात नयों की ही चर्चा करती है । वर्तमान में तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में इन सप्तनयों की चर्चा ही मुख्य रूप से मिलती है । इन सात नयों में नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र इन चार नयों को अर्थनय अर्थात् वस्तुस्वरूप का विवेचन करने वाले और शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत इन तीन नयों को शब्दनय अर्थात् वाच्य के अर्थ का विश्लेषण करने वाले कहा गया है। अर्थनय का सम्बन्ध वाच्य-विषय (वस्तु) से होता है । अतः ये नय अपने वाच्य विषय की चर्चा सामान्य और विशेष इन पक्षों के आधार पर करते है । जबकि शब्दनय का सम्बन्ध वाच्यार्थ (Meaning) से होता है । आगे हम इन नैगम आदि सप्तनयों की संक्षेप में चर्चा करेंगे ।

नैगमनय – इन सप्तनयों में सर्वप्रथम नैगमनय आता है । नैगमनय मात्र वक्ता के संकल्प को ग्रहण करता है । नैगमनय की दृष्टि से किसी कथन के अर्थ का निश्चय उस संकल्प अथवा साध्य के आधार पर किया जाता

है जिसे वक्ता वह बताना चाहता है। नैगमनय सम्बन्धी प्रकथनों में वक्ता की दृष्टि सम्पादित की जानेवाली क्रिया के अन्तिम साध्य की ओर होती है। वह कर्म के तात्कालिक पक्ष पर ध्यान न देकर कर्म के प्रयोजन की ओर ध्यान देती है। प्राचीन आचार्यों ने नैगमनय का उदाहरण देते हुए बताया है कि जब कोई व्यक्ति स्तम्भ के लिए किसी जंगल से लकड़ी लेने जाता है और उससे जब पूछा जाता है कि भाई तुम किसलिए जंगल जा रहे हो? तो वह कहता है मैं स्तम्भ लेने जा रहा हूँ। वस्तुतः वह जंगल से स्तम्भ नहीं अपितु स्तम्भ बनाने की लकड़ी ही लाता है। लेकिन उसका संकल्प या प्रयोजन स्तम्भ बनाना ही है। अतः वह अपने प्रयोजन को सामने रखकर ही वैसा ही कथन करता है। हमारी व्यावहारिक भाषा में ऐसे अनेक कथन होते हैं जब हम अपने भावी संकल्प के आधार पर ही वर्तमान व्यवहार का प्रतिपादन करते हैं। डाक्टरी में पढ़ने वाले विद्यार्थी को उसके भावी लक्ष्य की दृष्टि से डाक्टर कहा जाता है। नैगमनय के कथनों का वाच्यार्थ भूत पर आधारित भविष्यकालीन साध्य या संकल्पों के आधार पर होता है। जैसे – प्रत्येक भाद्रकृष्णा अष्टमी को कृष्णजन्माष्टमी कहना। यहाँ वर्तमान में भूतकालीन घटना का उपचार किया गया है।

संग्रहनय – भाषा के क्षेत्र में अनेक बार हमारे कथन व्यष्टि को गौण कर समष्टि के आधार पर होते हैं। जैनाचार्यों के अनुसार जब विशेष या भेदों की उपेक्षा करके मात्र सामान्य लक्षणों या अभेद के आधार पर कोई कथन किया जाता है तो वह संग्रहनय का कथन माना जाता है। उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति यह कहे कि 'भारतीय गरीब है'। तो उसका यह कथन व्यक्तिविशेष पर लागू न होकर सामान्यरूप से समग्र भारतीय जनसमाज का वाचक होता है। प्रज्ञापनासूत्र में यह प्रश्न उठाया गया है कि जातिप्रज्ञापनीय भाषा सत्य मानी जाये अथवा असत्य मानी जाये या व्यक्तिविशेष के आधार पर सत्य या असत्य मानी जाये। जातिप्रज्ञापनीय भाषा में समग्र जाति के सम्बन्ध में गुण, स्वभाव आदि का प्रतिपादन होता है, किन्तु ऐसे कथनों में अपवाद की सम्भावना से इन्कार भी नहीं किया जा सकता। सामान्य या जाति के सम्बन्ध में किये गये कथन कभी व्यक्ति के सम्बन्ध में सत्य भी

होते है और कभी असत्य भी होते हैं । अतः यह प्रश्न भी उठ सकता है कि यदि उस कथन के अपवाद उपस्थित हैं तो उसे सत्य किस आधार पर कहा जाय । उदाहरण के लिए यदि कोई कहे कि स्त्रियाँ भीरू (डरपोक) होती हैं तो यह कथन सामान्यतया स्त्रीजाति के सम्बन्ध में तो सत्य माना जा सकता है किन्तु किसी स्त्रीविशेष के सम्बन्ध में यह सत्य ही हो, ऐसा आवश्यक नहीं है । अतः संग्रहनय के आधार पर किये गए कथन जैसे – भारतीय गरीब हैं अथवा स्त्रियाँ भीरु होती हैं, समष्टि के सम्बन्ध में ही सत्य हो सकते हैं, उन्हें उस जाति के प्रत्येक सदस्य के बारे में सत्य नहीं कहा जा सकता है । यदि कोई इस सामान्य वाक्य से यह निष्कर्ष निकाले कि सभी भारतीय गरीब हैं और बिडला भारतीय है, इसलिए बिडला गरीब है, तो उसका यह निष्कर्ष सत्य नहीं होगा । सामान्य या समष्टिगत कथनों का अर्थ समुदाय रूप से ही सत्य होता है । यह समष्टि या जाति के पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के सम्बन्ध में सत्य भी हो सकता है और असत्य भी हो सकता है । संग्रहनय हमें यही संकेत करता है कि समष्टिगत कथनों के तात्पर्य को समष्टि के सन्दर्भ में ही समझने का ही प्रयत्न करना चाहिए और उसके आधार पर उस समष्टि के प्रत्येक सदस्य के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए ।

व्यवहारनय – व्यवहारनय सामान्यगर्भित विशेष पर बल देता है। व्यवहारनय को हम उपयोगितावादी दृष्टि भी कह सकते हैं । वैसे जैन आचार्यों ने इसे व्यक्तिप्रधान दृष्टिकोण भी कहा है । अर्थप्रक्रिया के सम्बन्ध में यह नय हमें यह बताता है कि कुछ व्यक्तियों के सन्दर्भ में निकाले गए निष्कर्षों एवं कथनों को समष्टि के अर्थ में सत्य नहीं माना जाना चाहिए । साथ ही व्यवहार नय कथन के शब्दार्थ पर न जाकर वक्ता की भावना या लोकपरम्परा (अभिसमय) को प्रमुखता देता है । व्यवहार भाषा के अनेक उदाहरण हैं । जब हम कहते हैं कि घी के घड़े में लड्डू रखे हैं यहाँ घी के घड़े का अर्थ ठीक वैसा नहीं है जैसा कि मिट्टी के घड़े का अर्थ है। यहाँ घी के घड़े का तात्पर्य वह घड़ा है जिसमें पहले घी रखा जाता था।

ऋजुसूत्रनय – ऋजुसूत्रनय को मुख्यतः पर्यायार्थिक दृष्टिकोण का

प्रतिपादक कहा जाता है और उसे बौद्ध दर्शन का समर्थक बताया जाता है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान स्थितियों को दृष्टि में रख कर कोई प्रकथन करता है । उदाहरण के लिए 'भारतीय व्यापारी प्रामाणिक नहीं हैं' - यह कथन केवल वर्तमान सन्दर्भ में ही सत्य हो सकता है । इस कथन के आधार पर हम भूतकालीन और भविष्यकालीन भारतीय व्यापारियों के चरित्र का निर्धारण नहीं कर सकते । ऋजुसूत्रनय हमें यह बताता है कि उसके आधार पर कथित कोई भी वाक्य अपने तात्कालिक सन्दर्भ में ही सत्य होता है, अन्यकालिक सन्दर्भों में नहीं । जो वाक्य जिस कालिक सन्दर्भ में कहा गया है, उसके वाक्यार्थ का निश्चय उसी कालिक सन्दर्भ में होना चाहिए ।

शब्दनय – नयसिद्धान्त के उपर्युक्त चार नय मुख्यतः शब्द के वाच्य-विषय (अर्थ) से सम्बन्धित है, जब कि शेष तीन नयों का सम्बन्ध शब्द के वाच्यार्थ (Meaning) से है । शब्दनय यह बताता है शब्दों का वाच्यार्थ उनकी क्रिया या विभक्ति के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए 'बनारस भारत का प्रसिद्ध नगर था' और 'बनारस भारत का प्रसिद्ध नगर है' इन दोनों वाक्यों में बनारस शब्द का वाच्यार्थ भिन्न-भिन्न है । एक भूतकालीन बनारस की बात कहता है तो दूसरा वर्तमान कालीन । इसी प्रकार 'कृष्ण ने मारा' - इसमें कृष्ण का वाच्यार्थ कृष्ण नामक वह व्यक्ति है जिसने किसी को मारने की क्रिया सम्पन्न की है । जबकि 'कृष्ण को मारा' - इसमें कृष्ण का वाच्यार्थ वह व्यक्ति है जो किसी के द्वारा मारा गया है । शब्दनय हमें यह बताता है कि शब्द का वाच्यार्थ कारक, लिङ्ग, उपसर्ग, विभक्ति, क्रिया-पद आदि के आधार पर बदल जाता है ।

समभिरूढ़नय – भाषा की दृष्टि से समभिरूढ़नय यह स्पष्ट करता है कि अभिसमय या रूढ़ि के आधार पर एक ही वस्तु के पर्यायवाची शब्द यथा - नृप, भूपति, भूपाल, राजा आदि अपने व्युत्पत्त्यर्थ की दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थ के सूचक हैं । जो मनुष्य का पालन करता है, वह नृप कहा जाता है । जो भूमि का स्वामी होता है, वह भूपति होता है । जो शोभायमान होता है, वह राजा कहा जाता है । इस प्रकार पर्यायवाची शब्द अपना अलग-अलग वाच्यार्थ रखते हुए भी अभिसमय या रूढ़ि के आधार पर एक ही

वस्तु के वाचक मान लिए जाते हैं, किन्तु यह नय पर्यायवाची शब्दों यथा - इन्द्र, शक्र, पुरन्दर में व्युत्पत्ति की दृष्टि से अर्थ-भेद मानता है ।

एवंभूतनय – एवंभूतनय शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण मात्र उसके व्युत्पत्तिपरक अर्थ के आधार पर करता है । उदाहरण के लिए कोई राजा जिस समय शोभायमान हो रहा है उसी समय राजा कहा जा सकता है । एक अध्यापक उसी समय अध्यापक कहा जा सकता है जब वह अध्यापन का कार्य करता है । यद्यपि व्यवहार जगत में इससे भिन्न प्रकार के ही शब्द-प्रयोग किये जाते हैं । जो व्यक्ति किसी समय अध्यापन करता था, अपने बाद के जीवन में वह चाहे कोई भी पेशा अपना ले, 'मास्टरजी' के ही नाम से जाना जाता है । इस नय के अनुसार जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, गुणवाचक, संयोगी-द्रव्य-शब्द आदि सभी शब्द मूलतः क्रियावाचक है । शब्द का वाच्यार्थ क्रियाशक्ति का सूचक है । अतः शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण उसकी क्रिया के आधार पर करना चाहिए ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन आचार्यों का नय-सिद्धान्त यह प्रयास करता है कि पर वाक्य प्रारूपों के आधार पर कथनों का श्रोता के द्वार सम्यक् अर्थ ग्रहण किया जाय । वह यह बताता है कि किसी शब्द अथवा वाक्य का अभिप्रेत अर्थ क्या होगा । यह बात उस कथन के प्रारूप पर निर्भर करती है जिसके आधार पर वह कथन किया गया है । नय-सिद्धान्त यह भी बतलाता है कि कथन के वाच्यार्थ का निर्धारण भाषायी संरचना एवं वक्ता की अभिव्यक्ति शैली पर आधारित है और इसलिए यह कहा गया है कि जितने वचनपथ हैं उतने ही नयवाद है । नय-सिद्धान्त शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण ऐकान्तिक दृष्टि से न करके उस समग्र परिप्रेक्ष्य में करता है जिसमें वह कहा गया है ।

—x—

जैन दर्शन का निक्षेपसिद्धान्त

– प्रो. सागरमल जैन

जैन दर्शन में शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण करने के लिए एक प्रमुख सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है – उसे निक्षेप का सिद्धान्त कहते है। निक्षेप के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उपाध्याय यशोविजयजी कहते हैं कि जिससे प्रकरण (सन्दर्भ) आदि के अनुसार अप्रतिपत्ति आदि का निराकरण होकर शब्द के वाच्यार्थ का यथास्थान विनियोग होता है, ऐसे रचनाविशेष को निक्षेप कहते हैं। लघीयस्त्रय में भी निक्षेप की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि निक्षेप के द्वारा अप्रस्तुत अर्थ का निषेध और प्रस्तुत अर्थ का निरूपण होता है। वस्तुतः शब्द का प्रयोग वक्ता ने किस अर्थ में किया है इसका निर्धारण करना ही निक्षेप का कार्य है। हम 'राजा' नामधारी व्यक्ति, नाटक में राजा का अभिनय करने वाले व्यक्ति, भूतपूर्व शासक और वर्तमान में राज्य के स्वामी सभी को 'राजा' कहते हैं। इसी प्रकार गाय नामक प्राणी को भी गाय कहते हैं और उसकी आकृति के बने हुए खिलौने को भी गाय कहते है। अतः किस प्रसङ्ग में शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त किया गया है इसका निर्धारण करना आवश्यक है। निक्षेप हमें इस अर्थनिर्धारण का प्रक्रिया को समझाता है। पं. सुखलालजी संघवी अपने तत्त्वार्थसूत्र के विवचन में लिखते हैं कि "समस्त व्यवहार या ज्ञान के लेन-देन का मुख्य साधन भाषा है। भाषा शब्दों से बनती है। एक ही शब्द प्रयोजन या प्रसङ्ग के अनुसार अनेक अर्थो में प्रयुक्त होता है। प्रत्येक शब्द के कम से कम चार अर्थ मिलते हैं। वे ही चार अर्थ उस शब्द के अर्थ-सामान्य के चार विभाग हैं। ये विभाग ही निक्षेप या न्यास कहलाते हैं। इनको जान लेने से वक्ता का तात्पर्य समझने में सरलता होती है।"

जैन आचार्यों ने चार प्रकार के निक्षेपों का उल्लेख किया है – १. नाम २. स्थापना ३. द्रव्य और ४. भाव।

नामनिक्षेप – व्युत्पत्तिसिद्ध एवं प्रकृत अर्थ की अपेक्षा न रखने वाला जो अर्थ माता-पिता या अन्य व्यक्तियों के द्वारा किसी व्यक्ति या वस्तु

को दे दिया जाता है वह नामनिक्षेप है । नामनिक्षेप में न तो शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ का विचार किया जाता है, न उसके लोकप्रचलित अर्थ का विचार किया जाता है, और न उस नाम के अनुरूप गुणों का ही विचार किया जाता है । अपितु मात्र किसी व्यक्ति या वस्तु को संकेतित करने के लिए उसका एक नाम रख दिया जाता है । उदाहरण के रूप में कुरूप व्यक्ति का नाम सुन्दरलाल रख दिया जाता है । नाम देते समय अन्य अर्थों में प्रचलित शब्दों, जैसे सरस्वती, नारायण, विष्णु, इन्द्र, रवि आदि अथवा अन्य अर्थो में अप्रचलित शब्दों जैसे डित्थ, रिंकू, पिंकू, मोनु, टोनु आदि से किसी व्यक्ति का नामकरण कर देते हैं और उस शब्द को सुनकर उस व्यक्ति या वस्तु में संकेत ग्रहण होता है । नाम किसी वस्तु या व्यक्ति को दिया गया वह शब्द संकेत है - जिसका अपने प्रचलित अर्थ, व्युत्पत्तिपरक अर्थ और गुणनिष्पन्न अर्थ से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है । यह स्मरण रखना चाहिए कि नामनिक्षेप में कोई भी शब्द पर्यायवाची नहीं माना जा सकता है क्योंकि उसमें एक शब्द से एक ही अर्थ का ग्रहण होता है ।

स्थापनानिक्षेप – किसी वस्तु की प्रतिकृति, मूर्ति या चित्र में उस मूलभूत वस्तु का आरोपण कर उसे उस नाम से अभिहित करना स्थापना-निक्षेप है । जैसे जिन-प्रतिमा को जिन, बुद्ध-प्रतिमा को बुद्ध और कृष्ण कीं प्रतिमा को कृष्ण कहना । नाटक के पात्र, प्रतिकृतियाँ, मूर्तियाँ, चित्र – ये सब स्थापनानिक्षेप के उदाहरण है । जैन आचार्यों ने इस स्थापनानिक्षेप के दो प्रकार माने हैं –

१. तदाकार स्थापनानिक्षेप और २. अतदाकार स्थापनानिक्षेप । वस्तु की आकृति के अनुरूप आकृति में उस मूल वस्तु का आरोपण करना यह तदाकार स्थापनानिक्षेप है । उदाहरण के रूप में गाय की आकृति के खिलौने को गाय कहना । जो वस्तु अपनी मूलभूत वस्तु की प्रतिकृति तो नहीं है किन्तु उसमें उसका आरोपण कर उसे जब उस नाम से पुकारा जाता है तो वह अतदाकार स्थापनानिक्षेप है । जैसे हम किसी अनगढ़ प्रस्तरखण्ड को किसी देवता का प्रतीक मानकर अथवा शतरंज की मोहरों को राजा, वजीर आदि के रूप में परिकल्पना कर उन्हें उस नाम से पुकारते हैं ।

द्रव्यनिक्षेप – जो अर्थ या वस्तु पूर्व में किसी पर्याय, अवस्था या स्थिति में रह चुकी हो अथवा भविष्य में किसी पर्याय अवस्था या स्थिति में रहने वाली हो उसे वर्तमान में भी उसी नाम से संकेतित करना - यह द्रव्यनिक्षेप है। जैसे कोई व्यक्ति पहले कभी अध्यापक था, किन्तु वर्तमान में सेवानिवृत्त हो चुका है उसे वर्तमान में भी अध्यापक कहना अथवा उस विद्यार्थी को जो अभी डाक्टरी का अध्ययन कर रहा है डाक्टर कहना अथवा किसी भूतपूर्व विधायक को तथा वर्तमान में विधायक का चुनाव लड़ रहे व्यक्ति को विधायक कहना - ये सभी द्रव्यनिक्षेप के उदाहरण हैं। लोकव्यवहार में हम इस प्रकार की भाषा के अनेकशः प्रयोग करते हैं, यथा - वह घड़ा जिसमें कभी घी रखा जाता था, वर्तमान काल में चाहे वह घी रखने के उपयोग में न आता हो फिर भी घी का घड़ा कहा जाता है।

भावनिक्षेप – जिस अर्थ में शब्द का व्युत्पत्ति या प्रवृत्ति निमित्त सम्यक् प्रकार से घटित होता हो वह भावनिक्षेप है, जैसे - किसी धनाढ्य व्यक्ति को लक्ष्मीपति कहना, सेवाकार्य कर रहे व्यक्ति को सेवक कहना आदि।

वक्ता के अभिप्राय अथवा प्रसङ्ग के अनुरूप शब्द के वाच्यार्थ को ग्रहण करने के लिए निक्षेपों की अवधारणा का बोध होना आवश्यक है। उदाहरण के रूप में किसी छात्र को कक्षा में प्रवेश करते समय कहा गया 'राजा आया' इस कथन का वाच्यार्थ, किसी नाटक के मंच पर किसी पात्र को आते हुए देखकर कहा गया 'राजा आया' इस कथन के वाच्यार्थ से भिन्न है। प्रथम प्रसङ्ग में राजा का वाच्यार्थ 'राजा' नामधारी छात्र है, जबकि दूसरे प्रसङ्ग में राजा शब्द का वाच्यार्थ है - राजा का अभिनय करने वाला पात्र। आज भी हम 'महाराजा-बनारस' और - महाराजा'ग्वालियर' शब्दों का प्रयोग करते हैं। किन्तु आज इन शब्दों का वाच्यार्थ वह नहीं है जो सन् १९४७ के पूर्व था। वर्तमान में इन शब्दों का वाच्यार्थ द्रव्यनिक्षेप के आधार पर निर्धारित होगा, जबकि सन् १९४७ के पूर्व वह भावनिक्षेप के आधार पर निर्धारित होता था। 'राजा' शब्द कभी राजा नामधारी व्यक्ति का वाचक होता है। तो कभी राजा का अभिनय करने वाले पात्र का वाचक होता है। कभी

वह भूतकालीन राजा का वाचक होता है तो कभी वह वर्तमान में शासन करने वाले पात्र का वाचक होता है। निक्षेप का सिद्धान्त हमें यह बताता है कि हमें किसी शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण उसके कथन-प्रसङ्ग के अनुरूप ही करना चाहिए। अन्यथा अर्थबोध में अनर्थ होने की सम्भावना बनी रहेगी। निक्षेप का सिद्धान्त शब्द के वाच्यार्थ के सम्यक् निर्धारण का सिद्धान्त है, जो कि जैन दार्शनिकों की अपनी एक विशेषता है।

C/o. प्राच्य विद्यापीठ,
शाजापुर (म.प्र.)

—x—

'कज्जमाणे कडे' मां नयसम्मति

– मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

'कज्जमाणे कडे' (क्रियमाणं कृतम्) आ वात कया नयने सम्मत होइ शके ते विशे अत्रे विचारणा करवानो उपक्रम छे. आ सिद्धान्तना जमालिअे करेला अपलापनी कथा तो प्रसिद्ध ज छे,[१] तेथी ते अंगे वधु न लखतां सीधी नयविचारणा ज करीअे.[२]

निश्चयनयनी अपेक्षाअे कोईपण क्रिया क्षणिक ज होय छे. मतलब के क्रियामात्र क्षणवारमां उत्पन्न थई, पोतानुं कार्य पेदा करीने, ते ज क्षणे नाश पामी जाय छे. बे के तेथी वधु क्षणो सुधी अेक ज क्रिया प्रवर्ते, ते आ नयना मते शक्य ज नथी. आपणे जे क्रियाने दीर्घकालिक समजीअे छीअे, ते वास्तवमां अनेक क्षणिक क्रियाओनो समूह ज होय छे. आपणी दृष्टिनी स्थूलताने लीधे आपणे अे समूहगत क्रियाओने अलग-अलग नथी जोई शकता, अने तेथी आपणे अे क्रियासमूहने अेक ज क्रिया गणी लईअे छीअे.

अेटलुं ज नहीं, अे दरेक क्षणिक क्रियाथी जन्य फळ पण जुदुं जुदुं ज होय छे. पण आपणे अेटलुं सूक्ष्म नथी समजी शकता अने अेटले ज आपणे घणी बधी क्षणिक क्रियाओ पछीनी क्षणिक क्रियाथी जन्य जे कार्य आपणी स्थूल दृष्टिमां जणाय, तेने ज ते तमाम क्षणिक क्रियाओनुं कार्य गणी लईअे छीअे.

आ वातने अेक उदाहरण द्वारा समजीअे : अेक कुम्भार घडो बनावी रह्यो छे. तेनी आ घटोत्पादन प्रक्रियानो आरम्भ तेणे माटीनो पिण्ड लईने चाकडे मूक्यो अेने गणीअे अने समाप्ति घडानी निष्पत्तिने समजीअे तो आ बे आरम्भबिन्दु अने समाप्तिबिन्दु वच्चे घणो लांबो काळ व्यतीत थाय छे. आ तमाम काळ आपणी स्थूल दृष्टिअे घटनिष्पादननो काळ छे, केमके आपणे घडाने ज आ समग्र क्रियाकलापना फळ तरीके गणी लीधो छे. परन्तु जो आपणे थोडीक काळजी राखीने तपासीशुं तो जणाशे के आ क्रियानी प्रत्येक क्षणे माटीनो पिण्ड बदलातो रह्यो छे. ते पिण्ड वच्चे अमुक क्षणो सुधी

परिवर्तन पामतो नथी, पछी अचानक अेक क्षणे बदलाय छे, वळी पाछो अपरिवर्तनशील बने छे - आवुं तो थतुं नथी. प्रत्येक क्षणे ते नवां नवां परिवर्तन पामतो ज रहे छे, अने ते माटे जवाबदार छे प्रत्येक क्षणे थती नवी नवी क्रिया. पहेली क्षणे थती प्रक्रिया माटीना पिण्डने थोडोक बदले छे, बीजी क्षणिक प्रक्रिया वळी ओर बदलाव लावे छे. अने कार्यकारणभावनी आ शृङ्खला ज अेक अेवी क्षणिक क्रियाने जन्म आपे छे के जे घडाने उत्पन्न करी आपे छे. आ अवान्तर परिवर्तनोमांथी जे परिवर्तनो आपणे समजी शकीअे तेने आपणे शिवक, स्थास, कोश, कुशूल व. नाम आपीअे छीअे. वळी, कुम्भार जे क्रियाओ करे ते वखते अेना मनमां घडानो ज अभिलाष होय छे, तेथी आपणे ते तमाम क्रियाओने घटजनक गणीअे छीअे. पण वास्तविक रीते तो घटजनक तो अेक अन्तिम क्रिया ज होय छे, अे पहेलांनी तमाम क्रियाओ तो घटनी पूर्व अवस्थाओनी जनक होय छे, घटनी नहि.

टूंकमां निश्चयनयनी दृष्टिअे दरेक क्रिया क्षणिक ज होय छे अने अे दरेक क्रिया स्वतन्त्र कार्यने जन्म आपे छे.

प्रश्न अे थाय के क्षणिक क्रियाथी जन्य फळरूप कार्य, क्षणिक क्रियाना समये ज जन्मे छे के क्षणिक क्रियाना पछीना समये ? आपणी सामान्य बुद्धि अेम कहेशे के क्रिया पूरी थाय (मतलब के कार्यनी क्रियमाणता समाप्त थाय) अेटले कार्य जन्मे छे. अर्थात् क्रियाक्षणनी पछीनी (-क्रियमाणता न होवानी) क्षणे कार्य जन्मे छे. पण क्षणिकक्रियावादी निश्चयनय अेम कहेशे के क्रिया चालु थाय ते ज क्षणे क्रियानी पूर्णाहुति पण थाय छे अने त्यारे ज ते क्रियाथी जन्य कार्य जन्मी जाय छे. क्रिया पूरी थाय ते क्षणथी पछीनी क्षणे जे कार्य जन्मे तेने ते क्रियाजन्य केम कहेवाय ? केमके 'कारण होय त्यारे कार्यनी उत्पत्ति होय अने कारण न होय त्यारे कार्यनी उत्पत्ति न होय' आवी व्यवस्था छे. हवे जो क्रिया नाश पामी जाय त्यारे कार्य जन्मे तो क्रिया अे कार्यनुं कारण ज नहीं गणाय, केमके अे नहोती त्यारे पण कार्य जन्म्युं. अने तो तो कार्यनी उत्पत्ति माटे क्रिया करवानी जरूर ज नहीं रहे.

वळी, जे क्षेत्रमां क्रिया थती होय अेनाथी जुदा क्षेत्रमां कार्य उत्पन्न थाय अे शक्य नथी ज, पछी अे जुदुं क्षेत्र क्रियाक्षेत्रथी गमे तेटलुं पासे केम

न होय? अने जो कारणक्षेत्र अने कार्यक्षेत्र जुदां न होइ शके, तो कारणक्षण अने कार्यक्षण जुदी केम होई शके ?[३] जे क्षणे कारणरूप क्रिया छे ते क्षणे कार्यरूप फळ न जन्मे, परन्तु क्रिया नष्ट थई जाय पछी कारणाभाव होय अे क्षणे कार्य जन्मे, आवी व्यवस्था तो केवी रीते स्वीकाराय ? माटे क्रिया पोताना अस्तित्वनी क्षणे ज कार्य जन्मावे छे ते स्वीकारवुं पडशे.

आनो सूचितार्थ अे थाय के वस्तुनी उत्पादनप्रक्रिया जे क्षणे प्रवर्ते छे, ते ज क्षणे वस्तु उत्पन्न थाय छे. अर्थात् जे वस्तु जे क्षणे कराई रही छे - 'क्रियमाण' छे, ते ज वस्तु ते ज क्षणे कराई चूकी छे - 'कृत' छे. प्रभु वीरे करेली 'कज्जमाणे कडे'नी प्ररूपणा आ नयविचारणाथी संगत बने छे.

आ विचारणाना अन्य फलितार्थो नीचे मुजब छे :

१. निश्चयनय मुजब चरमक्षणे प्रवर्तती क्रिया ज कार्यजनक होय छे, ते पूर्वेनी क्षणिक क्रियाओ नहीं. तेथी आ नय अेक चरमक्षणनी क्रियाने ज कारण गणे छे, ते पूर्वेनी क्रियाओ तेना मते कारण नथी गणाती.[४]

२. क्रियमाण अे कृत ज होय छे, पण कृत साध्यतावस्थामां क्रियमाण पण होय छे अने सिद्धतावस्थामां क्रियमाण नथी पण होतुं.

३. 'क्रियमाण'थी साध्यता सूचवाय छे अने 'कृत' सिद्धता सूचवे छे. तेथी साध्यता-सिद्धता वच्चेनो विरोध 'कज्जमाणे कडे' प्ररूपणाने मिथ्या ठेरवे छे. पण आ नयना मते साध्यता 'साध्यताविशिष्टसिद्धता' रूप ज होय छे, तेथी उपरोक्त विरोध नथी रहेतो.

४. क्रिया (कार्यनी उत्पादनप्रक्रिया) अने निष्ठा (कार्यनी समाप्ति) अे बे जुदी बाबत छे, पण क्रियाकाल अने निष्ठाकाल अेक होई शके छे.

* * *

व्यवहारनय लोकव्यवहार, प्रत्यक्षदर्शन व. पर ध्यान आपे छे. तेथी ते अेम कहेशे के कुम्भार लांबा समय सुधी प्रयत्न करे त्यारे घडो जन्मे छे. आ बधो वखत तेणे घडो बनाववानी ज महेनत करी होय छे, तेथी ते घटोत्पादननी ज प्रक्रिया छे.[५] आ क्रिया चालु होय त्यारे तमे कुम्भारने पूछशो के "घडो बनी गयो ?" तो ते अेम कहेशे के "ना, घडो बनाववानुं चालु

छे.'' आनो अर्थ अे छे के घडो ज्यारे 'क्रियमाण' होय छे, त्यारे 'कृत' नथी होतो. केमके जे बनी रह्युं छे ते 'बनी गयेलुं' केवी रीते कहेवाय ?

वळी, 'क्रियमाण'थी वर्तमानकाळ सूचवाय छे, ज्यारे 'कृत' अतीतकाळनुं सूचक छे, तो बे भिन्न काळने अेक केवी रीते गणाय ? घडो बनाववानी प्रक्रिया पूरी थाय त्यारे ज घडो जन्मे छे. माटे क्रियाकाळ अे क्रियाकाळ छे अने निष्ठाकाळ अे निष्ठाकाळ छे, बन्ने अेक न गणी शकाय. तेथी 'क्रियमाण' वस्तु 'क्रियमाण' ज रहे छे, 'कृत' नथी बनती अने 'कृत' 'क्रियमाण' होय ते पण सम्भवित नथी.

टूंकमां, आ मते 'कज्जमाणे कडे' अे सिद्धान्तनी संगति शक्य नथी.

* * *

हमणां अेक ठेकाणे आ अंगे एक पूज्य महानुभाव द्वारा थोडीक जुदी रजूआत थयेली जोवा मळी. आ रजूआत अनुसार 'कज्जमाणे कडे' आ वचन निश्चयनय अने व्यवहारनय बन्नेने सम्मत छे. तफावत अेटलो छे के अेक क्षणनी क्रियानी वात होय त्यारे आ निश्चयनयने सम्मत वचन छे, अने ज्यारे दीर्घकालिक क्रियानी वात होय त्यारे व्यवहारनयने सम्मत वचन छे.

आ माटेनी त्यां करवामां आवेली मुख्य दलीलो नीचे मुजब छे :

१. संथारो पाथरवो अे अेक दीर्घकालीन प्रक्रिया छे. जमालिअे ''संथारो पथराई गयो ?'' अेम पूछ्युं त्यारे संथारो पूरेपूरो पथरायो नहोतो ज, पाथरवानुं चालु हतुं. माटे शिष्ये ते वखते आपेलो ''पथराई गयो'' अेवो जवाब कया नयने सम्मत गणवो ? आ जवाब निश्चयनयने तो सम्मत नथी ज, केमके निश्चयनये तो संथारो चरमसमये ज पथराय छे, ते पूर्वे नहीं. अने जमालिअे पूछ्युं त्यारे चरम समय तो नहोतो ज. माटे व्यवहारनयथी ज आ वाक्यने संगत गणी शकाय.

   तेथी चरम समयना अभिप्राये जो पथराता संथाराने 'पथरायेलो' अेम बोलो तो निश्चयनयनी संमति जाणवी अने ते पूर्वेना समयोमां व्यवहारनयनी संमतिथी आवा प्रयोगो थाय छे.

२. साडीनो अेक भाग बळतो होय तो पण 'साडी बळी मई' आवुं कथन,

ऋजुसूत्रनय (निश्चयनय)ना मते साडीना अेक भागमां आखी साडीनो उपचार करीने ज शक्य बने छे. अेटले ज्यारे आवो उपचार न होय त्यारे 'बळी रहेली साडी बळी गई छे' आवा वचनमां ऋजुसूत्रनी संमति न होवाथी व्यवहारनयनी संमति ज मानवानी रहे छे.

३. अथवा संथारो लगभग पथराई गयो होय त्यारे पण संस्तीर्णत्वनो व्यवहार थवामां, ते ज काळे संथारानो जे अेक देश संस्तीर्यमाण होय, अेने ज संस्तीर्ण जणाववानो अभिप्राय होतो नथी. कारण के 'आवो अने सूओ' आवो अभिप्राय अेमां संगत थई शकतो नथी... आखो संथारो पथराई गयो होवानुं जणाववानो अभिप्राय ज अेमां होय छे, अे माटे उपचार आवश्यक बनी रहे छे. जे उपचारबहुल व्यवहारनयने ज संमत होवाथी आवा 'क्रियमाणं कृतं' प्रयोगमां व्यवहारनयनी संमति मानवी ज पडे छे.

* * *

'कज्जमाणे कडे' अे वात दीर्घकालीन क्रियाने अपेक्षीने व्यवहारनये सम्मत बनी शके छे अे अंगे उपर रजू थयेली दलीलो थोडोक विचार मांगी ले तेवी जणाय छे –

जेटला अंशे संथारो पथराई चूक्यो होय अेटला अंशमां आखा संथारानो उपचार करवो व्यवहारनयना मते अवश्य शक्य छे. पण अेवो उपचार कर्या पछी पण 'संथारानो अेक भाग पथराई रह्यो छे' अेवा वाक्यप्रयोगने बदले 'संथारो पथराई रह्यो छे' अेवो ज वाक्यप्रयोग ते करी शकशे. 'संथारो पथराई गयो छे' आवो वाक्यप्रयोग, संथारो पथराई रह्यो होय अेवा काळे करवो, ते अेकला व्यवहारनयमते शक्य ज नथी बनतो. केमके नथी ते क्रियाकाळ-निष्ठाकाळनो अभेद स्वीकारतो के नथी ते वर्तमानत्व-अतीतत्वनो अेक ज जग्याअे अन्वय स्वीकारतो. स्वयं ते महानुभावे पण व्यवहारनयमते क्रियाकाळ-निष्ठाकाळनो अभेद के वर्तमानत्व-अतीतत्वनो अविरोध सिद्ध नथी कर्यो. ते वगर तो 'कज्जमाणे कडे'मां व्यवहारनयनी संमति प्रमाणभूत कई रीते गणी शकाय ?

जमालिना शिष्यना जवाबनी संगति निश्चयनयमते कई रीते थई शके ते अंगे आपणने विशेषावश्यक महाभाष्य-गाथा २३३०नी मलधारीय टीकामां

सूचन मळे छे. तदनुसार निश्चयनयना मते क्रियाकाळ-निष्ठाकाळनो अभेद होवाथी, संथारानो जे भाग वर्तमानसमये पथराई रह्यो छे, ते भाग पथराई चूकेलो ज छे. अने संथाराना ते पथराई चूकेला भागमां व्यवहारनयथी आखा संथारानो उपचार करीने ऋजुसूत्रनय(निश्चयनयविशेष)नी अपेक्षाअे 'संथारो पथराई चूक्यो छे' अेवो प्रयोग करी ज शकाय छे.[६] निश्चयनयमते अनुपचरित संथारो भले चरम समये ज पथरातो होय, पण व्यवहारनयथी संथाराना अेक भागमां संथारानो उपचार करीने तेने निश्चयनयमते अचरम समये पण पथरातो समजी ज शकाय छे.

जो के ऋजुसूत्रनयमते उपचार शक्य नथी होतो. तेथी उपचार करवा पूरतुं तेने उपचारमूलक व्यवहारनयनुं अवलम्बन लेवुं पडे छे.[७] पण तेम कर्या पछी क्रियाकाळ-निष्ठाकाळनो अभेद स्वीकारवानी बाबतमां तो ते स्वतन्त्र ज छे.

आ ज वातनुं अन्य उदाहरण जोईअे. भगवतीजी - शतक १, उद्देश १, सूत्र ८मां श्री गौतमस्वामीजीअे प्रभु वीरने पूछ्युं छे के "से नूणं भंते! चलमाणे चलिए ?" (हे भगवान्! जे (कर्म) चलायमान होय तेने चलित कहेवाय ?)आनो जवाब आपतां प्रभु वीरे निश्चयनयना आश्रये फरमाव्युं छे के "हंता गोयमा! चलमाणे चलिए" (हा गौतम! जे चलायमान होय ते चलित होय छे.) आ पदार्थने स्पष्ट रीते समजावतां टीकाकार श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजे जणाव्युं छे के "पटनी उत्पादनप्रक्रियाना प्रारम्भमां प्रथम तन्तुनो प्रवेश थाय अे साथे ज पट उत्पद्यमान पण बने छे अने उत्पन्न पण बने छे. जो प्रथम तन्तुना प्रवेशसमये पण पट उत्पन्न न थाय, तो अे प्रवेशनी क्रिया तो व्यर्थ बनशे ज, पण पट क्यारेय उत्पन्न न थाय एवी आपत्ति पण आवशे. केम के जो क्रियानी प्रथम क्षणे ए उत्पन्न नथी थतो, तो पछीनी क्षणोअे पण अे उत्पन्न नहीं ज थाय. केमके प्रथमक्षण अने पछीनी क्षणो वच्चे कोईक तात्त्विक तफावत तो छे ज नहीं. माटे प्रथम तन्तुना प्रवेशकाले ज पट कंईक अंशे उत्पन्न थई ज गयो छे, अने एटलो अंश अन्य क्षणोनी क्रिया द्वारा उत्पन्न नथी ज थतो अेम स्वीकारवुं पडशे. जो के पटनी आ उत्पत्ति उत्पद्यमानताथी विशिष्ट होय छे, अेटले पट लोकव्यवहारमां उत्पन्न नथी गणातो. पण निश्चयनये तो अे उत्पन्न ज छे. अे ज रीते उदयावलिकाना प्रथम समये कांईक

अंशे चलायमान कर्म निश्चयनयथी तो 'चलित' ज गणाय छे."

आ ज वात संथाराना दृष्टान्तमां लागु पाडीअे तो संथारानो अेक देश पथरातो होय तो पण निश्चयनयना मते तो संथारो तेटला अंशे पथरायेलो ज छे. अने तेथी 'संथारो पथराई गयो छे' अेम बोली ज शकाय. पण अेनी निश्चयनयनी दृष्टिअे ज संगति शक्य छे. अेकला व्यवहारनये नहीं ज. जुओ -

"क्रियमाणमकृतमित्यपि भगवान् कथञ्चिद् व्यवहारनयमतेन मन्यते एव, परं 'चलमाणे चलिए, उईरिज्जमाणे उईरिए' इत्यादिसूत्राणि निश्चयनयमतेनैव प्रवृत्तानि ।" (विशेषावश्यकभाष्य-गाथा २३२४ मलधारीय टीका)

"व्यवहारनयश्चलितमेव चलितमिति मन्यते, निश्चयस्तु चलदपि चलितमिति" (भगवतीजी - शतक १, उद्देश १, सूत्र ९ टीका)

"क्रियमाणमेतन्नये न कृतम् । न च वर्तमानत्वमतीतत्वं चैकत्र व्यवहार-सिद्धम् ।" (-नयरहस्य)

टूंकमां, दीर्घकालीन क्रियानी अपेक्षाअे पण व्यवहारनयथी उपगृहीत निश्चयनयना अवलम्बनथी ज 'कज्जमाणे कडे'नी संगति शक्य छे, पूर्वोक्त रजूआत जणावे छे तेम अेकला व्यवहारनयना मते नहीं.

साडीनो छेडो बळतो होय अने ते साडीना अेक देशमां आखी साडीनो उपचार न करीअे तो ऋजुसूत्रनयना मते 'साडी बळी गई' अेम नहीं कहेवाय, व्यवहारनये ज अेम कही शकाशे - आ मतलब धरावती दलीलनी विचारणा लगभग उपर आवी ज गई छे. छतां पण अेक प्रश्न थाय छे के ते महानुभाव कहे छे तेम अेक देशमां आखी साडीनो उपचार न करीअे तो, व्यवहारनय पण 'साडी बळी रही छे' के 'साडी बळी गई' आवा प्रयोगोमां संमति आपे खरो ?

वळी, महाभाष्यकार भगवन्त स्वयं गाथा २३२९मां फरमावे छे के "प्रभु वीरनां वचनोने अनुसरीने ऋजुसूत्रनयनी अपेक्षाअे ज साडीनो अेक छेडो बळतो होवा छतां 'साडी बळी गई' आवो प्रयोग शक्य छे, ते सिवाय नहीं." तो व्यवहारनयना स्वतन्त्र मते आवा प्रयोगनी संगति करवानी कल्पना पण केम करी शकाय ?

जो के पूर्वोक्त रजूआत अनुसार क्रिया पूरी थवामां बहु ज थोडो काळ बाकी रह्यो होय त्यारे लोकव्यवहारमां 'घडो थई गयो, रसोई बनी गई, संथारो पथराई गयो' आवा वाक्यप्रयोगो थता ज होय छे. पण आवा प्रयोगोना आधारे व्यवहारनयने 'कज्जमाणे कडे' सम्मत छे एम साबित न करी शकाय. केमके आवा प्रयोगो वखते क्रियानी शीघ्र समाप्ति विवक्षित होवाथी वस्तुनी क्रियमाणता अने क्रियानी अवशिष्टता गौण थई जाय छे, अने तेथी वस्तुनो 'कृत' तरीके व्यवहार थाय छे. माटे आवा प्रयोगोमां 'कडे' होय छे, 'कज्जमाणे कडे' नहीं. परन्तु जो आवां स्थानोअे वस्तुनी क्रियमाणताने ध्यानमां लईअे तो तो त्यां कृतत्वनो व्यवहार, पूर्वे जणाव्युं तेम, व्यवहारनयथी उपगृहीत निश्चयनयना मते ज थई शके, स्वतन्त्र व्यवहारनयनी अेमां संमति नहि होय.

ध्यानमां राखवा जेवी वात अे पण छे के व्यवहारनय लोकव्यवहारानुरोधी अवश्य छे, पण अेटला मात्रथी सघळोये लोकव्यवहार 'व्यवहारनय' नथी बनी जतो. लोकव्यवहारना 'मारुं शरीर, धर्मास्तिकायादि पांचना प्रदेशो' जेवा केटलाय वाक्यप्रयोगो अन्य नयोनी अपेक्षाअे पण होय छे. माटे लोकव्यवहारमात्रथी कोई पण पदार्थ व्यवहारनयसम्मत बनी ज जाय अेवुं नथी होतुं.

आ समग्र चर्चानो सार अेटलो ज छे के 'कज्जमाणे कडे' अे सिद्धान्त स्वतन्त्र व्यवहारनयमते सम्मत थई शके के नहीं ते अंगे पुनः चिन्तन आवश्यक छे. बहुश्रुत भगवन्तो आ बाबतमां प्रकाश पाथरे तेवी विनन्ति.

*

टिप्पण

१. जमालिना विस्तृत चरित्र माटे जुओ भगवतीजी - शतक ९, उद्देश ६

२. आ विचारणामां मुख्य आधार आ साहित्यनो रह्यो छे : विशेषावश्यकमहाभाष्य - गाथा २३०७ थी २३३२ अने अेनी मलधारीय टीका, भगवतीजी - शतक १, उद्देश १, सूत्र ८-९ अने अेनी अभयदेवसूरिकृत टीका, नयोपदेश श्लोक ३१,३२ - सटीक अने नयरहस्य गत 'कज्जमाणे कडे'नी चर्चा.

३. आ दलील उपरोक्त साहित्यमां साक्षात् नथी अपाई, पण विस्तारभये अहीं न नोंधायेली दलीलोमांथी अेने फलित करी शकाय छे.

४. कुर्वद्रूपत्वाच्चरमकारणमेव क्रियानयाभिमतं कारणं युक्तं, नाऽन्यत् । -नयरहस्य.

५. आ ज कारणे व्यवहारनय चरमक्षण पूर्वेनां कारणोने पण कारण तरीके स्वीकारे छे.

६. यो यो दाह्यस्य पटादेर्देशस्तन्त्वादिः समये समयेऽग्निभावमेति- दह्यते इत्यर्थः, तत्तद्देशरूपं वस्तु तस्मिन् समये दह्यमानं भण्यते, तथा दग्धमपि तदेव वस्तु तस्मिन्नेव समये भण्यते । अतो दह्यमानमेव दग्धम् । यत्तु देशमात्रेऽपि दग्धे 'सङ्घाटी मे दग्धा' इति त्वं वदसि, तत् सङ्घाट्येकदेशेऽपि सङ्घाटीशब्दोपचारादिति मन्तव्यमिति ।

७. अत्रोपचारमूलव्यवहारनयोपगृहीतस्यर्जुसूत्रनयस्य प्रवृत्तिरित्युक्तं भवति - नयोपदेश - ३२ टीका

८. तत्र योऽसावाद्यश्चलनसमयस्तस्मिंश्चलदेव तच्चलितमुच्यते । कथं पुनस्तद् वर्त्तमानं सदतीतं भवतीति?, अत्रोच्यते, यथा पट उत्पद्यमानकाले प्रथमतन्तुप्रवेश उत्पद्यमान एवोत्पन्नो भवतीति । उत्पद्यमानत्वं च तस्य प्रथमतन्तुप्रवेशकालादारभ्य पट उत्पद्यत इत्येवं व्यपदेशदर्शनात् प्रसिद्धमेव । उत्पन्नत्वं तूपपत्त्या प्रसाध्यते। तथाहि, उत्पत्तिक्रियाकाल एव प्रथमतन्तुप्रवेशेऽसावुत्पन्नः । यदि पुनर्नोत्पन्नोऽभविष्यत् तदा तस्याः क्रियाया वैयर्थ्यमभविष्यत्, निष्फलत्वाद् । उत्पाद्योत्पादनार्था हि क्रियाः भवन्ति । यथा च प्रथमे क्रियाक्षणे नासावुत्पन्नस्तथोत्तरेष्वपि क्षणेष्वनुत्पन्न एवाऽसौ प्राप्नोति । को ह्युत्तरक्षणक्रियाणात्मनि रूपविशेषो? येन प्रथमया नोत्पन्नस्तदुत्तराभिस्तूत्पाद्यते । अतः सर्वदैवाऽनुत्पत्तिप्रसङ्गः । दृष्टा चोत्पत्तिः, अन्त्यतन्तुप्रवेशे पटस्य दर्शनाद् । अतः प्रथमतन्तुप्रवेशकाल एव किञ्चिदुत्पन्नं पटस्य, यावच्चोत्पन्नं न तदुत्तरक्रिययोत्पाद्यते, यदि पुनरुत्पाद्येत तदा तदेकदेशोत्पादन एव क्रियाणां कालानां च क्षयः स्यात्, यदि हि तदंशोत्पादननिरपेक्षा अन्याः क्रिया भवन्ति तदोत्तरांशानुक्रमणं युज्यते नाऽन्यथा। तदेवं यथा पट उत्पद्यमान एवोत्पन्नस्तथैवाऽसङ्ख्यातसमयपरिमाणत्वादुदयावलिकाया आदिसमयात् प्रभृति चलदेव कर्म्म चलितम् ।

* * *

सिद्धहेमशब्दानुशासन – प्राकृत अध्यायगत केटलांक उदाहरणोनां सम्पूर्ण पद्यो

– मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

सिद्धहेमशब्दानुशासन - प्राकृत अध्यायमां निरूपित प्राकृतभाषाओना नियमोमांथी केटलाकने उदाहृत करवा श्रीहेमचन्द्राचार्ये ते समये प्रचलित प्राकृत साहित्यमांथी उदाहरणो प्रस्तुत करेलां छे. अत्यारे उपलब्ध साहित्यमांथी आ उदाहरणोनां मूल स्रोत शोधवानुं, उपलब्ध साहित्यनी विशाळताने कारणे मुश्केल बने छे. घणुं साहित्य लुप्त थई गयुं छे अे पण मुश्केली खरी. वळी, ज्यां पद्यना वचला अेक-बे शब्दो लेवाया होय त्यां तो मूल स्थाननी ओळख असम्भवप्राय गणाय. छतां कृतिओनी मूल्यवत्ता, स्वीकृति, प्रसिद्धि, पौर्वापर्य व. नक्की करवामां आवो प्रयास घणो मूल्यवान नीवडे छे.

वेबर, पिशेल, नीती दोल्ची, डो. कुलकर्णी, पं. श्रीवज्रसेनविजयजी, प्रा. विजय पण्ड्या व.अे आ दिशामां करेला प्रयासोनी नोंध, तेओअे शोधेलां मूल स्थान व. ने लगतो डो. हरिवल्लभ भायाणीनो मूल्यवान लेख अनुसन्धान - २, पृ. २५-४९ पर प्रकाशित थयो छे. तेओअे स्वयं पण घणां मूल स्थान शोधी आप्यां छे. प्रस्तुत लेख अे दिशामां ज अेक वधु प्रयास छे.

खम्भातना श्रीशान्तिनाथ जैन ताडपत्रीय ज्ञानभण्डारमां वि.सं. १२२४ना वर्षे लखायेली हैम प्राकृतव्याकरणनी ताडपत्र प्रति छे.★ कलिकालसर्वज्ञनी हयातीमां ज लखायेली आ प्रत पाठशुद्धिनी दृष्टिअे तो महत्त्वनी छे ज, पण तेमां प्रतिलेखक द्वारा अथवा कोईक विद्वान द्वारा करवामां आवेलां टिप्पणो पण बहुमूल्य छे. तेथी सं. २०४५मां खम्भातमां स्थिरता दरम्यान पूज्यपाद गुरुभगवन्त आ. श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी महाराजे प्रत उकेलीने पाठशुद्धि तेमज टिप्पणोनी नोंध तैयार करी हती.

आ टिप्पणोमां घणे ठेकाणे टिप्पणकार विद्वाने उदाहरणोनां मूल

★ प्रतनी पुष्पिका : संवत १२२४ वर्षे भाद्रपद शुदि ३ बुद्धे महं० चण्डप्रसादेन सुतयशोधवलस्याऽर्थे लिखिता ।

सम्पूर्ण पद्यो नोंध्यां छे. पाठशुद्धिनी दृष्टिअे तो आ पद्यो महत्त्वनां छे ज, पण उपर जे प्रयास अंगे वात करी ते रीते पण तेमनुं महत्त्व ओछुं नथी. अत्यारे उदाहरणोनां मूल सम्पूर्ण पद्यो केटलेक ठेकाणे मूल प्राकृत व्याकरणमां ज प्रवेशी गयां छे;* तो भायाणीसाहेबे जे सामग्री सङ्कलित करीने आपी छे, तेना आधारे पण घणां मूल पद्यो आपणने सांपडे छे. तो पण आ टिप्पणीमांथी लगभग १८ जेटलां मूल पद्यो नवां जडे छे. अत्यार सुधी अज्ञात रहेलां १८ पद्यो अेक साथे मळे ते केटली आनन्ददायक वात छे ! आ सम्पूर्ण पद्यो उपलब्ध थतां तेटलां उदाहरणोनां मूल स्रोत शोधवा तो सहेलां बनशे ज; पण आमांथी जे पद्यो कालकवलित कृतिओनां हशे, ते तो पुनर्जीवित ज गणवानां ! पद्योनी नोंध अत्रे व्याकरणना सूत्रक्रमे आपी छे. पद्योनी संस्कृत छाया करवामां पूज्य मुनिराज श्रीकल्याणकीर्तिविजयजी म.नो अमूल्य सहयोग मळ्यो छे.

*

सूत्र १. ८४ **दिट्ठिक्कथणवट्टं**

आम्ब(?)लवलिअवामोरू-वल्लरीलंघिएयरोरुजुअं ।
तंसट्ठियदरपरिअत्ति-अंगदिट्ठिक्कथणवट्टं ॥

(आम्बल(?)वलितवामोरू-वल्लरीलङ्घितेतरोरुयुगम् ।
त्र्यस्रस्थितदरपरिवर्तिताङ्गदृष्टैकस्तनपट्टम् ॥)

सूत्र २.१२० **हरए महपुंडरिए**

पउमे च महापउमे तेगिच्छी केसरी दहे चेव ।
हरए महपुंडरिए पुंडरिए चेव उ दहाओ ॥

(पद्मश्च महापद्मः तेगिच्छी केसरी ह्रदश्चैव ।
ह्रदश्च महापुण्डरीकः पुण्डरीक एव तु द्रहाः ॥)

---

* जेमके सूत्र ६मां मूल उदाहरण तो 'गूढोअरतामरसाणुसारिणी' अेटलुं ज हतुं. तेने बदले प्राकृतव्याकरणनी मुद्रित वाचनाओमां आ उदाहरणनुं मूल पद्य 'रक्खउ वो रोमलया०' (गउडवहो-१८८) आखुं जोवा मळे छे.

सूत्र २.१२९ **चिंव व्व कूरपिक्का**

बाला लायण्णनिही अहिणवछल्लिव्व माउलिंगस्स ।
चिंच व्व कूरपिक्का जणेइ लालाउलं हिअयं ॥
(बाला लावण्यनिधिरभिनवत्वगिव मातुलिङ्गस्य ।
अम्लीव ईषत्पक्वा जनयति लालाकुलं हृदयम् ॥)

सूत्र २.१९० **णाइँ करेमि रोसं**

णाइँ करेमि रोसं चिंतिअकरणेण तस्स मणखेअं ।
कायव्वेसु कुणंती नो जाणं कत्थ वच्चिस्सं ॥
(न करोमि रोषं चिन्तितकरणेन तस्य मनःखेदम् ।
कर्तव्येषु कुर्वन्ती न जानामि कुत्र व्रजिष्यामि ॥)

सूत्र २.१९६ **दे पसिअ ताव सुंदरि**

दे पसिअ ताव सुंदरि पुणो वि सुलहाइँ भूसिअव्वाइं ।
एसा मयच्छि! मयलंछणुज्जला गलइ छणराई ॥
(दे (-सम्मुखीभव) प्रसीद तावत् सुन्दरि! पुनरपि सुलभानि भूषयितव्यानि ।
एषा मृगाक्षि! मृगलञ्छनोज्ज्वला गलति क्षणरात्रिः ॥)

सूत्र २.१९८ **तं पि हु अच्छिन्नसिरी**

तं पि हु अच्छिन्नसिरी सेविज्जइ तं पि वारणारीहिं ।
तुह कडआ रिउनयरस्स भिज्जए नाह! न तिलो वि ॥
(तदपि खलु अच्छिन्नश्रीः सेव्यते तदपि वारनारीभिः ।
तव कटकाद् रिपुनगरस्य भिद्यते नाथ! न तिलमपि ॥)

सूत्र २.१९८ **तं खु सिरीए रहस्सं**

तं खु सिरीए रहस्सं जं सुचरिअमग्गणिक्करसिओ वि ।
अप्पाणमोसरंतं गुणेहिं लोओ न लक्खेइ ॥
(तत् खलु श्रियाः रहस्यं यत् सुचरितमार्गणैकरसिकोऽपि ।
आत्मानमपसरन्तं गुणेभ्यो लोको न लक्षयति ॥)

सूत्र २.२१७ **अणुकूलं वोत्तुं जे**

अणुकूलं वोत्तुं जे दाउं अइवल्लहं पि वेसे वि ।
कुविअं च पसाएउं सिक्खउ लोओ तुमाहिंतो ॥

(अनुकूलं वक्तुं यद् दातुमतिवल्लभमपि द्वेष्येऽपि ।
कुपितं च प्रसादयितुं शिक्षतां लोकस्त्वत्तः ॥)

सूत्र ३.१६ **दिअभूमिसु दाणजलोल्लिआइं**

दिअभूमिसु दाणजलोल्लिआइं कालम्मि जाइं उत्ताइं ।
ताइं तुह नाह! रोहंति संपयं विहवबीआइं ॥
(द्विजभूमिषु दानजलार्द्रितानि काले यान्युप्तानि ।
तानि तव नाथ! रोहन्ति सम्प्रति विभवबीजानि ॥)

सूत्र ३.८५ **सव्वस्स वि एस गई सव्वाण वि पत्थिवाण एस मही**

सव्वस्स वि एस गई सव्वाण वि पत्थिवाण एस मही ।
न उणिक्कविक्कमरसा हवंति सिरिभाइणो पुरिसा ॥
(सर्वस्याऽप्येषा गतिः सर्वेषामपि पार्थिवानामेषा मही ।
न पुनरेकविक्रमरसा भवन्ति श्रीभाजः पुरुषाः ॥)

सूत्र ३.८५ **एस सहाओ च्चिअ ससहरस्स**

एस सहाओ च्चिअ ससहरस्स खीणस्स वंकिमा जं से ।
रिद्धीइं पंजला हुंति सुवुरिसा न उण विवयासु ॥
(एष स्वभावश्चैव शशधरस्य क्षीणस्य वक्रिमा यत् तस्य ।
ऋद्ध्या प्राञ्जला भवन्ति सुपुरुषा न पुनर्विपत्सु ॥)

सूत्र ३.८७ **अह मोहो परगुणलहुअयाइ**

अह मोहो परगुणलहुअयाइ जं किर गुणा पयट्टंति ।
अप्पाणं गारवं चिअ गुणाण गुरुअत्तणनिमित्तं ॥
(असौ मोहः परगुणलघुकतया यत् किल गुणाः प्रवर्तन्ते ।
आत्मनो गौरवं चैव गुणानां गुरुत्वनिमित्तम् ॥)

सूत्र ३.१०५ **उन्नम न अम्मि कुविआ**

उन्नम न अम्मि कुविआ अवऊहसु किं मुहा पसाएसि ।
तुह मन्नुसमुप्पन्नेण मज्झ माणेण वि न कज्जं ॥
(उन्नम नाऽस्मि कुपिता अवगूहस्व किं मुधा प्रसादयसि ?।
तव मन्युसमुत्पन्नेन मम मानेनाऽपि न कार्यम् ॥)

सूत्र ३.१०५ **जेण हं विद्धा**

जम्मंतराइं सत्त वि चलणे जीएण मयण! अग्घिस्सं ।
जइ तं पि तेण बाणेण विंधसे जेण हं विद्धा ॥
(जन्मान्तराणि सप्ताऽपि चरणौ जीवेन मदन! अर्घिष्यामि ।
यदि तमपि तेन बाणेन विध्येर्येनाऽहं विद्धा ॥)

सूत्र ३.१०५ **अहयं कयप्पणामो**

सीसत्तेणोवगया संपयमिदग्गिभूइणो जस्स ।
अहयं कयप्पणामो स महाभागोऽभिगमणिज्जो ॥
(शिष्यत्वेनोपगताः साम्प्रतमिन्द्राग्निभूती यस्य ।
अहं कृतप्रणामः स महाभाग्योऽभिगमनीयः ॥)

सूत्र ३.१३५ **तिसु तेसु अलंकिया पुहई**

विहलं जो अवलंबइ आवइपडिअं च जो समुद्धरइ ।
सरणागयं च रक्खइ तिसु तेसु अलंकिया पुहई ॥
(विह्वलं योऽवलम्बते आपदि पतितं च यः समुद्धरति ।
शरणागतं च रक्षति त्रिभिरेतैरलङ्कृता पृथिवी ॥)

सूत्र ३.१४१ **बहुजाणय रूसिउं सक्कं**

हियअट्ठिअमन्नुं खुअ अणरुट्ठमुहं पि मं पसायंतं ।
अवरद्धस्स वि न हु दे बहुजाणय! रूसिउं सक्कं ॥
(हृदयस्थितमन्युं खलु अनूर्ध्वमुखीमपि मां प्रसादयतः ।
अपराद्धस्याऽपि नैव ते बहुज्ञायक! रोषितुं शक्नोमि ॥)

सूत्र ४.२६४ **भयवं तित्थं पवत्तेह**

एए देवनिकाया भयवं बोहेंति जिणवरिंदं तु ।
"भद्द! जगज्जीवहिअं भयवं! तित्थं पवत्तेह" ॥
(एते देवनिकाया भगवन्तं बोधयन्ति जिनवरेन्द्रं तु ।
"भद्र! जगज्जीवहितं भगवन्! तीर्थं प्रवर्तय ॥")

*

आ उपरान्त हैम प्राकृतव्याकरणनी अेक प्राचीन हस्तप्रतमां पण टिप्पणमां चार नवां पद्यो मळ्यां –

सूत्र ३.४१ **अम्मो भणामि भणिए**

अयि दीहराइं सुण्हे सीसे दीसंति पत्ताइं ।
अम्मो भणामि भणिए तुम्हाण वि पंडरा पिठ्ठी ॥
(अयि दीर्घाणि स्नुषे! शीर्षे दृश्यन्ते पत्राणि ।
अम्ब! भणामि भणिते युष्माकमपि पाण्डुरं पृष्ठम् ॥)

सूत्र ३.७३ **इमिआ वाणिअधूआ**

इमिआ वाणिअधूआ मज्झ कए मुक्कजीविओ य सोमित्ती ।
निप्फलवूढभुयभरो नवर मए चेय लहुईकओ ॥
(इमा वाणिजदुहिता मम कृते मुक्तजीवितश्च सौमित्रिः ।
निष्फलव्यूढभुजभरः केवलं मया चैव लघूकृतः ॥)

सूत्र ३.८७ **ताओ एआओ महिलाओ**

ताओ एआओ महिलाओ माणुन्नय(यं) देइ मं अवमाणं ।
अणुसरिसं ति भणंती आहंतूण पडियथिरत्तणुच्छंगं ॥
(ता एता महिला मानोन्नतं ददति मामपमानम् ।
अनुसदृशमिति भणन्त्यः आहत्वा पतितस्थिरत्वोत्सङ्गम् (?) ॥)

सूत्र ३.८७ **अह णे हिअएण हसइ मारुयतणओ**

संखोहिअमयरहरो संभंतुव्वत्तदिट्ठरक्खसो लोओ ।
वेलायडमुज्झंतो अह णे हियएण हसइ मारुयतणओ ॥
(संक्षोभितमकरधरः सम्भ्रान्तोद्वृत्तदृष्टराक्षसो लोकः ।
वेलातटमुज्झन् असावस्मान् हृदयेन हसति मारुततनयः ॥)

—x—

विहंगावलोकन

– उपा. भुवनचन्द्र

अनुसन्धाननो ६०मो अंक 'विज्ञप्तिपत्र विशेषाङ्क' रूपे प्रगट करवानुं सम्पादकश्रीए विचारेलुं, तेने स्थाने विशेषाङ्कना चार भाग करवा पड्या (६०-६३-६४-६५). दरेक अङ्क पूर्वना अङ्कथी मोटो थतो गयो. जैन साहित्यना एक पेटाप्रकार समा विज्ञप्तिपत्रो (वि.प.) एकत्र करवानुं अने सम्पादित करवानुं (अने हजी सुधी न थयेलुं) आ मोटुं काम आ निमित्ते थवा पाम्युं छे. वि.-पत्रो भेगां करवानुं काम मूळमां ज कडाकूटवाळुं छे. ए पत्रोने उकेली-वांची-समजी वाचना तैयार करवी ए काम पण शारीरिक-मानसिक श्रम अने समय मागी ले. छन्द, अलङ्कार, कल्पनाविहार, ऐतिहासिक सन्दर्भो, कूटकविता, चित्रबन्ध, व्याकरणना कठिन/अप्रचलित प्रयोगो - आवु बधुं वि.प.मां ठसोठस भरेलुं होय. जुदा जुदा प्रदेश अने समयनी भाषाओ प्रयोजाई होय. पत्रोने क्षति पहोंची होय, लिपिकार द्वारा लेखनसमये भूलो थई होय – वि.प.ना सम्पादके आवा प्रश्नोनो सामनो करवानो होय छे. माटे, आ जे काम थयुं छे तेने मात्र सङ्ग्रह-संकलननुं काम कोई समजी ले तो तेमां तेनी आ क्षेत्रनी अज्ञता ज प्रगट थाय.

दरेक वि.प.नो परिचय/सारांश ते ते सम्पादक द्वारा अपायो छे. ते उपरान्त अनुसन्धानना सम्पादकजीए प्रत्येक वि.प. उपर अभ्यासनोंध लखी छे. आनाथी आ सङ्ग्रहनी सार्थकता वधी छे.

वि.प.नो विषय सीमित होय छे, रचनाशैली के माळखुं पण परम्परागत रूपे निश्चित होय छे. तेम छतां कविओए साहित्यना उत्तम नमूना बने एवुं रूप आ वि.प.ने आप्युं छे. वर्ण्य विषय एक समान होवा छतां एक बीजाने भूलावे एवां नावीन्यपूर्ण वर्णनो द्वारा विद्वान मुनिओए पत्रोने रसमय बनाव्या छे - बेठी नकलनो के नीरस एकविधतानो तो प्रश्न ज ऊभो थतो नथी.

प्रभुस्तुति, नगरवर्णन, गुरुपरम्परा, पर्युषण-चातुर्मासना वृत्तान्त, क्षमापना, विनन्ति – वि.प.नां आ सामान्य विषयवस्तु छे. गुरु, राजा, नगर, नगरजनो,

श्रेष्ठिओ, पर्वतो इत्यादिनुं दस्तावेजी वर्णन वि.प.मां मळे. आथी, भाषा, इतिहास, प्रजा, संस्कृति व.ना संशोधक विद्वानोने माटे वि.पत्रो महत्त्वनी आधारभूत सामग्री पूरी पाडे.

जैन संघ माटे महत्त्वनी गणाय एवी, आ वि.पत्रोमांथी तरी आवती केटलीक 'हकीकतो' पर नजर नाखीए :

- उपधाननो उल्लेख लगभग बधा जूना वि.प.मां छे. उपधान चातुर्मास दरम्यान थता हता – ए तथ्य आ पत्रोमांथी ऊपसी आवे छे.
- दैनिक व्याख्याननो समय सूर्योदयवेळानो हतो.
- प्रायः सर्व वि.प.मां आगम आधारित व्याख्याननो उल्लेख छे. चरित्रवाचननो नथी.
- कल्पसूत्रनां नव व्याख्यान थतां.
- पर्युषणना कर्त्तव्योमां याचकोने दान आपवानी प्रणालिका हती.
- स्वप्नदर्शन के तेनी उछामणीनो उल्लेख कोई पण पत्रमां नथी.
- विज्ञप्तिपत्रो उपयोगी होई तेनी नकलो थती. केटलाक वि.प. आवी नकल रूपे मळे छे, मूळ पत्र अप्राप्य छे.
- अमुक पत्रोना काचा खरडा मळ्या छे, मूळ पत्र नथी मळ्या.
- कोई कोई पत्रो एक ग्रन्थ जेवुं स्वरूप धरावे एटला विशाल छे.

अङ्क ६४

आ खण्डमां २५ वि.प्र. प्रकाशित छे. सर्वप्रथम वि.प. एक प्राचीन बृहत्काय वि.प.नो एक भाग छे. अनु.ना सम्पादकजीए आ वि.प.ना बारामां पर्याप्त छणावट करी छे. आनो एक हिस्सो 'गुर्वावली' नामे प्रसिद्ध छे, जेमां ५०० श्लोक छे. स्तोत्रो रूपे बीजो थोडो भाग छूटो छवायो मळे छे. अहीं १६२ जेटला श्लोको पहेलीवार प्रकाशमां आवे छे. आ बधुं मूळ वि.प.नी समये समये थती रहेली प्रतिलिपिओ रूपे मळे छे. विक्रमना पन्दरमा सैकामां रचायेल ए अद्‌भुत पत्रनी मूळ प्रति मळवानी तो हवे कोई शक्यता ज नथी.

पृ. १५, श्लो. २७ नो उत्तरार्ध आम वांचीए तो अर्थ बेसे छे : **तरसा सारतत्त्वाप्तिं वितरेर्हितदायकः** । ए ज पृष्ठमां नीचेथी बीजी पंक्ति आम होई

शके – '**शिवमां मां वशिनं नय वि-भव !**'. पृ. १७, पं. ५- **तत्तत्तथा कुरु कुबोध०**, पं. ६मां **०ऽखिलधामधाम[न्]**, पं. ११मां **०दिद्विषतो हि**..... आटलो पाठ कल्पी शकाय छे, आगळनो पाठ खण्डित छे. पृ. १८, पं. नीचेथी ६ - **०योगाद्दधता**. पृ. १९, पं. ५ - **शर्म**. पृ. १९, पं. १६ - **नय स्फुरद्०**. पृ. २३, पं. १० - **त्वं येतिषे**. पं. १२ - **०ज्ञान** ! पं. २८ - **परध्येये**. पृ. २५, पं. नीचेथी ३ - **गतामय** !. आवी पाठशुद्धि वाचन करतां सूझी छे.

क्र. २ वाळो वि.प. अत्यन्त अशुद्ध छे, परन्तु रचयितानी विद्वत्ता तो प्रतिबिम्बित थाय छे ज. क्र. ३नुं वि.प. विशिष्ट छे. प्रत्येक श्लोकनो पूर्वार्ध प्राकृतमां अने उत्तरार्ध संस्कृतमां छे. रचयिता छे उपा. विनयविजयजी महाराज. प्रखर प्रतिभाना स्वामी उपाध्यायजी आवा पत्रमां कोइक नवो उन्मेष दाखव्या विना केम रहे ?

'**आनन्दविज्ञप्ति**' नामक वि.प. (क्र. ४) वि.पत्रो लखनारने उपयोगी थवा लखायो होय एवुं लागे छे. अथवा कविए लखवा धारेला वि.प.नो खरडो पण होई शके. श्लोक ५० नो उत्तरार्ध '**इति वा**' करीने बीजी वार लख्यो छे. श्लो. १५ (५२)मां उत्तरार्धमां पण '**श्रमणा**' शब्द छे त्यां '**श्रमण्यः**' होवुं घटे, कारण के त्यां '**सर्वा**' एवुं स्त्रीलिङ्गी विशेषण पण छे ज. श्लो. १७ (५४)मां '**प्रसद्यं प्रसाद्य मे**'ना स्थाने '**प्रसद्य प्रसाद्यं मे**' एवो पाठ होवानी शक्यता छे.

वि.प्र. क्र. ५ नानो होवा छतां प्रगल्भ पाण्डित्यनो परिचय आपी जाय छे. क्र. ६वाळो वि.प. प्रौढ पाण्डित्य अने स-रस काव्यतत्त्वथी मनोहर बन्यो छे. क्र. ५ वाळो पत्र, हकीकतमां वि.प.ना उत्तररूपे गच्छपति द्वारा लखायेल प्रसादपत्र छे.

७मा क्र. नो पत्र, तेना सम्पादको कहे छे तेम, वि.पं. लखनारने उपयोगी अंशो रूपे लखायो छे. कवित्व ध्यानाकर्षक छे. 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः' ए जाणीता श्लोकनो विस्तार कर्यो होय एवा गुरुस्तुतिना ५-६ श्लोक आमां छे के जे स्तुति रूपे प्रचलित थई शके. कविए आमां गुरुनी कायानुं सांगोपांग वर्णन करवानी नवीनता दाखवी छे – जे अघरुं होवा छतां कविए कुशळताथी

पार पाड्युं छे. 'गुरुनां नेत्रोनुं वर्णन १५ जेटला श्लोकोमां थयुं छे. पृ. १०८, श्लो. २ मां **०दतिशप्यान** (?) छे त्यां **०दतिशयवान्**' पाठ विचारी शकाय. श्लो. ३मां पहेलुं चरण आ रीते शुद्ध करी शकाय : **नेमिं जिनं यं प्रणमन्ति देवाः** । पृ. १०१, श्लो. ५७मां '**परिपाट्या गतं**' ने स्थाने '**परिपाट्यागतं**' वांचवुं जोईए. पृ. ११७, पं. ९मां **०राग्ग्र-गुर्वा०** ए रीते पाठ बेसाडी शकाय छे.

त्रण पत्रो अने पत्रोना खरड़ाओ (क्र. ८-१७) वांचतां मजानी कविता वांच्यानी लागणी थाय. एकना एक विषयने विद्वान कवि-मुनिओए केटकेटलां लाड़ लडाव्या छे ! पृ. १३८, पं. ६ - '**त्वद्गाणी**' छे त्यां '**त्वद्वाणी**' समजवुं जोईए. नीचेथी पं. ११ '**स्थल्याविवा०**' छे त्यां '**स्थल्यामिवा०**' साचो पाठ बने. पृ. १३९, पं. १ - '**कृतान्साभरैः**' ने बदले '**कृताशाभरैः**' संगत बने. पं. ८मां '**साधारणीया**' छे ते वाचनभूल जणाय छे. **साधारणायाः** (स्त्री. नुं ष. ए.व.) होवुं घटे. नीचे अन्तिम पंक्तिमां **सूतस्थया** (?) एम शङ्कायुक्त पाठ छे. त्यां पाठ बराबर ज लागे छे. सूत (सारथि) पासे रहेल दोरड़ा वड़े बळदो सीधा रस्ता पर लवाय, तेम - आवी अर्थसंगति छे ज. पृ. १४०, पं. ५ - '**विरचय** (?)' ने स्थाने '**विरचितक्लेश०**' एवो समास स्वीकारीए तो अर्थ बेसे.

क्र. १८ ना वि.प.मां संस्कृत,गुजराती,राजस्थानी,चारणी जेवी भाषाओ वपराई छे. पत्र विस्तृत, वर्णनप्रचुर छे. पृ. १४५, पं. १६- '**मांटे**' ने बदले '**मांहे**', पृ. १४७, पं. नीचेथी २ - '**ठद्ध**' छे त्यां '**छद्ध**' होवानुं समजाय छे. पृ. १४८, पं. १२ - '**आवंर**' नहि पण '**अवर**' जोईए. पृ. १४९, पं. १४ '**धण**' छे त्यां **घण** हशे.

क्र. १९ना पत्र गुजरातीमां छे. क्र. २० नो वि.प. पण आवो ज छे. संस्कृत भाग ओछो, देशी छन्द अने ढाळनो उपयोग वधारे थयो छे. पृ. १८५ पर '**गूढा**' छे. गूढा एटले समस्या जेवा दूहा. अहीं अमुक गूढाना उत्तर सम्पादके शोधीने आप्या छे. गूढा १ नो जवाब छे : '**सिरोही**'. '**दधिसुता**' = **लक्ष्मी**, पण तेनुं बीजुं नाम '**सियह**' मगूको.मां मळे छे. **चन्द्रप्रिया** = **रोहिणी**. अने मुक्ताहार हृदय पर धारण कराय माटे '**हीयडुं**'. आ त्रण शब्दोना

प्रथमाक्षरथी **'सिरोही'** मळे. आ वि.प. सिरोही मोकलायो छे. गू. २ नो अर्थ **'जीव'** अपायो ज छे. गू. ३नो जवाब छे : **सेवक. वक (बक) पक्षी. सेक = ताप. सेव = भोजननी वस्तु.** गू. ४ नो जवाब **'दरसण'** बराबर छे. गू. ५ नो जवाब **'कीकी'** सम्पादके आप्यो छे. गू. ६नो जवाब **'सवी'** (बधुं) छे. **उलटा वीस अक्षर** एटले **'सवी'** – **'अमने सवी (बधुं) लखजो.'** गू. ७नो अर्थ पण **'दरसण'** आवे छे. **'दरबार'**नो अर्धभाग **'दर'**. **कागळनो तात** एटले **जनक सण (शण)** छे. शणमांथी कागळ बनतो हतो. अन्ते श्रावक-श्रेष्ठिओनां नामो ध्यान खेंचे छे. श्रावकोए लखेल लखाणमां भाषानी अशुद्धता घणी छे जे त्यारना समाजमां शिक्षणनुं प्रमाण ओछुं हतुं ते दर्शावे छे.

२०-२१-२२ क्र. वाळा वि.पत्रो मुख्यत्वे गुजराती छे. छन्द, देशी ढाळो, दूहा, रसभर्यां वर्णनो वगेरे थकी आवा पत्रो एक साहित्यकृति केवी रीते बने छे ते आ पत्रो वांचवाथी समजाशे. पृ. २१६, पं. १२ - **'रयणा गिरनार-तन'** छपायुं छे ते लिप्यन्तर करती वखते थयेली वाचनभूल छे. **'रयणागिरना रतन'** एम वांचवुं जोइतुं हतुं. पृ. २१८, पृ. १३ - **जिनसर** छे त्यां पाठ त्रुटित छे. **जिन सर[दार]** एवो पाठ विचारी शकाय. पृ. २२०, पं. नीचेथी २-मां वाचनभूल जणाय छे. **'डगग गयंद डिगमगत, थग थग थरकीय'** एम वांचवाथी अर्थ बेसे छे. **'त्कासन'** छे त्यां **'आसन'** जेवो शब्द होवानो सम्भव. ह.प्र. तपासवी पडे.

चाणस्मा अने घाणेरावनां वर्णनो सारी विगतो आपे छे. रचयिता मारवाड़ी अने चारणी भाषाना पण खासा जाणकार छे. तळपदां राजस्थानी, उर्दू अने चारणी शब्दो आमां पुष्कळ छे. वाचनभूलो थकी पण भ्रामक शब्दो सर्जावा पामे एम बने. जेमके, पृ. २२९, पं. ३मां **'छिब'** छे, पण अहीं **'छबि'** शब्द स्थानप्राप्त छे. **छबि सहिरकी** = शहेरनी छबी.

आ वि.प. मां **गाहिड़, गाहिड़ गात** जेवा शब्दो ते ते भाषाना अभ्यासीओ माटे रसप्रद बने. वारंवार आवेलो बीजो शब्द छे : **सांम-ध्रम, सांध्रम, सांम-सुधर्म. उणिहार, ठुकरानी** जेवा शब्द भाषाना नियमोनां उदाहरण बनी शके. उच्चारपरिवर्तन केवी रीते स्थान ले छे ते ध्यानमां होय तो आवा

शब्दो समजाय.

वि.प. २३मां पृ. २४९ **'अप करप करन जधपुर वेग पधारसी'** जेवा लखाण ते समये सहज हता. कानो-मात्रा-मींडी स्वयं समजीने बोली के लगाडी लेवाना रहे. क्यारेक आवां लखाणोथी केवी गेरसमज थाय ते विशे एक जूनी रमूजी वार्ता चाली आवे छे : कागळमां लखेलुं हतुं - **'सठअजमरगयछ'**. एक बिन-अनुभवी जुवानियाए वांच्युं - **'सेठ आज मरी गया छे'**. रडारोळ थई गई. सेठ पाछा आव्या त्यारे खरी वातनी समज पड़ी के **सेठ अजमेर गया हता.** वि.प.मां 'अप करप....' पंक्ति छे ते कानोमात्रा व. उमेरीने आम वंचाय: **'आप किरपा करीने जोधपुर वेगे पधारसी.'**

छेल्ला बे पत्रो श्रावकोए लखेला छे. क्र. २४ नो पत्र तैयार करवामां साधुए मदद करी होय एवुं बने, पण क्र. २५ नो वि.प. श्रावके ज पोताना उपकारी गुरुभगवन्तने भक्तिभावे लख्यो छे अने तेमां मगनीराम नामना कविए मदद करी छे.

जैन देरासर
नानी खाखर-३७०४३५
जि. कच्छ, गुजरात

टूंकनोंध :

– मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

१. 'मस्करिन्' परिव्राजक अंगे

हमणां डो. नीलाञ्जना शाह लिखित "संस्कृत ग्रन्थोमां मळता 'मस्करिन्' शब्द विशे विचार" अे लेख वांचवानो थयो. (प्र. Journal of the Gujarat Research Society - Vol. 57, July-December, 2012, page - 58-63) आ लेखमां 'मस्करिन्' शब्दनी विविध व्युत्पत्तिओ विशे विचार करवामां आव्यो छे. त्यारबाद आ अंगे A.L. Basham नुं History & Doctrines of the Ājivikas पुस्तक पण जोयुं.* पं. श्रीकल्याणविजयजी-लिखित 'श्रमण भगवान् महावीर'** गत 'आजीवकमत-दिग्दर्शन' प्रकरणमां पण आ अंगे घणी उपयोगी माहिती अपाई छे. अत्रे आ त्रणे स्थाने अपायेली माहिती तेमज अन्य थोडीक सामग्रीने आधारे 'मस्करिन्' शब्दना मूल अंगे विचार करवानो उपक्रम छे.

पाणिनीय अष्टाध्यायीना सूत्र ६.१.१५४ "मस्कर-मस्करिणौ च वेणु-परिव्राजकयो:"मां मस्करिन् शब्दनो उल्लेख छे. उपलब्ध संस्कृत साहित्यमां मस्करिन् शब्दनो आ सौथी प्राचीन उल्लेख गणाय छे. आ सूत्र मुजब 'मस्कर' अेटले 'वंशदण्ड' अने 'मस्करी' अेटले 'वंशदण्ड लईने फरतो परिव्राजक' अेवा अर्थो फलित थाय छे. पण महाभाष्यकारे अत्रे चोखवट करी छे के "न वै मस्करोऽस्याऽस्तीति परिव्राजक: । किं तर्हि ? 'मा कृषत कर्माणि, शान्तिर्व: श्रेयसी'त्याह अतो मस्करी परिव्राजक: ।" (मस्कर होवामात्रथी 'मस्करी' नथी कहेवाता, पण "तमे कर्मनुं आचरण न करशो, शान्ति ज तमारा माटे श्रेयस्कर छे" अेम बोलता होवाथी 'मस्करी' कहेवाय छे.) काशिकाकार पण कहे छे, "मा करणशीलो मस्करी कर्मापवादित्वात् परिव्राजक उच्यते ।" पाणिनीय व्याकरणनी अन्य वृत्तिओ पण आ ज अर्थ दर्शावे छे. टूंकमां, वैयाकरणोना

---

* प्र. मोतीलाल बनारसीदास, ई.स. २००९

** प्र. शारदाबहेन एज्युकेशनल रिसर्च सेन्टर, ई.स. २००२

મતે કર્મનિષેધક પરિવ્રાજકના અર્થમાં 'માङ् + कृ' ના આધારે 'मस्करिन्' શબ્દ નિપાતિત થાય છે.

'મસ્કરી' શબ્દ અંગેની આ માન્યતા પાછળથી એટલી સ્થિર બની કે અમરકોશ, હલાયુધકોશ, અભિધાનચિન્તામણિ વ. કોશોમાં નોંધાયેલા પરિવ્રાજક-અર્થપરક 'મસ્કરી' શબ્દની વ્યુત્પત્તિ કોશોના ટીકાકારો 'मस्करो वेणुदण्डः सोऽस्याऽस्तीति मस्करी' અથવા 'मा कर्तुं कर्म निषेद्धुं शीलमस्य' એવા મતલબની જ આપે છે. અલબત્ત, જે પરિવ્રાજકો 'મસ્કરી' તરીકે ઓળખાતા હતા, તે પરિવ્રાજકો દણ્ડધારી અને કર્મનિષેધક હોવાથી આ વ્યુત્પત્તિ ખોટી તો નથી જ; પણ 'મસ્કરી' શબ્દ ખરેખર આ પરિવ્રાજકો માટે વપરાતો થયો તેનું મૂળ કારણ દણ્ડધારણ કે કર્મનિષેધ નથી જણાતું.

'કર્મનિષેધ' ખરેખર તો નિયતિવાદ સૂચવે છે. "તમે કર્મ કરશો નહિ, શાન્તિ જ તમારા માટે શ્રેયસ્કર છે." આ કથન પુરુષાર્થની નિરર્થકતા સૂચવે છે. આ હિસાબે જોઈએ તો મસ્કરીઓ ખરેખર તો નિયતિવાદી છે. આચારાङ्गસૂત્રના ટીકાકાર શીલાङ्कાચાર્યે મસ્કરીઓને નિયતિવાદી જ ગણાવ્યા છે.[૧] હવે એ તો પ્રસિદ્ધ જ છે કે ગોશાલક મङ्खલિપુત્ત નિયતિવાદના પ્રવર્તક હતા. તેથી ગોશાલકનો ગોત્રવાચી 'મङ्खલિ' શબ્દ જ 'મસ્કરી' શબ્દનું મૂળ લાગે છે. આપ્તમીમાંસા પરની વિદ્યાનન્દસ્વામી કૃત અષ્ટસહસ્રીવૃત્તિ (શ્લોક ૧)માં પણ ગોશાલકનું જ 'મસ્કરી' તરીકે સૂચન છે.

'મङ्ख' એ જાતિવિશેષવાચી નામ છે. આ જાતિના લોકો ચિત્રપટ હાથમાં લઈને ફરતા અને લોકોને એ દેખાડીને અને તેને અનુરૂપ ગીત ગાઈને, લોકો પાસેથી ધન મેળવી ગુજરાન ચલાવતા.[૨] ગોશાલકના પિતા આ જાતિના હતા. અને તેથી તે 'મङ्खલિ' તરીકે ઓળખાતા. ગોશાલક પોતે પણ પૂર્વાવસ્થામાં એ રીતે જ ગુજરાન ચલાવતા[૩], તેથી તે 'મङ्खલિ' અથવા તો પિતાના નામે 'મङ्खલિપુત્ત' તરીકે ઓળખાતા.

ઉત્તરાવસ્થામાં ગોશાલકે તીર્થપ્રવર્તન કર્યું, ત્યારે તેમની પરમ્પરા, જેમ નિર્ગ્રન્થ મહાવીરની પરમ્પરા 'નિર્ગ્રન્થ' તરીકે ઓળખાઈ તેમ, 'મङ्खલિ' તરીકે ઓળખાઈ હશે.[૪] આ શબ્દનું ઉચ્ચારણ કેટલેક ઠેકાણે 'મક્ખલિ' તરીકે પણ

थतुं हतुं.[५] आ शब्दने मगधना लोको पोतानी लाक्षणिक बोलीमां 'पेस्कदि (-पेक्खइ, प्रेक्षते)', 'आचस्कदि (-आचक्खइ, आचक्षते)' नी जेम 'मस्कलि' तरीके बोलता हता.[६] पछीना काळमां जेम अनेक प्राकृत शब्दो नजीवा वर्णपरिवर्तन साथे संस्कृतभाषामां प्रवेश्या तेम 'मस्कलि' पण 'मस्करिन्' तरीके संस्कृतमां स्थान पाम्यो हशे. आ ज कारण छे के शीलाङ्काचार्य नियतिवादी तरीके 'मस्करिन्'ने जणावे छे, जे अेमने अभिप्रेत 'मङ्खलि'नुं ज संस्कृत रूपान्तर छे.

बनी शके के व्युत्पत्तिकारोने 'मंखलि' के 'मक्खलि' शब्दनी 'मस्करी' सुधीनी आ यात्रा ध्यानबहार रही होय अने तेथी तेओअे आ शब्दने जुदी रीते व्युत्पादित कर्यो होय. अथवा तो घणी वखत रूढ शब्दोने फक्त प्रकृति-प्रत्यय विभाग दर्शाववा पूरता ज व्युत्पादित करवामां आवता होय छे, तेम अत्रे पण बन्युं होय.

आ बाबते वधारे प्रकाश पाडवा तज्ज्ञोने नम्र विनन्ति.

टिप्पण :

१. पदार्थानामवश्यन्तया यद्यथाभवने प्रयोजककर्त्री नियतिः... इयं च मस्करिपरिव्राण्मतानुसारिणी प्रायः - १.१.३ आचाराङ्गवृत्तिः

२. जुओ अभिधानराजेन्द्रकोशगत 'मङ्ख' शब्द.

३. भगवतीजी ५४१

४. आम अेटले समजी शकाय के आजीवक सम्प्रदाय गोशालक पूर्वे पण विद्यमान हतो. गोशालक तेजोलेश्यालब्धिधारी अने निमित्तशास्त्रवेदी होवाथी आजीवक सम्प्रदायना मुखी बन्या हता. तेमणे नियतिवाद जेवो महत्त्वनो सिद्धान्त पण आजीवकोने आप्यो हतो. आचार-विचारणामां पण तेमणे केटलाक महत्त्वना फेरफार कर्या हता. पण तमाम आजीवकोअे ते बधी वातो यथावत् स्वीकारी होय अे सांयोगिक प्रमाणोथी नथी जणातुं. सम्भवित छे के गोशालकनी शिष्यसन्तति कदाच आ ज कारणे 'मङ्खलि' तरीके ओळखाती होय अने अे रीते अन्य आजीवकोथी जुदी पडती होय. जुओ "श्रमण भगवान् महावीर" गत 'आजीवकमतदिग्दर्शन'.

५. आ उच्चारण माटे बौद्ध शास्त्रोमां मळती काल्पनिक रसप्रद कथा माटे जुओ History & Doctrines of the Ajivikas - Page 37.

६. जुओ सिद्धहेम-अष्टमाध्याय पाद ४-सूत्र २८९ गत उदाहरण 'मस्कली'.

७. "प्राकृत भाषामां आ शब्द मंखलि तरीके, पालिमां मक्खलि तरीके अने संस्कृतमां मस्करी तरीके प्रयोजायो छे." - डो. नीलांजना

"बौद्धोंने इस विशेषण के एक देश 'मंखलि' का गोशालक के लिये ही प्रयोग कर डाला और पिछले लेखकों ने उसका संस्कृत रूप 'मस्करिन्' बनाकर उसे 'परिव्राजक' शब्द का पर्याय बना लिया" - पं. श्रीकल्याणविजयजी

"The name (Makkhali Gosala) appears thus in the Pali Canon. In Buddhist Sanskrit works it usually becomes Muskarin Gosala".
– A.L. Basham

२. 'दिट्ठाऽसि कसेरुमई०' गाथा विशे

श्रीआचाराङ्गसूत्रना 'लोकविजय' अध्ययनना चोथा उद्देशाना सूत्र ८५ नी शीलाङ्काचार्यकृत टीकामां नीचेनी गाथा उद्धृत थई छे :

"दिट्ठाऽसि कसेरुमई, अणुभूयाऽसि कसेरुमई ।
पीयं चिय ते पाणियं, वरि तुह णाम न दंसणं ॥"

आ गाथानी छाया श्रीसागरजी महाराजे आ प्रमाणे करी छे :

"दृष्टाऽसि उदारमते!, अनुभूताऽसि उदारमते! ।
पीतमेव ते पानीयं, वरं तव नाम न दर्शनम् ॥"

श्रुतस्थविर मुनि श्रीजम्बूविजयजी महाराजे ई.स. १९७८मां संशोधित करावीने छपावेली आचाराङ्गटीकामां (प्र. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ही) पण आ छाया यथावत् राखवामां आवी छे. तेमां कोई सुधारो सूचवायो नथी.

वास्तवमां जोईअे तो आ गाथा जे सन्दर्भे प्रयोजाई छे, ते सन्दर्भ ध्यानबहार जवाने लीधे आवी छाया थई होय ते सम्भवित छे. अने तेथी ज '**कसेरुमई**' अे नदीनुं नाम छे अेम न समजावाने लीधे '**उदारमति**' अेवुं तेनुं अर्थघटन थयुं छे.

जैन परम्परानो इतिहास - भाग १, पृष्ठ १९४ पर आचार्य वज्रभूतिना प्रकरणमां आ गाथानो व्यवहार-भाष्यवृत्तिगत साचो सन्दर्भ जडे छे. व्यवहार-सूत्रभाष्य-गाथा ५८, ५९नी वृत्तिमां जणाव्या मुजब -

आचार्य वज्रभूतिनी काव्यशक्ति अजब हती. तेमनां काव्यो गुजरात-भरमां प्रसिद्ध थयां हतां, अेटलुं ज नहीं, राजाओना अन्तेपुरनी राणीओ पण तेमनां काव्यो रसपूर्वक गाती हती. भरूचना राजा नभोवाहननी राणी पद्मावतीने आवा महाकवि आचार्यनां दर्शन करवानी होंश जागवाथी, ते भेटणुं लईने दासी साथे आचार्यनी वसतिमां गई.

आचार्य पोते कर्मयोगे कदरूपा, दूबळा अने शिष्यपरिवारथी रहित हता. तेमनो देखाव प्रभाव वगरनो हतो, तेथी राणीअे तेमने ओळख्या पण नहीं. अने ज्यारे दासीना कहेवाथी तेने ओळखाण पडी त्यारे ते पोतानो अभिप्राय साङ्केतिक रीते जणावतां बोली के - "दिट्ठा सि कसेरुमई०" (हे कसेरुमती नदी! तने जोई पण खरी अने तारुं पाणी पण पीधुं. तारुं पाणी ज सारुं छे, पण तारुं दर्शन सारुं नथी.)

कसेरुमती नदी **भरुचनी** आजुबाजु क्यांक हशे, जेनुं पाणी मीठुं हशे, पण देखाव सारो नहीं होय. अेनी जेम वज्रभूति आचार्यनां काव्यो सारां छे, पण दर्शन सारुं नथी अेम आ अन्योक्तिनो भाव छे. दूरथी डुंगरा रळियामणा! - एनी जेम.

आचाराङ्गटीकामां आ गाथा गोचरचर्या सन्दर्भे उद्धृत छे, के साधु कोई महाधनवान गणाता गृहस्थने त्यां भिक्षार्थे जाय अने तेवा गृहस्थने त्यां पण कोईक कारणसर आहार-पाणी न मळे, तो पण ते साधु गृहस्थने निन्दे नहीं, मतलब के अे गृहस्थने स्पष्ट के अस्पष्ट भाषामां उपालम्भ न आपे. जेमके ते साधु गृहस्थने अेम न कहे के - "दिट्ठा सि कसेरुमई०", आ गाथाथी व्यक्त थतो उपालम्भ स्पष्ट ज छे के भाई! तारुं नाम तो घणुं सारुं छे, पण घरे आवीने जोईअे तो खबर पडे के नाम ज सारुं छे, काम नहीं. अने आवो उपालम्भ न आपवानी शीखामण आचाराङ्गटीकामां आपवामां आवी छे. दशवैकालिकसूत्र - गाथा ५.१.२४नी अगस्त्यसिंहसूरि कृत चूर्णिमां पण प्रस्तुत सन्दर्भे आ ज गाथानो निर्देश छे.

टूंकमां, 'कसेरुमई'नी छाया 'उदारमति' नहीं, पण 'कसेरुमती' ज थशे, केमके ते विशेष नाम छे.

* * *

३. 'चूलिकापैशाची' अंगे

श्रीहेमचन्द्राचार्ये प्राकृतव्याकरणना चोथा अध्यायना ३२५-३२८ सूत्रोमां चूलिकापैशाची भाषानां लक्षणो जणाव्यां छे. भाषानुं नामकरण ज सूचवे छे तेम आ भाषा पैशाचीनो ज अेक उपप्रकार छे. पैशाचीना कैकयपैशाची, शौरसेन-पैशाची व. अन्य उपप्रकारोनी जेम आ उपप्रकार कोई प्रदेशविशेष साथे संकळायेलो नथी. तेथी आ भाषा क्यां बोलाती हशे ते अंगे विद्वानोमां अवढव जणाय छे.

प्राकृत साहित्य का इतिहास (-डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, प्र. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, ई.स. १९८५)मां पृष्ठ ४० पर आ अंगे आ मुजब टिप्पणी छे : "चूलिक, चूडिक अथवा शूलिकों का नाम तुखार, यवन, पह्लव और चीन के लोगों के साथ गिनाया गया है । बागची के अनुसार यह भाषा सोगडियन लोगों द्वारा उत्तर-पश्चिम में बोली जाती थी ।"

परन्तु वास्तवमां 'चूलिकापैशाची' कोई प्रदेशविशेष के जातिविशेष साथे जोडायेली भाषा नथी. अेना आवा नामाभिधान पाछळनुं कारण तद्दन जुदुं ज छे.

खम्भातना श्रीशान्तिनाथ जैन ताडपत्रीय ज्ञानभण्डारमां सिद्धहेम-प्राकृत व्याकरणनी प्राचीन ताडपत्रीय प्रत छे. आ प्रतमां कोईक विद्वाने बहुमूल्य टिप्पणो नोंध्यां छे. जेमां 'चूलिकापैशाची' परनुं टिप्पण आ प्रमाणे छे :

"दशरूपके चूलिकानाम प्रकरणम् । तत्र यानि पात्राणि पैशाचिकभाषया भाषन्ते, तेषां पैशाचिकभाषायामिदं लक्षणम् । चूलिकायाः चूलिकारूपं वा पैशाचिकं तत्र ।"

अर्थात् दशरूपकमां 'चूलिका' नामनुं प्रकरण आवे छे. तेमां जे पात्रो पैशाचिक भाषामां बोले छे, तेओनी पैशाचिकभाषामां आ लक्षण छे. चूलिकानुं के चूलिकारूप पैशाचिक अेवो तेनो अर्थ छे.

महाकवि धनञ्जयरचित 'दशरूपक'मां चूलिका नामनो सन्दर्भ प्रथम प्रकाशना ६१मा श्लोकमां मळे छे. "अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकाऽर्थस्य सूचना". धनिककृत टीकामां आनो अर्थ अेम जणावायो छे के "नेपथ्यपात्रेणाऽर्थसूचनं

चूलिका" ।

आनो मतलब अेवो समजी शकाय के नाटकना प्रस्तुतीकरण दरम्यान नेपथ्यमां रहेलां पात्रो अर्थसूचन माटे जो पैशाचिक भाषा प्रयोजे तो तेओनी पैशाची भाषामां आवां लक्षणो होय छे. अने ते भाषा 'चूलिका' (-अर्थसूचन)मां प्रयोजायेली होवाथी 'चूलिकापैशाची' तरीके ओळखाय छे.

'चूलिकापैशाची' अंगेनो आ उल्लेख अेक नवी ज विचारणा प्रेरे छे. विद्वज्जनो आ विशे विशद प्रकाश पाडे तेवी नम्र विनन्ति.

* * *

४. साधुश्रीपृथ्वीधरकारित-जिनभुवनस्तवनम् विशे

अनुसन्धान-५५, पृष्ठ १५-२२मां मन्त्री पेथडशाह कारित जिनमन्दिरो अने ते ते जिनमन्दिरमां प्रतिष्ठित मूळनायकोनुं वर्णन करतुं स्तवन प्रकाशित थयुं छे. (सं. - पू.आ. श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी म.) आ स्तवननी सम्पादकीय भूमिकामां आ स्तवन अज्ञातकर्तृक होवानो निर्देश थयो छे. सम्पादन माटे उपयोगमां लेवायेली प्रतमां पुष्पिका के अन्य कोई निर्देश न होवाथी स्तवन कया समये रचायुं हशे ते पण अनिर्णीत रह्युं छे.

परन्तु ताजेतरमां श्रीमुनिसुन्दरसूरिविरचित गुर्वावली (प्र. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, वीर नि.सं. २४३७) तपासतां आ स्तवन तेमां जोवा मळ्युं. आ स्तवन त्यां श्रीमुनिसुन्दरसूरिजी द्वारा उद्धृत थयुं छे. स्तवनना रचयिता तपगच्छपति श्रीसोमतिलकसूरिजी (श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी - श्रीदेवेन्द्रसूरिजी - श्रीधर्मघोषसूरिजी - श्रीसोमप्रभसूरिजी - श्रीसोमतिलकसूरिजी) छे. जेओ पृथ्वीधर (-पेथडशा) मन्त्रीना प्रतिबोधक श्रीधर्मघोषसूरिजीना प्रशिष्य छे. तेमनो सत्तासमय वि.सं. १३५५-१४२४ छे. तेथी आ स्तवन १४मी सदीना अन्ते के १५मी सदीना प्रारम्भे रचायुं होय तेम मानी शकाय.

स्तवननी बन्ने वाचना सरखावतां अनुसन्धानगत वाचनामां केटलाक सुधारा जणाय छे :

श्लोक	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	प्रणस्य हृषा	प्रणश्यद्रुषा
८	वोऽरजिनश्च	वीरजिनश्च
१०	संखोडे	खण्डोहे
११	डण्डानके	चन्द्रानके
१२	सचरमः	स चरमः
१३	०नगरे घोरंगले	०नगरेऽथोरुंगले
१३	वठपद्र०	वटपद्र०
१४	ढोरसमुद्र०	ढोरसमद्र०
१५	नाभेयो जिन(?) वट०	नाभेयो वट०
१५	०पुरयोः श्रीनाभि(?) श्चन्द्र०	०पुरयोश्चन्द्र०
१५	त्रिक्षदां(?)	त्रिक्षणं

बन्ने वाचनामां केटलाक सामान्य फेरफारवाळा पाठान्तरो –

श्लोक	अनु. वाचना	गुर्वावलीवाचना
४	०पालस्याऽथ च	०पालस्याऽप्यथ
६	०ष्वहो	०ष्वथो
६	०विंशत्यभ्यधि०	०विंशत्याभ्यधि०
८	सजीरापुरे	स जीरापुरे
८	०डाहडपुर०	०दाहडपुर०
९	०मङ्गलाद्ये	०मङ्गलाख्ये
९	०स्तथेन्द्री०	०स्तथैन्द्री०
१०	ताल्हणपुरे०	ताह्लणपुरे०
१०	हस्तिनाद्ये	हस्तनाद्ये
११	०द्रहे	०ह्रदे
१३	ष्टक्कारकायां	ष्टकारिकायां
१४	चारूपे	चारूप्ये
१४	श्रये	श्रिये
१४	०युते	०युतः

* * *

पूर्ति

अनुसन्धान-६१, पत्र क्र. - ५३, पृ. २२७-२२८ पर श्रीविजयप्रभसूरिजी द्वारा प्रेषित प्रसादपत्री छपाई छे. ते पत्रनो छेल्लो अमुक भाग त्यां छपायो नथी. ते अप्रगट अंश हमणां मळी आवतां पत्र पूर्ण थई शकेल छे. ते अप्रगट अंश नीचे मुजब छे –

कलि(वि)कुलवर्णनीयानवद्यहृद्यपद्यसन्दर्ब्भितं पार्वणपत्रं प्राप्तं समवगतं च तत्प्रमेयं किं चास्माकं उ० श्रीविनीतविजयगणिप्रभृतेरनुनतिर्नतिर्वा समवसेयाऽवसाययितव्याचक्षे परेषां पारिपार्श्विकानां अमुकगणिप्रभृतेः किं चास्माकीना धर्माशीर्वाच्या सकलसङ्घस्य श्रीपरमेष्ठिनोऽस्मन्नामग्राहं नमिकर्मीकार्या । सौभाग्यपञ्चमीकर्मवाट्यामितिमङ्गलम् । श्रीरस्तु ॥ शुभं भवतु ॥ छ ॥

—x—

शुं महत्त्वपूर्ण ? आपणुं मन्तव्य के शास्त्रनुं ऐदम्पर्य ? : एक चर्चा

– विजयशीलचन्द्रसूरि

ताजेतरमां प्रकाशित एक पुस्तक "**बत्रीशीना सथवारे-कल्याणनी पगथारे-७**" जोवामां आव्युं. घणा भागे तो तेना लेखक महोदयनी सूचनाथी ज, कोई व्यक्ति आवीने आपी गई. तेमां छेवाडानां पृष्ठोमां "एक पत्र" छापेल छे, ते जोवा मळ्यो. प्राय: ते वंचाववाना हेतुसर ज पुस्तक आ रीते मोकल्युं हशे.

पत्र अन्य व्यक्ति उपर, ते पण घणा महिना अगाऊ, लखायेलो छे, तेथी तेना मुद्दा परत्वे जवाब आपवानुं के चर्चा करवानुं अमारा माटे अनावश्यक छे. अमने एक ज वात खटके छे, अने ते ए छे के –

– जैन शासनना कोई सिद्धान्त के सैद्धान्तिक मुद्दा पर, कोई एक-अमुक व्यक्ति ज चिन्तन करी शके, ते ज लखी के प्रतिपादन करी शके; अने तेमना मत के प्रतिपादनथी जुदी वात, कोई, तेमने पूछ्या के जणाव्या सिवाय, करी न शके, करे तो ते जाणे के गुनेगार गणाय !; आ पद्धति तो केवी रीते मान्य गणी शकाय ?

– एवुं चोक्कस बने के तेओनुं प्रतिपादन साचुं होय, अने प्रतिविधान के जुदुं चिन्तन करनारनी वात खोटी दिशानी होय; पण तो, सुज्ञपुरुष होय तो, ते व्यक्तिना विधानमां के चिन्तनमां क्यां / कई सैद्धान्तिक खामी छे ते दर्शावे; पण आडाटेडा अप्रस्तुत मुद्दाने प्रधान विषय न बनावी मूके.

– आगमोना पायाना सिद्धान्तो परत्वे, ते सिद्धान्तोने अन्यथा करी मूके तेवुं चिन्तन/विधान करवानी पोताने छूट, एकाधिकार; अने ते बीजा (पोताना होय तेटला ज नहि) कोईने दर्शाव्या वगर छापी पण शकाय - तेमां क्यांय सभ्य के शिष्ट परम्परा आडे न आवे; पण अन्य कोई जो ते वातने अन्यथा ठराववानो प्रयास करे, तो तेनाथी तेम न कराय; बताव्या विना न ज छपाय, आ केवी पद्धति ? केवी मान्यता ?

– तेओनी जेम, अमारो क्यारेय एवो दावो नथी के अमारुं चिन्तन साचुं ज छे - अकाट्य छे. अमारो तो, अमारा अतिमन्द क्षयोपशमने आधारे पण, प्रभुशासननी दुर्गम पण श्रेष्ठतम वातोने समजवानो प्रयासमात्र छे. तेम करवा जतां जो अन्यनी वात बराबर न लागे तो ते अंगे टिप्पणी न ज करी शकाय, एवो कोई नियम तो छे नहि. अने छतां, अमारां ते चिन्तनोमां जे कांई पण खामी बताडवामां आवे तेनो स्वीकार करवानी सज्जता छे ज - होवी ज जोईए. अमे "**हाथी चले बजार....**" एवुं कहेवा जेवी निम्न के अकृतज्ञ भूमिकामां नथी ज. हजी पण अमारी नम्रपणे प्रार्थना छे के जे जे मुद्दा विषे लखवामां आव्युं छे, आवे, ते लखाणमांना प्रतिपादन के प्रतिविधाननुं निरसन अवश्य करो. पहेलां पण कहेलुं, फरी पण कहीशुं के "वादे वादे जायते तत्त्वबोध:". परन्तु छाशियां करवाथी अने तेने 'चोयणा-पडिचोयणा'नां रूपाळां नाम आपी देवामात्रथी कांई व्यग्र मन:स्थितिने छूपावी नथी शकाती.

रही वात उपाध्याय भुवनचन्द्र म.नी मध्यस्थतानी. पहेली वात तो ए के आ कोई विवाद के क्लेश तो नहोतो के जेमां निवेडो लाववा माटे 'मध्यस्थ' ने लाववाना थाय. आ तो अमारा एक लेखना जवाबरूपे 'बत्रीशी'ना एक पुस्तकमां तेना लेखकमहोदये जरा विचित्र लागे तेवी टीका करी हती, तेथी अमारा प्रतिपादन परत्वे अमारा मनमां वहेम जाग्यो के आमां कांई क्षति हशे ? शास्त्रविरुद्ध प्रतिपादन तो नहि थई गयुं होय ? आथी अमारां प्रतिपादनोनी खराई नक्की करवा अमे ते बन्ने तरफनां प्रतिपादनो भुवनचन्द्रजी म.ने तथा एक अन्य गच्छनां विदुषी शास्त्राभ्यासी साध्वी म.ने मोकल्यां. ते बन्नेए अमारां प्रतिपादनो परत्वे समर्थनात्मक सूचना मोकली, जे अमारा माटे आश्वासक बनी रही. बाकी, ते लेखकश्रीने ऊतारी पाडवानो के खोटा दर्शाववानो उ. भुवनचन्द्रजीनो आशय त्यारे पण नहोतो, आजे पण नथी. तेओ स्पष्ट छे के ज्ञानना क्षेत्रमां आवा मत-मतान्तर थतां ज होय छे, अने थवां ज जोईए; तो ज कशुंक तत्त्व सांपडे. अमारा कारणे ते उपाध्यायश्रीने अजुगता पत्र-आक्षेपो वेठवाना आव्या ते माटे अमे तेमना प्रत्ये दिलगीरी दर्शावीए छीए.

पुन:मुद्रित आगमादि ग्रन्थोमां पूर्व सम्पादकनुं नाम न लखवा अंगे करवामां आवेल टिप्पणी विषे टकोर छे ते अंगे पण स्पष्टता करवी जोइए.

आगमोनुं सम्पादन-प्रकाशन आगमोद्धारक श्रीसागरजी म.ए करेलुं छे ते सर्वविदित छे. दे.ला., आगमोदय समिति व. संस्थाओ द्वारा प्रकाशित ग्रन्थो महदंशे तेओ द्वारा ज तैयार थयेला छे ते पण बधा जाणे छे. तेमणे पोतानी अल्पताने प्राधान्य आपीने सं. तरीके पोतानो नामोल्लेख न कर्यो होय, तोये पोते लखेल प्रस्तावनामां तेमणे पोतानुं नाम निर्देशेलुं होय ज छे.

आजना आगमोना अभ्यासु जनो आगमोद्धारकजीनां सम्पादनो वांची-भणीने, मोटाभागे, तैयार थया होय छे. तेओने ख्यालमां होय ज के आना सम्पादक कोण छे. सामान्य सौजन्य के कृतज्ञतानो के छेवटे व्यवहारनो पण तकाजो ए छे के ते व्यक्तिए भले पोते नाम न लख्युं, पण पुनःमुद्रके क्यांक ने क्यांक तेमनो नामोल्लेख करवो ते औचित्यपूर्ण गणाय. आ पुनर्मुद्रकोए पोतानां, दाताओनां, प्रेरकना तथा गुरुजनोनां नामो, प्रशस्तिओ वगेरे विगतवार छाप्युं, पण पेलुं नाम 'मूळ प्रकाशनमां नाम न होवाथी अमे न लख्युं' एम विचारीने-कहीने टाळ्युं. आ अमने न जच्युं, तो अमे ते मुद्दे टिप्पणी लखी. तेथी ते पुनःमुद्रक महाराजश्रीने माठुं लागेल, तो ते मुद्दे 'मिच्छामि दुक्कडं'नो पत्र पण पाठव्यो. परन्तु तेमां पण, तेमनो पोताना प्रकाशनमां करेलो दावो "आवश्यकसंशोधनपुरस्सरम्", ते तद्दन खोटो होवानुं सूचन तो अमे कर्युं ज हतुं. नामोल्लेख करवा जेटली उदारतानी अपेक्षा भले न राखीए, पण जेमां जरा पण संशोधन-सुधारा कर्या ज न होय, प्रूफनी भूलो समेत बधुं यथावत् फोटोस्टेट द्वारा छपाव्युं होय, ते माटे आवो दावो थाय ते केम मान्य बने ?

आ मुद्दे सागर-समुदायना आ.नयचन्द्रसागरजीए छपावेला शब्दो जोवा योग्य छे : "..... सागरजी म. द्वारा महामहेनते सम्पादित प्रतोने आजनी वगर महेनतनी ओफसेट पद्धति द्वारा छपावी पूज्यपाद सागरजी म. के पूज्यश्रीनी प्रेरणा द्वारा स्थापित (प्रकाशक) संस्थाने (श्रीजिनशासन आराधना ट्रस्ट द्वारा पुनःप्रकाशित ग्रन्थो) सदंतर भूली गया छे. अभ्यासुने उपयोगी उपोद्घात, ग्रन्थपरिचय, प्रस्तावना, अनुक्रमणिका विगेरे काढी नाखेल छे."

आटली स्पष्टता पर्याप्त जणाय छे, अने 'बेजवाबदार' कोने गणाय ते हवे स्वयंस्पष्ट थई जाय छे.

बत्रीशीनी उपरोक्त चोपडीमां छेल्ले 'एक विशेष वात' एवा शीर्षकमां

अमारा मुनिराजे करेल विचारणाने "एमना क्षयोपशमनी अतिमन्दताना वरवा प्रदर्शन" तरीके वर्णवेल छे. सैद्धान्तिक रीते प्रत्युत्तर आपवानी अक्षमता के अनुदारताजनित अनिच्छा आवो बालजनोचित जवाब आपवा प्रेरी ज शके. पोतानी ख्यातिना जोरे कोईने पण आ रीते ऊतारी पाडवानुं शक्य जरूर छे, पण ते शासनशैली नथी, तेथी मान्य पण न ज बने, ते पण समजवायोग्य छे. अस्तु.

*

केटलाक मित्र मुनिराजो तरफथी बे प्रश्नो अमारी सामे वारंवार मूकवामां आव्या छे : १. तमारे 'अनुसन्धान'मां लेख छापवाने बदले ते लेखकश्री उपर ते मोकलवो जोइतो हतो. २. हवे तेमनी वातनो जवाब तमारे आपवो जोईए; न आपो तो तमारी वात बराबर न होवानुं स्थापित थशे.

पहेली वातनो जवाब ए छे के अमारे ते लेखकश्री जोडे कोई संघर्ष के विवाद तो हतो नहि, छे नहि. तेमणे पोताना संस्कृत-गुजराती निबन्धात्मक पुस्तकमां कोई एक बाबते प्ररूपणा करी, ते वांचतां अमोने तेमां कांईक ठीक न लाग्युं; शास्त्रमर्यादाने बिनअनुरूप लाग्युं, तो ते विषे अमे अमारुं चिन्तन रजू कर्युं. अे तेमने पूछीने के बतावीने ज छपाववुं - एवो आग्रह कोई न राखी शके. तेओए पोतानी नवी प्ररूपणाओ छपावी ते स्वपक्ष सिवायना कोई अन्यने बतावी नथी ज; तो अमारे तेमने बताववी जोईए एवो आग्रह शा माटे ? हा, शास्त्रार्थ अथवा संघर्ष होत तो जरूर तेम करवुं उचित बनत. शास्त्रीय प्रतिपादनो अंगे विचारणात्मक लखाणो तो कोई पण लखी शके छे. अने अमे ते छपाव्युं ते, ते लखाण/चिन्तन तेमना सुधी पहोंचे ते भावथी ज; वधुमां शास्त्रीय मुद्दा परत्वे अभ्यासी जीवो गलत मान्यता स्वीकारतां अटके के पुनर्विचार करे ते आशयथी. बाकी, खरी रीते कहीए तो अमे तेमना उपकृत छीए. तेमणे शास्त्रना पदार्थ विषे नवुं ज चिन्तन कर्युं, तो अमे ते समजवा प्रेराया, अने तो अमने थोडोघणो ख्याल जे आव्यो ते लखवा प्रेराया. तेमनी चिन्तनक्षमताने धन्यवाद ज आपवा घटे.

ते लेखकश्रीने एम लाग्युं छे के अमे तेमने आदर नथी आप्यो;

आदरसूचक कशुं लख्युं नथी. आनो जवाब तो शुं आपवो ? अमे तेमने माटे अनादरभर्यो एक पण शब्दप्रयोग नथी कर्यो, **'बेजवाबदार'** जेवा शब्दो नथी वापर्या, ते तरफ हवे सहुनुं लक्ष्य जवुं जोईए. वास्तवमां तो तेमना प्रत्ये, तेमना ज्ञान तेमज चिन्तनक्षमता प्रत्ये आदर हतो ते कारणे ज तेमनो ते निबन्ध (**हा निबन्ध; 'शास्त्र' नहि ज**) अमे जोयो, वांच्यो, अने तेमां जणायेला चिन्तनीय मुद्दाओ पैकी अेक मुद्दा पर वळतुं चिन्तन कर्युं. बाकी तो केटलांय पुस्तको, पत्रो, लखाणो आपणे त्यां छपातां रहे छे; ते वांचवानी पण जग्या नथी होती, तो तेना विषे चिन्तन करीने कांईक लखवानी तो वात ज शानी होय ? तेओने तो गर्व थवो जोईए के "मारा निबन्धना चिन्तनमां कांईक दम छे तेथी ज आ अन्य पक्षना साधुने पण ते पर चिन्तन करवानुं मन थयुं; मारा चिन्तन प्रत्येना आदरभाव वगर कोई आवुं न करे."

जरा जुदी रीते कहीए तो, मूळे ते लेखकश्रीनां विधानोनुं खण्डन करवानो अमारो उद्देश हतो ज नहि. अमे तो 'सन्मतितर्क'नी अेक गाथाना अर्थनुं चिन्तन करता हता. चिन्तन दरमियान ऊहापोह करतां अे गाथाना न्यायपंचानन अभयदेवसूरि, महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी अने पं. सुखलालजीअे करेला अर्थो करतां जुदुं तात्पर्य जणायुं तो ते अंगे अेक लखाण तैयार कर्युं. ते वखते आ. श्रीअभयशेखरसूरिजीअे पण आ गाथाना तात्पर्य विशे चिन्तन रजू कर्युं छे ते जाणमां आवतां ते पण तपास्युं अने लखाणमां सांकळी लीधुं. स्वाभाविक रीते कशुंक नवुं चिन्तन रजू करीअे तो जूनां चिन्तनोनुं अवलोकन करवानुं थाय ज. अने अेम ज थयुं हतुं. आमां कोईना पण अपमाननो इरादो हतो ज नहि. परन्तु ते लेखकश्रीए अमारा द्वारा थयेल चिन्तनने पोतानुं अपमान समजीने, अहंकार तेमज तुच्छकारपूर्वक, बत्रीशीना अगाऊना भागमां जे टिप्पणी करी, ते छपावतां पूर्वे अमने जणावेलुं के पूछेलुं नथी. एटले आ प्रकारनी पहेल तेमणे करी छे, अमे तो, पछी, अमारा हाथे शास्त्रीय पदार्थनुं विपरीत प्रतिपादन नथी थयुं तेनी खातरी मात्र करी छे, अने ते हेतुथी ज, पछीथी, प्रकाशित कर्युं छे.

बीजा प्रश्ननो जवाब तो आ लेख ज गणाय.

*

उपर अमे '**शासनशैली**'नी वात करी. शासनशैली एटले शुं ? शासनशैली एटले परस्परने ऊतारी पाडे तेवी संघर्षात्मक पद्धतिने बदले परस्पर प्रत्येना अने परस्परना मत प्रत्येना आदरपूर्वक, जे ते मुद्दे खण्डन-मण्डनात्मक स्वस्थ विमर्शनी प्रक्रिया. आमां एक खोटो पडे अने एक साचो - एवी हार-जीतनी भावना न होय; पण शासन अने शास्त्रने साचा ठरावावानी अने तेने अनुकूल निष्कर्ष पामवानी ज खेवना होय. आमां "अमे ज साचा, अमने ज आवडे, अमारो ज आवी बाबतोमां अधिकार; बीजाने न ज आवडे अथवा तो खोटा ज होय" – आवा आग्रह, पूर्वग्रह के गुरुताग्रन्थिप्रेरित तुच्छ भाव न होय, परन्तु अनाग्रहभाव होय, 'मारुं ज साचुं' एम नहि, पण 'साचुं ते मारुं' एवो नम्र, विवेकपूर्ण, अने शास्त्रोना तात्पर्य सुधी पहोंचवानो भाव होय. एमां नानी व्यक्ति पण पोतानी खामी देखाडे तो तेना प्रत्ये कृतज्ञभाव व्यक्त थतो होय, अनुदारता के तुच्छता नहि. एमां पोतानी खामी नीकळे तेनी चिन्ता न होय, शास्त्रमर्यादा साचववानी ज तमन्ना होय. एमां कोईए देखाडेली भूल साव खोटी-अवास्तविक होय तो पण तेना माटे हीनभाव न लावतां, मारी वात प्रत्ये तेणे प्रयत्न कर्यो तेनो सन्तोष होय, एटलुं ज नहि, ते क्यां खोटो छे ते तेने समजाववानी तत्परता होय. '**अति मन्द क्षयोपशमवाळो**' एम कहीने तेने ऊतारी पाडवानी प्रवृत्ति तो, क्यारेक, आपणी ज अक्षमतानी सूचक बनी शके.

*

मित्र मुनिवरोनां सूचनोने अनुलक्षीने आटलुं विस्तारथी अमारुं दृष्टिबिन्दु समजाव्युं छे. आमां कोईनो पण अनादर, गौरवभङ्ग के खण्डन करवानो आशय तसुभार नथी. तेम छतां कोईने पण तेवुं लागे, अथवा आ लखाणथी नाराजगी थाय, तो ते सर्व प्रत्ये अमारा हृदयपूर्वकना मिच्छामिदुक्कडं छे. ते लेखकश्री प्रत्ये पण, अजाणतां ज तेमने ठेस पहोंचाडी दीधी ते बदल, अमे क्षमाप्रार्थी छीए. अमारा कोई पण चिन्तन/विधानमां शास्त्रमर्यादानो लोप थाय तेवी वात जणाय तो ते प्रत्ये, कोई पण व्यक्ति, अमारुं ध्यान दोरी शके छे. अमारी भूल स्वीकारतां अने सुधारतां अमने आनन्द ज थशे, अणगमो नहि.

एक स्पष्टता करवी जरूरी जणाय छे : पूर्व महर्षिओए जे पण

विचारणा करी, तेना विषे तर्क कर्या, ते बधुं ज 'शास्त्रवचन'ने अने 'शास्त्रना ऐदम्पर्य'ने केन्द्रमां राखीने ज कर्युं छे. शास्त्र द्वारा समर्थन न सांपडे एवा एक पण तर्कने, ते गमे एटलो श्रेष्ठ लागतो होय तोय, ते महर्षिओए महत्त्व आपेल नथी. शास्त्र-असमर्थित तर्क तो कुतर्क ज बनी रहे, एवी एमनी स्पष्ट समजण होवी जोईए.

अमारा द्वारा रजू थती विचारणाओमां अन्तिम सत्य के आखरी मुकाम 'शास्त्रवचन' ज होय छे अने हशे. शास्त्रनिरपेक्ष रीते बौद्धिक क्षयोपशमनी नीपज समा तर्कनी प्ररूपणाने शासनशैली स्वीकारी शके नहि, एवी अमारी नम्र समजण छे.

* * *

आवरणचित्र-परिचय

सरस्वतीदेवीनी प्रतिमा

दक्षिण गुजरातमां प्राचीन झघडियाजी तीर्थ छे. त्यांना भव्य जैन मन्दिरमां रङ्ग-मण्डपनी बहार चोकीमां निर्मित २ पैकी १ देवकुलिकामां आ प्रतिमा प्रतिष्ठित छे. आ प्रतिमा ऊभी प्रतिमा छे, अने ते वीणा-पुस्तक-कमलधारिणी भगवती सरस्वती देवीनी प्रतिमा छे. १२मा शतकनी आ प्रतिमानी आकृति अत्यन्त सोहामणी, दिव्य, नयन-मनो-वल्लभ छे. प्रतिमाना २ हाथमां कमलपुष्पो छे, जमणो हाथ वरदमुद्रामां छे, अने डाबा हाथमां नानीएवी पोथी छे. तो पग पासे हंस पण जोई शकाय छे.

जोके त्यां तो आ प्रतिमाने 'चक्रेश्वरीदेवी' तरीके ओळखवामां आवे छे. 'सरस्वतीदेवी' होवा छतां, अने ते तरफ ध्यान दोरवा छतां, त्यां तेनी ओळख बदलवा कोई तैयार नथी. तेना पर लखेल अक्षरो-लेख सुवाच्य छे, अने ते आ प्रमाणे छे :

"सं. ११२० माघ सु. १४ श्री पृथ्वीपालेन कारिता ॥"

स्वयंस्पष्ट आ लेखने त्यां आ रीते उकेलवामां आव्यो छे :

"१२०० वर्षे, पालेज" ॥

अने आ ज प्रमाणे त्यांना आधुनिक शिलालेखोमां तेनो परिचय पण आलेखायेलो जोवा मळ्यो छे. इतिहास विकृत शी रीते थाय, ते आ उदाहरणथी समजी शकाय तेम छे.

भवतु. पण अमारे तो आ वर्षे आ दिव्य सरस्वती-प्रतिमानां दर्शन थवाथी, अमारी तीर्थयात्रा सफल थई गई !
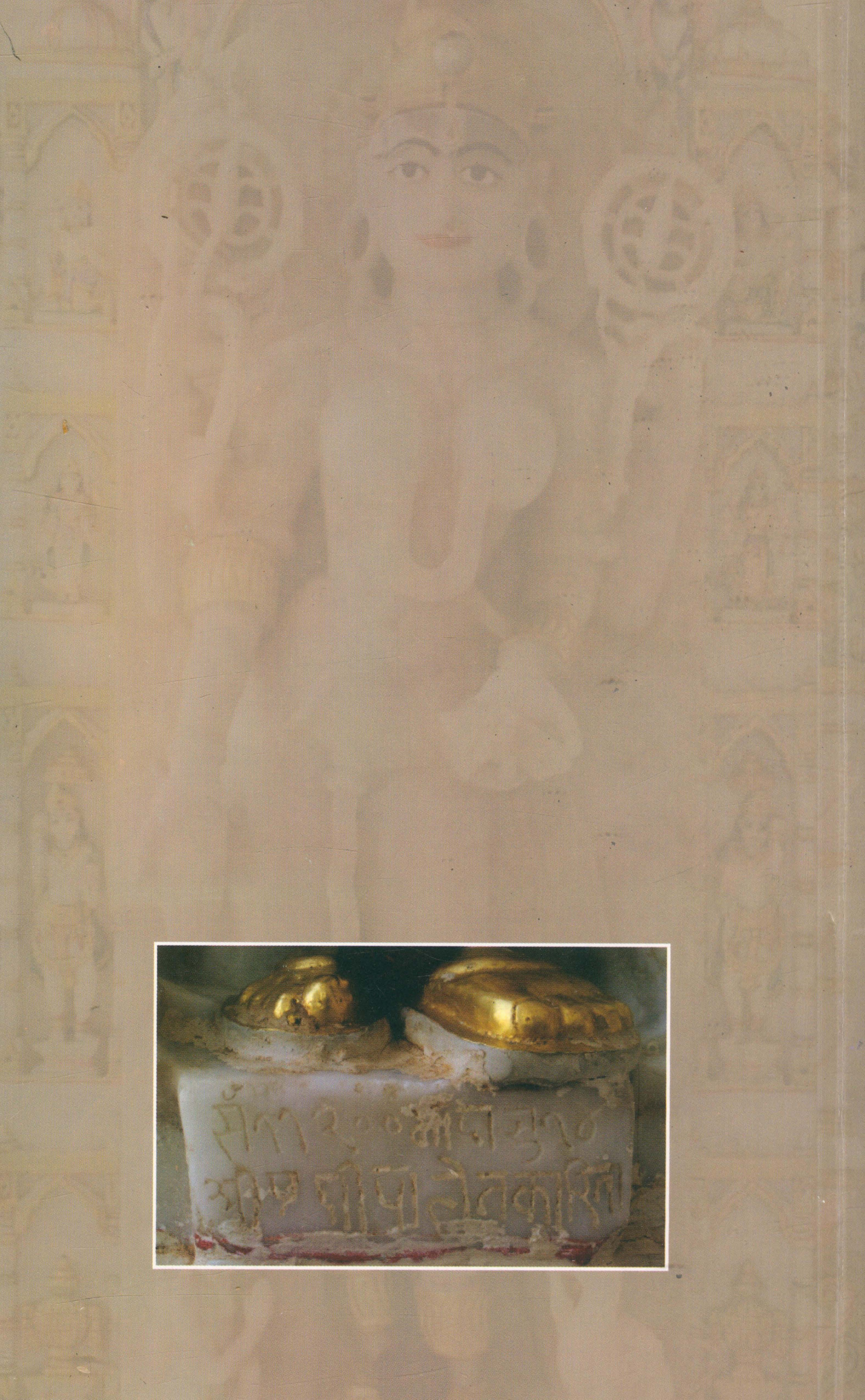
प्रथम आवरण पर प्रतिमानी तसवीर, अने चोथा आवरण पर ते प्रतिमानी पलांठी पर उत्कीर्ण लेखाक्षरोनी तसवीर आपेल छे.